॥ श्रीहरिः ॥

17

श्रीमद्भगवद्गीता

पदच्छेद, अन्वय और

साधारण भाषाटीकासहित

गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

शास्त्रोंका अवलोकन और महापुरुषोंके वचनोंका श्रवण करके मैं इस निर्णयपर पहुँचा कि संसारमें श्रीमद्भगवद्गीताके समान कल्याणके लिये कोई भी उपयोगी ग्रन्थ नहीं है। गीतामें ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि जितने भी साधन बतलाये गये हैं, उनमेंसे कोई भी साधन अपनी श्रद्धा, रुचि और योग्यताके अनुसार करनेसे मनुष्यका शीघ्र कल्याण हो सकता है।

अतएव उपर्युक्त साधनोंका तथा परमात्माका तत्त्व रहस्य जाननेके लिये महापुरुषोंका और उनके अभावमें उच्चकोटिके साधकोंका श्रद्धा-प्रेमपूर्वक संग करनेकी विशेष चेष्टा रखते हुए गीताका अर्थ और भावसहित मनन करने तथा उसके अनुसार अपना जीवन बनानेके लिये प्राण पर्यन्त प्रयत्न करना चाहिये।

निवेदक

कार्तिक शुक्ला १२ सं० २००६ | जयदयाल गोयन्दका
मु० बाकुड़ा

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीगीताजीकी महिमा

वास्तवमें श्रीमद्भगवद्गीताका माहात्म्य वाणीद्वारा वर्णन करनेके लिये किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है; क्योंकि यह एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है। इसमें सम्पूर्ण वेदोंका सार-सार संग्रह किया गया है। इसका संस्कृत इतना सुन्दर और सरल है कि थोड़ा अभ्यास करनेसे मनुष्य उसको सहज ही समझ सकता है। इसका आशय इतना गम्भीर है कि आजीवन निरन्तर अभ्यास करते रहनेपर भी उसका अन्त नहीं आता। प्रतिदिन नये-नये भाव उत्पन्न होते रहते हैं, इससे यह सदैव नवीन बना रहता है एवं एकाग्रचित्त होकर श्रद्धा-भक्तिसहित विचार करनेसे इसके पद-पदमें परम रहस्य भरा हुआ प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। भगवान्‌के गुण, प्रभाव और मर्मका वर्णन जिस प्रकार इस गीताशास्त्रमें किया गया है, वैसा अन्य ग्रन्थोंमें मिलना कठिन है; क्योंकि प्रायः ग्रन्थोंमें कुछ-न-कुछ सांसारिक विषय मिला रहता है। भगवान्‌ने 'श्रीमद्भगवद्गीता' रूप एक ऐसा अनुपमेय शास्त्र कहा है कि जिसमें एक भी शब्द सदुपदेशसे खाली नहीं है। श्रीवेदव्यासजीने महाभारतमें गीताजीका वर्णन करनेके उपरान्त कहा है—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

'गीता सुगीता करनेयोग्य है अर्थात् श्रीगीताजीको भली प्रकार

पढ़कर अर्थ और भावसहित अन्तःकरणमें धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है, जो कि स्वयं श्रीपद्मनाभ विष्णुभगवान्‌के मुखारविन्दसे निकली हुई है; (फिर) अन्य शास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन है?' स्वयं श्रीभगवान्‌ने भी इसके माहात्म्यका वर्णन किया है (अ० १८ श्लोक ६८ से ७१ तक)।

इस गीताशास्त्रमें मनुष्यमात्रका अधिकार है, चाहे वह किसी भी वर्ण, आश्रममें स्थित हो; परंतु भगवान्‌में श्रद्धालु और भक्तियुक्त अवश्य होना चाहिये; क्योंकि भगवान्‌ने अपने भक्तोंमें ही इसका प्रचार करनेके लिये आज्ञा दी है तथा यह भी कहा है कि स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनि भी मेरे परायण होकर परमगतिको प्राप्त होते हैं (अ० ९ श्लोक ३२); अपने-अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा मेरी पूजा करके मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त होते हैं (अ० १८ श्लोक ४६)—इन सबपर विचार करनेसे यही ज्ञात होता है कि परमात्माकी प्राप्तिमें सभीका अधिकार है।

परन्तु उक्त विषयके मर्मको न समझनेके कारण बहुत-से मनुष्य, जिन्होंने श्रीगीताजीका केवल नाममात्र ही सुना है, वे कह दिया करते हैं कि गीता तो केवल संन्यासियोंके लिये ही है; वे अपने बालकोंको भी इसी भयसे श्रीगीताजीका अभ्यास नहीं कराते कि गीताके ज्ञानसे कदाचित् लड़का घर छोड़कर संन्यासी न हो जाय; किन्तु उनको विचार करना चाहिये कि मोहके कारण क्षात्रधर्मसे विमुख होकर भिक्षाके अन्नसे निर्वाह करनेके लिये तैयार हुए अर्जुनने जिस परम रहस्यमय गीताके उपदेशसे आजीवन गृहस्थमें रहकर अपने कर्तव्यका पालन किया, उस गीताशास्त्रका यह उलटा परिणाम किस प्रकार हो सकता है?

अतएव कल्याणकी इच्छावाले मनुष्योंको उचित है कि मोहको त्यागकर अतिशय श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपने बालकोंको

अर्थ और भावके सहित श्रीगीताजीका अध्ययन करावें एवं स्वयं भी इसका पठन और मनन करते हुए भगवान्‌के आज्ञानुसार साधन करनेमें तत्पर हो जायँ; क्योंकि अति दुर्लभ मनुष्यके शरीरको प्राप्त होकर अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी दु:खमूलक क्षणभंगुर भोगोंके भोगनेमें नष्ट करना उचित नहीं है।

श्रीगीताके प्रधान विषय

श्रीगीताजीमें भगवान्‌ने अपनी प्राप्तिके लिये मुख्य दो मार्ग बताये हैं—एक सांख्ययोग, दूसरा कर्मयोग। उनमें—

(१) सम्पूर्ण पदार्थ मृगतृष्णाके जलकी भाँति अथवा स्वप्नकी सृष्टिके सदृश मायामय होनेसे मायाके कार्यरूप सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं, ऐसे समझकर मन, इन्द्रियों और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होना (अ० ५ श्लोक ८, ९) तथा सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे नित्य स्थित रहते हुए एक सच्चिदानन्दघन वासुदेवके सिवा अन्य किसीके भी होनेपनेका भाव न रहना, यह तो सांख्ययोगका साधन है तथा—

(२) सब कुछ भगवान्‌का समझकर सिद्धि-असिद्धिमें समत्वभाव रखते हुए आसक्ति और फलकी इच्छाका त्याग करके भगवदाज्ञानुसार केवल भगवान्‌के ही लिये सब कर्मोंका आचरण करना (अ० २ श्लोक ४८, अ० ५ श्लोक १०) तथा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मन, वाणी और शरीरसे सब प्रकार भगवान्‌के शरण होकर नाम, गुण और प्रभावसहित उनके स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना (अ० ६ श्लोक ४७), यह कर्मयोगका साधन है।

उक्त दोनों साधनोंका परिणाम एक होनेके कारण वे वास्तवमें अभिन्न माने गये हैं (अ० ५ श्लोक ४, ५), परन्तु साधनकालमें अधिकारी-भेदसे दोनोंका भेद होनेके कारण दोनों मार्ग भिन्न-

भिन्न बताये गये हैं (अ०३ श्लोक ३)। इसलिये एक पुरुष दोनों मार्गोंद्वारा एक कालमें नहीं चल सकता, जैसे श्रीगंगाजीपर जानेके दो मार्ग होते हुए भी एक मनुष्य दोनों मार्गोंद्वारा एक कालमें नहीं जा सकता। उक्त साधनोंमें कर्मयोगका साधन संन्यास-आश्रममें नहीं बन सकता; क्योंकि संन्यास-आश्रममें कर्मोंका स्वरूपसे भी त्याग कहा गया है और सांख्ययोगका साधन सभी आश्रमोंमें बन सकता है।

यदि कहो कि सांख्ययोगको भगवान्ने संन्यासके नामसे कहा है, इसलिये उसका संन्यास-आश्रममें ही अधिकार है, गृहस्थमें नहीं तो यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि दूसरे अध्यायमें श्लोक ११ से ३० तक जो सांख्यनिष्ठाका उपदेश किया गया है, उसके अनुसार भी भगवान्ने जगह-जगह अर्जुनको युद्ध करनेकी योग्यता दिखायी है। यदि गृहस्थमें सांख्ययोगका अधिकार ही नहीं होता तो भगवान्का इस प्रकार कहना कैसे बन सकता? हाँ, इतनी विशेषता अवश्य है कि सांख्यमार्गका अधिकारी देहाभिमानसे रहित होना चाहिये; क्योंकि जबतक शरीरमें अहंभाव रहता है, तबतक सांख्ययोगका साधन भली प्रकार समझमें नहीं आता। इसीसे भगवान्ने सांख्ययोगको कठिन बताया है (गीता अ० ५ श्लोक ६) तथा कर्मयोग साधनमें सुगम होनेके कारण उन्होंने अर्जुनके प्रति जगह-जगह कहा है कि तू निरन्तर मेरा चिन्तन करता हुआ कर्मयोगका आचरण कर।

अथ ध्यानम्

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्॥

अर्थ—जिनकी आकृति अतिशय शान्त है, जो शेषनागकी शय्यापर शयन किये हुए हैं, जिनकी नाभिमें कमल है, जो देवताओंके भी ईश्वर और सम्पूर्ण जगत्के आधार हैं, जो आकाशके सदृश सर्वत्र व्याप्त हैं, नील मेघके समान जिनका वर्ण है, अतिशय सुन्दर जिनके सम्पूर्ण अंग हैं, जो योगियोंद्वारा ध्यान करके प्राप्त किये जाते हैं, जो सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी हैं, जो जन्म-मरणरूप भयका नाश करनेवाले हैं, ऐसे लक्ष्मीपति, कमलनेत्र भगवान् श्रीविष्णुको मैं (सिरसे) प्रणाम करता हूँ।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥

अर्थ—ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण दिव्य स्तोत्रोंद्वारा जिनकी स्तुति करते हैं, सामवेदके गानेवाले अंग, पद, क्रम और उपनिषदोंके सहित वेदोंद्वारा जिनका गायन करते हैं, योगीजन ध्यानमें स्थित तद्गत हुए मनसे जिनका दर्शन करते हैं, देवता और असुरगण (कोई भी) जिनके अन्तको नहीं जानते, उन (परमपुरुष नारायण) देवके लिये मेरा नमस्कार है।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

[तत्त्वविवेचनीके अनुसार]

भाषाटीकासहित

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रधान-विषय—*१ से ११ तक दोनों सेनाओंके प्रधान-प्रधान शूर-वीरोंकी गणना और सामर्थ्यका कथन, (१२—१९) दोनों सेनाओंकी शंखध्वनिका कथन, (२०—२७) अर्जुनद्वारा सेनानिरीक्षणका प्रसंग, (२८—४७) मोहसे व्याप्त हुए अर्जुनके कायरता, स्नेह और शोकयुक्त वचन।*

[धृतराष्ट्रका युद्ध-विवरण-विषयक प्रश्न।]

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥ १ ॥

पदच्छेदः—

धर्मक्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे, समवेताः, युयुत्सवः,
मामकाः, पाण्डवाः, च, एव, किम्, अकुर्वत, सञ्जय॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
सञ्जय	= हे संजय!	**युयुत्सवः**	= युद्धकी इच्छावाले
धर्मक्षेत्रे	= धर्मभूमि		
कुरुक्षेत्रे	= कुरुक्षेत्रमें	**मामकाः**	= मेरे
समवेताः	= एकत्रित	**च**	= और

एव	= *	**किम्**	= क्या
पाण्डवाः	= पाण्डुके पुत्रोंने	**अकुर्वत**	= किया ?

[द्रोणाचार्यके पास जाकर दुर्योधनके बातचीत आरम्भ करनेका वर्णन ।]

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत्॥ २॥

दृष्ट्वा, तु, पाण्डवानीकम्, व्यूढम्, दुर्योधनः, तदा,
आचार्यम्, उपसङ्गम्य, राजा, वचनम्, अब्रवीत्॥ २॥

इसपर संजय बोले—

तदा	= उस समय	**दृष्ट्वा**	= देखकर
राजा	= राजा	**तु**	= और
दुर्योधनः	= दुर्योधनने	**आचार्यम्**	= द्रोणाचार्यके
व्यूढम्	= व्यूहरचनायुक्त	**उपसङ्गम्य**	= पास जाकर (यह)
पाण्डवानीकम्	= { पाण्डवोंकी सेनाको	**वचनम्**	= वचन
		अब्रवीत्	= कहा ।

[विशाल पाण्डवसेना देखनेके लिये द्रोणाचार्यसे दुर्योधनकी प्रार्थना ।]

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता॥ ३॥

पश्य, एताम्, पाण्डुपुत्राणाम्, आचार्य, महतीम्, चमूम्,
व्यूढाम्, द्रुपदपुत्रेण, तव, शिष्येण, धीमता॥ ३॥

आचार्य	= हे आचार्य !	**द्रुपदपुत्रेण**	= { द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नद्वारा
तव	= आपके		
धीमता	= बुद्धिमान्	**व्यूढाम्**	= { व्यूहाकार खड़ी की हुई
शिष्येण	= शिष्य		

* यहाँ 'एव' शब्द समुच्चयार्थक ही है।

पाण्डुपुत्राणाम्	= पाण्डु-पुत्रोंकी	**चमूम्**	= सेनाको
एताम्	= इस		
महतीम्	= बड़ी भारी	**पश्य**	= देखिये।

[पाण्डवसेनाके प्रमुख योद्धाओंके नाम।]

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः॥ ४॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः॥ ५॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः॥ ६॥

अत्र, शूराः, महेष्वासाः, भीमार्जुनसमाः, युधि,
युयुधानः, विराटः, च, द्रुपदः, च, महारथः॥ ४॥
धृष्टकेतुः, चेकितानः, काशिराजः, च, वीर्यवान्,
पुरुजित्, कुन्तिभोजः, च, शैब्यः, च, नरपुङ्गवः॥ ५॥
युधामन्युः, च, विक्रान्तः, उत्तमौजाः, च, वीर्यवान्,
सौभद्रः, द्रौपदेयाः, च, सर्वे, एव, महारथाः॥ ६॥

अत्र	= इस सेनामें	**च**	= और
महेष्वासाः	= { बड़े-बड़े धनुषोंवाले	**विराटः**	= विराट
		च	= तथा
च	= तथा	**महारथः**	= महारथी
युधि	= युद्धमें	**द्रुपदः**	= राजा द्रुपद,
भीमार्जुनसमाः	= { भीम और अर्जुनके समान	**धृष्टकेतुः**	= धृष्टकेतु
		च	= और
शूराः	= शूर-वीर	**चेकितानः**	= चेकितान
युयुधानः	= सात्यकि	**च**	= तथा

वीर्यवान्	= बलवान्	**वीर्यवान्**	= बलवान्
काशिराजः	= काशिराज,	**उत्तमौजाः**	= उत्तमौजा,
पुरुजित्	= पुरुजित्,	**सौभद्रः**	= { सुभद्रापुत्र अभिमन्यु
कुन्तिभोजः	= कुन्तिभोज		
च	= और	**च**	= एवं
नरपुङ्गवः	= मनुष्योंमें श्रेष्ठ	**द्रौपदेयाः**	= { द्रौपदीके पाँचों पुत्र—(ये)
शैब्यः	= शैब्य,		
विक्रान्तः	= पराक्रमी	**सर्वे, एव**	= सभी
युधामन्युः	= युधामन्यु	**महारथाः**	= महारथी
च	= तथा	**(सन्ति)**	= हैं।

[अपनी सेनाके प्रधान सेना-नायकोंको भलीभाँति जाननेके लिये द्रोणाचार्यसे दुर्योधनकी प्रार्थना।]

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य सञ्ज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते॥ ७॥

अस्माकम्, तु, विशिष्टाः, ये, तान्, निबोध, द्विजोत्तम,
नायकाः, मम, सैन्यस्य, सञ्ज्ञार्थम्, तान्, ब्रवीमि, ते॥ ७॥

द्विजोत्तम	= हे ब्राह्मणश्रेष्ठ!	**ते**	= आपकी
अस्माकम्	= अपने पक्षमें	**सञ्ज्ञार्थम्**	= जानकारीके लिये
तु	= भी	**मम**	= मेरी
ये	= जो	**सैन्यस्य**	= सेनाके (जो-जो)
विशिष्टाः	= प्रधान		
(सन्ति)	= हैं,	**नायकाः**	= सेनापति (हैं),
तान्	= उनको (आप)	**तान्**	= उनको
निबोध	= समझ लीजिये।	**ब्रवीमि**	= बतलाता हूँ।

[उनमेंसे कुछके नाम और सब वीरोंके पराक्रम तथा युद्ध-कौशलका वर्णन।]

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च॥ ८॥

भवान्, भीष्मः, च, कर्णः, च, कृपः, च, समितिञ्जयः,
अश्वत्थामा, विकर्णः, च, सौमदत्तिः, तथा, एव, च॥ ८॥

एक तो स्वयम्—

भवान्	=	आप—द्रोणाचार्य	**च**	=	तथा
च	=	और	**तथा**	=	वैसे
भीष्मः	=	पितामह भीष्म	**एव**	=	ही
च	=	तथा	**अश्वत्थामा**	=	अश्वत्थामा,
कर्णः	=	कर्ण	**विकर्णः**	=	विकर्ण
च	=	और	**च**	=	और
समितिञ्जयः	=	संग्रामविजयी	**सौमदत्तिः**	=	सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा
कृपः	=	कृपाचार्य			

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः॥ ९॥

अन्ये, च, बहवः, शूराः, मदर्थे, त्यक्तजीविताः,
नानाशस्त्रप्रहरणाः, सर्वे, युद्धविशारदाः॥ ९॥

तथा—

अन्ये	=	और	**शूराः**	=	शूरवीर
च	=	भी	**नानाशस्त्र-प्रहरणाः**	=	अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित (और)
मदर्थे	=	मेरे लिये			
त्यक्तजीविताः	=	जीवनकी आशा त्याग देनेवाले	**सर्वे**	=	सब-के-सब
			युद्धविशारदाः	=	युद्धमें चतुर
बहवः	=	बहुत-से	**(सन्ति)**	=	हैं।

[दुर्योधनका पाण्डव-सेनाकी अपेक्षा अपनी सेनाको अजेय बतलाना।]

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्॥ १० ॥

अपर्याप्तम्, तत्, अस्माकम्, बलम्, भीष्माभिरक्षितम्,
पर्याप्तम्, तु, इदम्, एतेषाम्, बलम्, भीमाभिरक्षितम्॥ १० ॥

और—

भीष्माभिरक्षितम्	=	भीष्मपितामह-द्वारा रक्षित	**तु**	=	और
			भीमाभिरक्षितम्	=	भीमद्वारा रक्षित
अस्माकम्	=	हमारी	**एतेषाम्**	=	इन लोगोंकी
तत्	=	वह	**इदम्**	=	यह
बलम्	=	सेना	**बलम्**	=	सेना
अपर्याप्तम्	=	सब प्रकारसे अजेय है	**पर्याप्तम्**	=	जीतनेमें सुगम है।

[सब वीरोंसे भीष्मकी रक्षा करनेके लिये दुर्योधनका अनुरोध।]

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि॥ ११ ॥

अयनेषु, च, सर्वेषु, यथाभागम्, अवस्थिताः,
भीष्मम्, एव, अभिरक्षन्तु, भवन्तः, सर्वे, एव, हि॥ ११ ॥

च	=	इसलिये	**सर्वे, एव**	=	सभी
सर्वेषु	=	सब	**हि**	=	निःसन्देह
अयनेषु	=	मोर्चोंपर	**भीष्मम्**	=	भीष्मपितामहकी
यथाभागम्	=	अपनी-अपनी जगह	**एव**	=	ही
अवस्थिताः	=	स्थित रहते हुए	**अभिरक्षन्तु**	=	सब ओरसे रक्षा करें।
भवन्तः	=	आपलोग			

[दुर्योधनकी प्रसन्नताके लिये भीष्मके गरजकर शंख बजानेका और कौरव-सेनामें शंख-नगारे आदि विभिन्न बाजोंके एक साथ बज उठनेका वर्णन।]

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्॥ १२॥

तस्य, सञ्जनयन्, हर्षम्, कुरुवृद्धः, पितामहः,
सिंहनादम्, विनद्य, उच्चैः, शङ्खम्, दध्मौ, प्रतापवान्॥ १२॥

इस प्रकार द्रोणाचार्यसे कहते हुए दुर्योधनके वचनोंको सुनकर—

कुरुवृद्धः = कौरवोंमें वृद्ध		**उच्चैः** = उच्च स्वरसे	
प्रतापवान् = बड़े प्रतापी		**सिंहनादम्** = सिंहकी दहाड़के समान	
पितामहः = पितामह भीष्मने			
तस्य = उस (दुर्योधन)-के (हृदयमें)		**विनद्य** = गरजकर	
		शङ्खम् = शंख	
हर्षम् = हर्ष			
सञ्जनयन् = उत्पन्न करते हुए		**दध्मौ** = बजाया।	

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत्॥ १३॥

ततः, शङ्खाः, च, भेर्यः, च, पणवानकगोमुखाः,
सहसा, एव, अभ्यहन्यन्त, सः, शब्दः, तुमुलः, अभवत्॥ १३॥

ततः = इसके पश्चात्	**सहसा** = एक साथ
शङ्खाः = शंख	**एव** = ही
च = और	**अभ्यहन्यन्त** = बज उठे। (उनका)
भेर्यः = नगारे	
च = तथा	**सः** = वह
पणवानक-गोमुखाः = ढोल, मृदंग और नरसिंघे आदि बाजे	**शब्दः** = शब्द
	तुमुलः = बड़ा भयंकर
	अभवत् = हुआ।

[क्रमशः श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीमसेन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा पाण्डव-सेनाके अन्यान्य समस्त विशिष्ट योद्धाओंद्वारा अपने-अपने शंखोंका बजाया जाना।]

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः॥ १४॥

ततः, श्वेतैः, हयैः, युक्ते, महति, स्यन्दने, स्थितौ,
माधवः, पाण्डवः, च, एव, दिव्यौ, शङ्खौ, प्रदध्मतुः॥ १४॥

ततः	= इसके अनन्तर	**माधवः**	= श्रीकृष्ण महाराज
श्वेतैः	= सफेद	**च**	= और
हयैः	= घोड़ोंसे	**पाण्डवः**	= अर्जुनने
युक्ते	= युक्त	**एव**	= भी
महति	= उत्तम	**दिव्यौ**	= अलौकिक
स्यन्दने	= रथमें	**शङ्खौ**	= शंख
स्थितौ	= बैठे हुए	**प्रदध्मतुः**	= बजाये।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः॥ १५॥

पाञ्चजन्यम्, हृषीकेशः, देवदत्तम्, धनञ्जयः,
पौण्ड्रम्, दध्मौ, महाशङ्खम्, भीमकर्मा, वृकोदरः॥ १५॥

उनमें—

हृषीकेशः	= श्रीकृष्ण महाराजने	**भीमकर्मा**	= भयानक कर्मवाले
पाञ्चजन्यम्	= पांचजन्य-नामक,	**वृकोदरः**	= भीमसेनने
धनञ्जयः	= अर्जुनने	**पौण्ड्रम्**	= पौण्ड्र नामक
देवदत्तम्	= देवदत्त नामक (और)	**महाशङ्खम्**	= महाशंख
		दध्मौ	= बजाया।

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ॥ १६॥

अनन्तविजयम्, राजा, कुन्तीपुत्रः, युधिष्ठिरः,
नकुलः, सहदेवः, च, सुघोषमणिपुष्पकौ॥ १६॥

कुन्तीपुत्रः = कुन्तीपुत्र
राजा = राजा
युधिष्ठिरः = युधिष्ठिरने
अनन्तविजयम् = अनन्तविजय नामक (और)
नकुलः = नकुल
च = तथा
सहदेवः = सहदेवने
सुघोष-मणिपुष्पकौ = सुघोष और मणिपुष्पक नामक शंख (बजाये)।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥ १७॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक्॥ १८॥

काश्यः, च, परमेष्वासः, शिखण्डी, च, महारथः,
धृष्टद्युम्नः, विराटः, च, सात्यकिः, च, अपराजितः॥ १७॥
द्रुपदः, द्रौपदेयाः, च, सर्वशः, पृथिवीपते,
सौभद्रः, च, महाबाहुः, शङ्खान्, दध्मुः, पृथक्, पृथक्॥ १८॥

परमेष्वासः = श्रेष्ठ धनुषवाले
काश्यः = काशिराज
च = और
महारथः = महारथी
शिखण्डी = शिखण्डी
च = एवं
धृष्टद्युम्नः = धृष्टद्युम्न
च = तथा
विराटः = राजा विराट
च = और
अपराजितः = अजेय
सात्यकिः = सात्यकि,
द्रुपदः = राजा द्रुपद
च = एवं

द्रौपदेयाः = द्रौपदीके पाँचों पुत्र
च = और
महाबाहुः = बड़ी भुजावाले
सौभद्रः = सुभद्रापुत्र अभिमन्यु— (इन सभीने)
पृथिवीपते = हे राजन्!
सर्वशः = सब ओरसे
पृथक्-पृथक् = अलग-अलग
शङ्खान् = शंख
दध्मुः = बजाये।

[पाण्डव-सेनाकी भयंकर शंख-ध्वनिसे आकाश और पृथ्वीके गूँज उठने तथा दुर्योधनादिके व्यथित होनेका वर्णन।]

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन्॥ १९ ॥

सः, घोषः, धार्तराष्ट्राणाम्, हृदयानि, व्यदारयत्,
नभः, च, पृथिवीम्, च, एव, तुमुलः, व्यनुनादयन्॥ १९ ॥

च = और
सः = उस
तुमुलः = भयानक
घोषः = शब्दने
नभः = आकाश
च = और
पृथिवीम् = पृथ्वीको
एव = भी
व्यनुनादयन् = गुँजाते हुए
धार्तराष्ट्राणाम् = धार्तराष्ट्रोंके यानि आपके पक्षवालोंके
हृदयानि = हृदय
व्यदारयत् = विदीर्ण कर दिये।

[धृतराष्ट्रपुत्रोंको युद्धके लिये तैयार देखकर अर्जुनका श्रीकृष्णसे अपना रथ दोनों सेनाओंके बीचमें ले चलनेके लिये कहना।]

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः॥ २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।

अर्जुन उवाच

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत॥ २१ ॥

अथ, व्यवस्थितान्, दृष्ट्वा, धार्तराष्ट्रान्, कपिध्वजः,
प्रवृत्ते, शस्त्रसम्पाते, धनुः, उद्यम्य, पाण्डवः॥ २० ॥
हृषीकेशम्, तदा, वाक्यम्, इदम्, आह, महीपते,
सेनयोः, उभयोः, मध्ये, रथम्, स्थापय, मे, अच्युत॥ २१ ॥

महीपते	= हे राजन्!	**उद्यम्य**	= उठाकर
अथ	= इसके बाद	**हृषीकेशम्**	= हृषीकेश श्रीकृष्ण महाराजसे
कपिध्वजः	= कपिध्वज		
पाण्डवः	= अर्जुनने		
व्यवस्थितान्	= मोर्चा बाँधकर डटे हुए	**इदम्**	= यह
		वाक्यम्	= वचन
धार्तराष्ट्रान्	= धृतराष्ट्र-सम्बन्धियोंको	**आह**	= कहा—
		अच्युत	= हे अच्युत!
दृष्ट्वा	= देखकर,	**मे**	= मेरे
तदा	= उस	**रथम्**	= रथको
शस्त्रसम्पाते	= शस्त्र चलनेकी तैयारीके	**उभयोः**	= दोनों
		सेनयोः	= सेनाओंके
प्रवृत्ते	= समय	**मध्ये**	= बीचमें
धनुः	= धनुष	**स्थापय**	= खड़ा कीजिये।

[रथको वहीं खड़े रखनेका संकेत करके सबको देखनेकी इच्छा प्रकट करना।]

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे॥ २२ ॥

यावत्, एतान्, निरीक्षे, अहम्, योद्धुकामान्, अवस्थितान्,
कैः, मया, सह, योद्धव्यम्, अस्मिन्, रणसमुद्यमे॥ २२ ॥

और—

यावत्	= जबतक (कि)	**अस्मिन्**	= इस
अहम्	= मैं	**रणसमुद्यमे**	= युद्धरूप व्यापारमें
अवस्थितान्	= युद्ध-क्षेत्रमें डटे हुए	**मया**	= मुझे
		कैः	= किन-किनके
योद्धुकामान्	= युद्धके अभिलाषी	**सह**	= साथ
एतान्	= इन विपक्षी योद्धाओंको	**योद्धव्यम्**	= युद्ध करना योग्य है (तबतक उसे खड़ा रखिये)।
निरीक्षे	= भली प्रकार देख लूँ (कि)		

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः॥ २३॥

योत्स्यमानान्, अवेक्षे, अहम्, ये, एते, अत्र, समागताः,
धार्तराष्ट्रस्य, दुर्बुद्धेः, युद्धे, प्रियचिकीर्षवः॥ २३॥

और—

दुर्बुद्धेः	= दुर्बुद्धि	**समागताः**	= आये हैं (इन)
धार्तराष्ट्रस्य	= दुर्योधनका		
युद्धे	= युद्धमें		
प्रियचिकीर्षवः	= हित चाहनेवाले	**योत्स्यमानान्**	= युद्ध करनेवालोंको
ये	= जो-जो		
एते	= ये राजालोग	**अहम्**	= मैं
अत्र	= इस सेनामें	**अवेक्षे**	= देखूँगा।

[रथको दोनों सेनाओंके बीचमें खड़ा करके श्रीकृष्णका युद्धके लिये एकत्रित सब वीरोंको देखनेके लिये अर्जुनसे कहना।]

सञ्जय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्॥ २४॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति॥ २५॥

एवम्, उक्तः, हृषीकेशः, गुडाकेशेन, भारत,
सेनयोः, उभयोः, मध्ये, स्थापयित्वा, रथोत्तमम्॥ २४॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः, सर्वेषाम्, च, महीक्षिताम्,
उवाच, पार्थ, पश्य, एतान्, समवेतान्, कुरून्, इति॥ २५॥

संजय बोले—

भारत = हे धृतराष्ट्र!		**च** = तथा	
गुडाकेशेन = अर्जुनद्वारा		**सर्वेषाम्** = सम्पूर्ण	
एवम् = इस प्रकार		**महीक्षिताम्** = राजाओंके सामने	
उक्तः = कहे हुए		**रथोत्तमम्** = उत्तम रथको	
		स्थापयित्वा = खड़ा करके	
हृषीकेशः = महाराज श्रीकृष्णचन्द्रने		**इति** = इस प्रकार	
		उवाच = कहा (कि)	
उभयोः = दोनों		**पार्थ** = हे पार्थ! (युद्धके लिये)	
सेनयोः = सेनाओंके			
मध्ये = बीचमें		**समवेतान्** = जुटे हुए	
भीष्मद्रोणप्रमुखतः = भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने		**एतान्** = इन	
		कुरून् = कौरवोंको	
		पश्य = देख।	

[स्वजन-समुदायको देखकर अर्जुनके व्याकुल होनेका तथा अर्जुनके द्वारा अपनी शोकाकुल स्थितिका वर्णन।]

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा॥ २६॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।

तत्र, अपश्यत्, स्थितान्, पार्थः, पितॄन्, अथ, पितामहान्,
आचार्यान्, मातुलान्, भ्रातॄन्, पुत्रान्, पौत्रान्, सखीन् ॥ २६ ॥
तथा श्वशुरान्, सुहृदः, च, एव, सेनयोः, उभयोः, अपि,

अथ	= इसके बाद	**भ्रातॄन्**	= भाइयोंको,
पार्थः	= पृथापुत्र अर्जुनने	**पुत्रान्**	= पुत्रोंको,
तत्र	= उन	**पौत्रान्**	= पौत्रोंको
उभयोः	= दोनों		
एव	= ही	**तथा**	= तथा
सेनयोः	= सेनाओंमें	**सखीन्**	= मित्रोंको,
स्थितान्	= स्थित	**श्वशुरान्**	= ससुरोंको
पितॄन्	= ताऊ-चाचोंको,	**च**	= और
पितामहान्	= दादों-परदादोंको,	**सुहृदः**	= सुहृदोंको
आचार्यान्	= गुरुओंको,	**अपि**	= भी
मातुलान्	= मामाओंको,	**अपश्यत्**	= देखा।

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्॥ २७ ॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।

तान्, समीक्ष्य, सः, कौन्तेयः, सर्वान्, बन्धून् अवस्थितान्, ॥ २७ ॥
कृपया, परया, आविष्टः, विषीदन्, इदम्, अब्रवीत्,

इस प्रकार—

तान्	= उन	**परया**	= अत्यन्त
अवस्थितान्	= उपस्थित	**कृपया**	= करुणासे
सर्वान्	= सम्पूर्ण	**आविष्टः**	= युक्त होकर
बन्धून्	= बन्धुओंको		
समीक्ष्य	= देखकर	**विषीदन्**	= शोक करते हुए
सः	= वे	**इदम्**	= यह (वचन)
कौन्तेयः	= कुन्तीपुत्र अर्जुन	**अब्रवीत्**	= बोले।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्॥ २८॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥ २९॥

दृष्ट्वा, इमम्, स्वजनम्, कृष्ण, युयुत्सुम्, समुपस्थितम्॥ २८॥
सीदन्ति, मम, गात्राणि, मुखम्, च, परिशुष्यति,
वेपथुः, च, शरीरे, मे, रोमहर्षः, च, जायते॥ २९॥

अर्जुन बोले—

कृष्ण	= हे कृष्ण!, (युद्ध-क्षेत्रमें)	**सीदन्ति**	= शिथिल हुए जा रहे हैं
		च	= और
समुपस्थितम्	= डटे हुए	**मुखम्**	= मुख
युयुत्सुम्	= युद्धके अभिलाषी	**परिशुष्यति**	= सूखा जा रहा है
		च	= तथा
इमम्	= इस	**मे**	= मेरे
स्वजनम्	= स्वजन-समुदायको	**शरीरे**	= शरीरमें
		वेपथुः	= कम्प
दृष्ट्वा	= देखकर	**च**	= एवं
मम	= मेरे	**रोमहर्षः**	= रोमांच
गात्राणि	= अंग	**जायते**	= हो रहा है।

गाण्डीवं स्त्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥ ३०॥

गाण्डीवम्, स्त्रंसते, हस्तात्, त्वक्, च, एव, परिदह्यते,
न, च, शक्नोमि, अवस्थातुम्, भ्रमति, इव, च, मे, मनः॥ ३०॥

तथा—

हस्तात्	= हाथसे	**मे**	= मेरा
गाण्डीवम्	= गाण्डीव धनुष	**मनः**	= मन
स्त्रंसते	= गिर रहा है	**भ्रमति, इव**	= भ्रमित-सा हो रहा है,
च	= और		
त्वक्	= त्वचा	**(अतः)**	= इसलिये (मैं)
एव	= भी	**अवस्थातुम्**	= खड़ा रहनेको
परिदह्यते	= बहुत जल रही है	**च**	= भी
च	= तथा	**न शक्नोमि**	= समर्थ नहीं हूँ।

[युद्धके विपरीत परिणामका वर्णन।]

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥ ३१॥

निमित्तानि, च, पश्यामि, विपरीतानि, केशव,
न, च, श्रेयः, अनुपश्यामि, हत्वा, स्वजनम्, आहवे॥ ३१॥

और—

केशव	= हे केशव! (मैं)	**स्वजनम्**	= स्वजन-समुदायको
निमित्तानि	= लक्षणोंको		
च	= भी	**हत्वा**	= मारकर
विपरीतानि	= विपरीत ही	**श्रेयः**	= कल्याण
पश्यामि	= देख रहा हूँ (तथा)	**च**	= भी
		न	= नहीं
आहवे	= युद्धमें	**अनुपश्यामि**	= देखता।

[अर्जुनकी विजय और राज्य-सुख न चाहनेकी युक्तिपूर्ण दलील।]

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा॥ ३२॥

न, काङ्क्षे, विजयम्, कृष्ण, न, च, राज्यम्, सुखानि, च,
किम्, नः, राज्येन, गोविन्द, किम्, भोगैः, जीवितेन, वा॥ ३२॥

और—

कृष्ण	= हे कृष्ण! (मैं)	**गोविन्द**	= हे गोविन्द!
न	= न (तो)	**नः**	= हमें (ऐसे)
विजयम्	= विजय	**राज्येन**	= राज्यसे
काङ्क्षे	= चाहता हूँ	**किम्**	= क्या प्रयोजन है
च	= और	**वा**	= अथवा (ऐसे)
न	= न		
राज्यम्	= राज्य	**भोगैः**	= भोगोंसे (और)
च	= तथा	**जीवितेन**	= जीवनसे (भी)
सुखानि	= सुखोंको (ही)।	**किम्**	= क्या (लाभ है)?

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥ ३३॥

येषाम्, अर्थे, काङ्क्षितम्, नः, राज्यम्, भोगाः, सुखानि, च,
ते, इमे, अवस्थिताः, युद्धे, प्राणान्, त्यक्त्वा, धनानि, च॥ ३३॥

क्योंकि—

नः	= हमें	**इमे**	= ये सब
येषाम्	= जिनके	**धनानि**	= धन
अर्थे	= लिये	**च**	= और
राज्यम्	= राज्य,	**प्राणान्**	= { जीवन (की आशा)-को
भोगाः	= भोग		
च	= और		
सुखानि	= सुखादि	**त्यक्त्वा**	= त्यागकर
काङ्क्षितम्	= अभीष्ट हैं,	**युद्धे**	= युद्धमें
ते	= वे (ही)	**अवस्थिताः**	= खड़े हैं।

[अर्जुनद्वारा आचार्यादि स्वजनोंका वर्णन तथा इनको न मारनेकी इच्छा प्रकट करना।]

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥ ३४ ॥

आचार्याः, पितरः, पुत्राः, तथा, एव, च, पितामहाः,
मातुलाः, श्वशुराः, पौत्राः, श्यालाः, सम्बन्धिनः, तथा ॥ ३४ ॥

जो कि—

आचार्याः = गुरुजन
पितरः = ताऊ-चाचे,
पुत्राः = लड़के
च = और
तथा, एव = उसी प्रकार
पितामहाः = दादे,
मातुलाः = मामे,
श्वशुराः = ससुर,
पौत्राः = पौत्र,
श्यालाः = साले
तथा = तथा (और भी)
सम्बन्धिनः = सम्बन्धी लोग (हैं)।

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ ३५ ॥

एतान्, न, हन्तुम्, इच्छामि, घ्नतः, अपि, मधुसूदन,
अपि, त्रैलोक्यराज्यस्य, हेतोः, किम्, नु, महीकृते ॥ ३५ ॥

इसलिये—

मधुसूदन = हे मधुसूदन! (मुझे)
घ्नतः = मारनेपर
अपि = भी (अथवा)
त्रैलोक्यराज्यस्य = तीनों लोकोंके राज्यके
हेतोः = लिये
अपि = भी (मैं)
एतान् = इन सबको
हन्तुम् = मारना
न = नहीं
इच्छामि = चाहता; (फिर)
महीकृते = पृथ्वीके लिये (तो)
नु किम् = कहना ही क्या है ?

[आततायी होनेपर भी दुर्योधनादि स्वजनोंको मारनेमें पापकी प्राप्ति और सुख तथा प्रसन्नताका अभाव बतलाना।]

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

निहत्य, धार्तराष्ट्रान्, नः, का, प्रीतिः, स्यात्, जनार्दन,
पापम्, एव, आश्रयेत्, अस्मान्, हत्वा, एतान्, आततायिनः ॥ ३६ ॥

जनार्दन	=	हे जनार्दन!	**एतान्**	=	इन
धार्तराष्ट्रान्	=	धृतराष्ट्रके पुत्रोंको	**आततायिनः**	=	आततायियोंको
निहत्य	=	मारकर	**हत्वा**	=	मारकर (तो)
नः	=	हमें	**अस्मान्**	=	हमें
का	=	क्या	**पापम्**	=	पाप
प्रीतिः	=	प्रसन्नता	**एव**	=	ही
स्यात्	=	होगी?	**आश्रयेत्**	=	लगेगा।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव॥ ३७ ॥

तस्मात्, न, अर्हाः, वयम्, हन्तुम्, धार्तराष्ट्रान्, स्वबान्धवान्,
स्वजनम्, हि, कथम्, हत्वा, सुखिनः, स्याम, माधव॥ ३७ ॥

तस्मात्	=	अतएव	**न, अर्हाः**	=	योग्य नहीं हैं;
माधव	=	हे माधव!	**हि**	=	क्योंकि
स्वबान्धवान्	=	अपने ही बान्धव	**स्वजनम्**	=	अपने ही कुटुम्बको
धार्तराष्ट्रान्	=	धृतराष्ट्रके पुत्रोंको	**हत्वा**	=	मारकर (हम)
			कथम्	=	कैसे
हन्तुम्	=	मारनेके लिये	**सुखिनः**	=	सुखी
वयम्	=	हम	**स्याम**	=	होंगे?

[अर्जुनका कुलके नाश और मित्रद्रोहसे होनेवाले पापसे बचनेके लिये युद्ध न करना उचित बतलाना।]

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्॥ ३८॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन॥ ३९॥

यद्यपि, एते, न, पश्यन्ति, लोभोपहतचेतसः, कुलक्षयकृतम्, दोषम्, मित्रद्रोहे, च, पातकम्॥ ३८॥
कथम्, न, ज्ञेयम्, अस्माभिः, पापात्, अस्मात्, निवर्तितुम्, कुलक्षयकृतम्, दोषम्, प्रपश्यद्भिः, जनार्दन॥ ३९॥

यद्यपि	= यद्यपि	**जनार्दन**	= हे जनार्दन!
लोभोपहतचेतसः	= { लोभसे भ्रष्टचित्त हुए	**कुलक्षयकृतम्**	= { कुलके नाशसे उत्पन्न
एते	= ये लोग	**दोषम्**	= दोषको
कुलक्षयकृतम्	= { कुलके नाशसे उत्पन्न	**प्रपश्यद्भिः**	= जाननेवाले
		अस्माभिः	= हमलोगोंको
दोषम्	= दोषको	**अस्मात्**	= इस
च	= और	**पापात्**	= पापसे
मित्रद्रोहे	= { मित्रोंसे विरोध करनेमें	**निवर्तितुम्**	= हटनेके लिये
		कथम्	= क्यों
पातकम्	= पापको	**न**	= नहीं
न	= नहीं	**ज्ञेयम्**	= { विचार करना चाहिये ?
पश्यन्ति	= देखते, (तो भी)		

[कुल-नाशसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका विस्तारपूर्वक वर्णन।]

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥ ४०॥

कुलक्षये, प्रणश्यन्ति, कुलधर्माः, सनातनाः,
धर्मे, नष्टे, कुलम्, कृत्स्नम्, अधर्मः, अभिभवति, उत ॥ ४० ॥

क्योंकि—

कुलक्षये = कुलके नाशसे		**कृत्स्नम्** = सम्पूर्ण	
सनातनाः = सनातन		**कुलम्** = कुलमें	
कुलधर्माः = कुलधर्म		**अधर्मः** = पाप	
प्रणश्यन्ति = नष्ट हो जाते हैं,		**उत** = भी	
धर्मे = धर्मके		**अभिभवति** = बहुत फैल जाता है।	
नष्टे = नाश हो जानेपर			

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः॥ ४१ ॥

अधर्माभिभवात्, कृष्ण, प्रदुष्यन्ति, कुलस्त्रियः,
स्त्रीषु, दुष्टासु, वार्ष्णेय, जायते, वर्णसङ्करः ॥ ४१ ॥

तथा—

कृष्ण = हे कृष्ण!	**वार्ष्णेय** = हे वार्ष्णेय!
अधर्माभिभवात् = पापके अधिक बढ़ जानेसे	**स्त्रीषु** = स्त्रियोंके
कुलस्त्रियः = कुलकी स्त्रियाँ	**दुष्टासु** = दूषित हो जानेपर
प्रदुष्यन्ति = अत्यन्त दूषित हो जाती हैं (और)	**वर्णसङ्करः** = वर्णसंकर
	जायते = उत्पन्न होता है—

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥ ४२ ॥

सङ्करः, नरकाय, एव, कुलघ्नानाम्, कुलस्य, च,
पतन्ति, पितरः, हि, एषाम्, लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

और वह—

सङ्करः	=	वर्णसंकर	**क्रियाः**	=	क्रियावाले अर्थात् श्राद्ध और तर्पणसे वंचित
कुलघ्नानाम्	=	कुलघातियोंको	**एषाम्**	=	इनके
च	=	और	**पितरः**	=	पितरलोग
कुलस्य	=	कुलको	**हि**	=	भी
नरकाय	=	नरकमें ले जानेके लिये	**पतन्ति**	=	अधोगतिको प्राप्त होते हैं।
एव	=	ही (होता है)			
लुप्तपिण्डोदक-	=	लुप्त हुई पिण्ड और जलकी			

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥ ४३॥

दोषैः, एतैः, कुलघ्नानाम्, वर्णसङ्करकारकैः,
उत्साद्यन्ते, जातिधर्माः, कुलधर्माः, च, शाश्वताः॥ ४३॥

और—

एतैः	=	इन	**कुलधर्माः**	=	कुल-धर्म
वर्णसङ्करकारकैः	=	वर्णसंकरकारक	**च**	=	और
दोषैः	=	दोषोंसे			
कुलघ्नानाम्	=	कुलघातियोंके	**जातिधर्माः**	=	जाति-धर्म
शाश्वताः	=	सनातन	**उत्साद्यन्ते**	=	नष्ट हो जाते हैं।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥ ४४॥

उत्सन्नकुलधर्माणाम्, मनुष्याणाम्, जनार्दन,
नरके, अनियतम्, वासः, भवति, इति, अनुशुश्रुम॥ ४४॥

तथा—

जनार्दन	= हे जनार्दन!	**अनियतम्**	= अनिश्चित कालतक
उत्सन्नकुल-धर्माणाम्	= जिनका कुल-धर्म नष्ट हो गया है, (ऐसे)	**नरके**	= नरकमें
		वासः	= वास
		भवति	= होता है,
		इति	= ऐसा (हम)
मनुष्याणाम्	= मनुष्योंका	**अनुशुश्रुम**	= सुनते आये हैं।

[राज्य और सुखादि लोभसे स्वजनोंको मारनेके लिये की हुई युद्धकी तैयारीको महान् पापका आरम्भ बतलाना एवं अर्जुनका दुर्योधनादिद्वारा अपने मारे जानेको श्रेष्ठ बतलाना।]

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

अहो, बत, महत्, पापम्, कर्तुम्, व्यवसिताः, वयम्,
यत्, राज्यसुखलोभेन, हन्तुम्, स्वजनम्, उद्यताः ॥ ४५ ॥

अहो	= हा!	**व्यवसिताः**	= तैयार हो गये हैं,
बत	= शोक!	**यत्**	= जो
वयम्	= हमलोग (बुद्धिमान् होकर भी)	**राज्यसुखलोभेन**	= राज्य और सुखके लोभसे
महत्	= महान्	**स्वजनम्**	= स्वजनोंको
पापम्	= पाप	**हन्तुम्**	= मारनेके लिये
कर्तुम्	= करनेको	**उद्यताः**	= उद्यत हो गये हैं।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥ ४६ ॥

यदि, माम्, अप्रतीकारम्, अशस्त्रम्, शस्त्रपाणयः,
धार्तराष्ट्राः, रणे, हन्युः, तत्, मे, क्षेमतरम्, भवेत् ॥ ४६ ॥

यदि	=	यदि	**रणे**	=	रणमें
माम्	=	मुझ	**हन्युः**	=	मार डालें (तो)
अशस्त्रम्	=	शस्त्ररहित (एवं)	**तत्**	=	वह (मारना भी)
अप्रतीकारम्	=	सामना न करनेवालेको	**मे**	=	मेरे लिये
शस्त्रपाणयः	=	शस्त्र हाथमें लिये हुए	**क्षेमतरम्**	=	अधिक कल्याण-कारक
धार्तराष्ट्राः	=	धृतराष्ट्रके पुत्र	**भवेत्**	=	होगा।

[युद्ध न करनेका निश्चय करके शोकनिमग्न अर्जुनके शस्त्रत्यागपूर्वक रथपर बैठ जानेकी बात कहकर संजयद्वारा अध्यायसमाप्ति।]

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥ ४७॥

एवम्, उक्त्वा, अर्जुनः, सङ्ख्ये, रथोपस्थे, उपाविशत्,
विसृज्य, सशरम्, चापम्, शोकसंविग्नमानसः॥ ४७॥

संजय बोले कि—

सङ्ख्ये	=	रणभूमिमें	**सशरम्**	=	बाणसहित
शोकसंविग्न-मानसः	=	शोकसे उद्विग्न मनवाला	**चापम्**	=	धनुषको
			विसृज्य	=	त्यागकर
अर्जुनः	=	अर्जुन	**रथोपस्थे**	=	रथके पिछले भागमें
एवम्	=	इस प्रकार			
उक्त्वा	=	कहकर	**उपाविशत्**	=	बैठ गया।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

__प्रधान-विषय__—१ से १० तक अर्जुनकी कायरताके विषयमें श्रीकृष्णार्जुनका संवाद, (११—३०) सांख्ययोगका विषय, (३१—३८) क्षात्रधर्मके अनुसार युद्ध करनेकी आवश्यकताका निरूपण, (३९—५३) निष्काम कर्मयोगका विषय, (५४—७२) स्थिरबुद्धि पुरुषके लक्षण और उसकी महिमा।

[संजयद्वारा अर्जुनके विषादका वर्णन।]

सञ्जय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

तम्, तथा, कृपया, आविष्टम्, अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्, विषीदन्तम्, इदम्, वाक्यम्, उवाच, मधुसूदनः ॥ १ ॥

संजय बोले कि—

तथा	=	उस प्रकार	**तम्**	=	उस अर्जुनके प्रति
कृपया	=	करुणासे	**मधुसूदनः**	=	भगवान् मधुसूदनने
आविष्टम्	=	व्याप्त (और)	**इदम्**	=	यह
अश्रुपूर्णा-कुलेक्षणम्	=	आँसुओंसे पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रोंवाले	**वाक्यम्**	=	वचन
विषीदन्तम्	=	शोकयुक्त	**उवाच**	=	कहा।

[श्रीकृष्णद्वारा अर्जुनके मोह और कायरतायुक्त विषादकी निन्दा एवं उसे युद्धके लिये उत्साहित करना।]

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

कुतः, त्वा, कश्मलम्, इदम्, विषमे, समुपस्थितम्,
अनार्यजुष्टम्, अस्वर्ग्यम्, अकीर्तिकरम्, अर्जुन ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले—

अर्जुन = हे अर्जुन!
त्वा = तुझे
(इस)
विषमे = असमयमें
इदम् = यह
कश्मलम् = मोह
कुतः = किस हेतुसे
समुपस्थितम् = प्राप्त हुआ?

(यतः) = क्योंकि
अनार्यजुष्टम् = न तो यह श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा आचरित है,
अस्वर्ग्यम् = न स्वर्गको देनेवाला है और
अकीर्तिकरम् = न कीर्तिको करनेवाला ही है।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥ ३ ॥

क्लैब्यम्, मा, स्म, गमः, पार्थ, न, एतत्, त्वयि, उपपद्यते,
क्षुद्रम्, हृदयदौर्बल्यम्, त्यक्त्वा, उत्तिष्ठ, परन्तप॥ ३ ॥

इसलिये—

पार्थ = हे अर्जुन!
क्लैब्यम् = नपुंसकताको
मा, स्म, गमः = मत प्राप्त हो,
त्वयि = तुझमें
एतत् = यह
न, उपपद्यते = उचित नहीं जान पड़ती।

परन्तप = हे परंतप!
क्षुद्रम्, हृदयदौर्बल्यम् = हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको
त्यक्त्वा = त्यागकर
उत्तिष्ठ = युद्धके लिये खड़ा हो जा।

[अर्जुनका भीष्म-द्रोण आदि पूज्य गुरुजनोंको मारनेकी अपेक्षा भिक्षान्नद्वारा निर्वाह श्रेष्ठ बतलाना।]

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥ ४॥

कथम्, भीष्मम्, अहम्, सङ्ख्ये, द्रोणम्, च, मधुसूदन, इषुभिः, प्रति, योत्स्यामि, पूजार्हौ, अरिसूदन॥ ४॥

तब अर्जुन बोले कि—

मधुसूदन = हे मधुसूदन!
अहम् = मैं
सङ्ख्ये = रणभूमिमें
कथम् = किस प्रकार
इषुभिः = बाणोंसे
भीष्मम् = भीष्मपितामह
च = और
द्रोणम् = द्रोणाचार्यके
प्रति योत्स्यामि = { विरुद्ध लड़ूँगा ?
(यतः) = क्योंकि
अरिसूदन = हे अरिसूदन!
(तौ) = वे दोनों ही
पूजार्हौ = पूजनीय हैं।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान्॥ ५॥

गुरून्, अहत्वा, हि, महानुभावान्, श्रेयः, भोक्तुम्, भैक्ष्यम्, अपि, इह, लोके, हत्वा, अर्थकामान्, तु, गुरून्, इह, एव, भुञ्जीय, भोगान्, रुधिरप्रदिग्धान्॥ ५॥

इसलिये इन—

महानुभावान् = महानुभाव
गुरून् = गुरुजनोंको
अहत्वा = न मारकर (मैं)
इह = इस
लोके = लोकमें
भैक्ष्यम् = भिक्षाका अन्न

अपि = भी
भोक्तुम् = खाना
श्रेयः = कल्याणकारक (समझता हूँ)।
हि = क्योंकि
गुरून् = गुरुजनोंको
हत्वा = मारकर
(अपि) = भी
इह = इस लोकमें
रुधिरप्रदिग्धान् = रुधिरसे सने हुए
अर्थकामान् = अर्थ और कामरूप
भोगान्, एव = भोगोंको ही
तु = तो
भुञ्जीय = भोगूँगा।

[युद्ध करने या न करनेके विषयमें अर्जुनका संशय।]

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो-
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥ ६॥

न, च, एतत्, विद्मः, कतरत्, नः, गरीयः, यत्, वा, जयेम, यदि, वा, नः, जयेयुः, यान्, एव, हत्वा, न, जिजीविषामः, ते, अवस्थिताः, प्रमुखे, धार्तराष्ट्राः॥ ६॥

और हम—

एतत् = यह
च = भी
न = नहीं
विद्मः = जानते (कि)
नः = हमारे लिये (युद्ध करना और न करना—इन)
कतरत् = दोनोंमेंसे कौन-सा
गरीयः = श्रेष्ठ है
यत्, वा = अथवा (यह भी नहीं जानते कि)
जयेम = उन्हें हम जीतेंगे
यदि, वा = या
नः = हमको (वे)
जयेयुः = जीतेंगे। (और)
यान् = जिनको
हत्वा = मारकर (हम)
न, जिजीविषामः = जीना भी नहीं चाहते,

ते	= वे	**प्रमुखे**	= हमारे सामने मुकाबलेमें
एव	= ही (हमारे आत्मीय)		
धार्तराष्ट्राः	= धृतराष्ट्रके पुत्र	**अवस्थिताः**	= खड़े हैं।

[मोह और कायरतारूप दोषोंका वर्णन करते हुए भगवान्‌के शरण होकर उनसे कल्याणप्रद उपदेश-हेतु अर्जुनकी प्रार्थना।]

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ ७॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः, पृच्छामि, त्वाम्, धर्मसम्मूढचेताः, यत्, श्रेयः, स्यात्, निश्चितम्, ब्रूहि, तत्, मे, शिष्यः, ते, अहम्, शाधि, माम्, त्वाम्, प्रपन्नम्॥ ७॥

इसलिये—

कार्पण्य-दोषोपहत-स्वभावः	= कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाव-वाला (तथा)	**स्यात्**	= हो,
		तत्	= वह
		मे	= मेरे लिये
		ब्रूहि	= कहिये; (क्योंकि)
धर्मसम्मूढचेताः	= धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ (मैं)	**अहम्**	= मैं
		ते	= आपका
त्वाम्	= आपसे	**शिष्यः**	= शिष्य हूँ (इसलिये)
पृच्छामि	= पूछता हूँ (कि)	**त्वाम्**	= आपके
यत्	= जो (साधन)	**प्रपन्नम्**	= शरण हुए
निश्चितम्	= निश्चित	**माम्**	= मुझको
श्रेयः	= कल्याणकारक	**शाधि**	= शिक्षा दीजिये।

[अर्जुनका त्रिलोकीके निष्कण्टक राज्यको भी शोकनिवृत्तिमें कारण न मानकर वैराग्यका भाव प्रदर्शित करना।]

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं-
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥ ८॥

न, हि, प्रपश्यामि, मम, अपनुद्यात्, यत्, शोकम्, उच्छोषणम्, इन्द्रियाणाम्, अवाप्य, भूमौ, असपत्नम्, ऋद्धम्, राज्यम्, सुराणाम्, अपि, च, आधिपत्यम्॥ ८॥

हि	= क्योंकि	**(तत्)**	= उस (उपाय)-को
भूमौ	= भूमिमें	**न**	= नहीं
असपत्नम्	= निष्कण्टक,	**प्रपश्यामि**	= देखता हूँ,
ऋद्धम्	= धनधान्य-सम्पन्न	**यत्**	= जो
राज्यम्	= राज्यको	**मम**	= मेरी
च	= और		
सुराणाम्	= देवताओंके	**इन्द्रियाणाम्**	= इन्द्रियोंके
आधिपत्यम्	= स्वामीपनेको	**उच्छोषणम्**	= सुखानेवाले
अवाप्य	= प्राप्त होकर	**शोकम्**	= शोकको
अपि	= भी (मैं)	**अपनुद्यात्**	= दूर कर सके ।

[(संजयद्वारा वर्णित) अर्जुनका युद्ध न करनेके लिये कहकर चुप होना तथा भगवान्‌का मुसकराकर बोलना।]

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥ ९॥

एवम्, उक्त्वा, हृषीकेशम्, गुडाकेशः, परन्तप, न, योत्स्ये, इति, गोविन्दम्, उक्त्वा, तूष्णीम्, बभूव, ह॥ ९॥

संजय बोले—

परन्तप = हे राजन्!
गुडाकेशः = निद्राको जीतनेवाले अर्जुन
हृषीकेशम् = अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराजके प्रति
एवम् = इस प्रकार
उक्त्वा = कहकर (फिर)
गोविन्दम् = श्रीगोविन्द, भगवान्‌से
न, योत्स्ये = 'युद्ध नहीं करूँगा'
इति = यह
ह = स्पष्ट
उक्त्वा = कहकर
तूष्णीम् = चुप
बभूव = हो गये।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः॥ १०॥

तम्, उवाच, हृषीकेशः, प्रहसन्, इव, भारत,
सेनयोः, उभयोः, मध्ये, विषीदन्तम्, इदम्, वचः॥ १०॥

उसके पश्चात्—

भारत = हे भरतवंशी धृतराष्ट्र!
हृषीकेशः = अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज
उभयोः = दोनों
सेनयोः = सेनाओंके
मध्ये = बीचमें
विषीदन्तम् = शोक करते हुए
तम् = उस अर्जुनको
प्रहसन्, इव = हँसते हुए-से
इदम् = यह
वचः = वचन
उवाच = बोले।

[भगवान्‌का अर्जुनके प्रति उपदेश प्रारम्भ।]

श्रीभगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥ ११॥

अशोच्यान्, अन्वशोचः, त्वम्, प्रज्ञावादान्, च भाषसे,
गतासून्, अगतासून्, च, न, अनुशोचन्ति, पण्डिताः॥ ११॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन!—

त्वम्	=	तू	**गतासून्**	=	जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये
अशोच्यान्	=	न शोक करने-योग्य मनुष्योंके लिये	**च**	=	और
अन्वशोचः	=	शोक करता है	**अगतासून्**	=	जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये (भी)
च	=	और			
प्रज्ञावादान्	=	पण्डितोंके-से वचनोंको	**पण्डिताः**	=	पण्डितजन
भाषसे	=	कहता है; (परंतु)	**न, अनुशोचन्ति**	=	शोक नहीं करते।

[आत्माकी नित्यता और निर्विकारताका निरूपण।]

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥ १२॥

न, तु, एव, अहम्, जातु, न, आसम्, न, त्वम्, न, इमे, जनाधिपाः,
न, च, एव, न, भविष्यामः, सर्वे, वयम्, अतः, परम्॥ १२॥

न	=	न	**इमे**	=	ये
तु	=	तो	**जनाधिपाः**	=	राजालोग
(एवम्)	=	ऐसा	**न**	=	नहीं
एव	=	ही (है कि)	**(आसन्)**	=	थे
अहम्	=	मैं	**च**	=	और
जातु	=	किसी कालमें	**न**	=	न
न	=	नहीं	**(एवम्)**	=	ऐसा
आसम्	=	था (अथवा)	**एव**		ही (है कि)
त्वम्	=	तू			
न	=	नहीं	**अतः**	=	इससे
(आसीः)	=	था (अथवा)	**परम्**	=	आगे

वयम्	= हम	**न**	= नहीं
सर्वे	= सब	**भविष्यामः**	= रहेंगे।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥ १३॥

देहिनः, अस्मिन्, यथा, देहे, कौमारम्, यौवनम्, जरा,
तथा, देहान्तरप्राप्तिः, धीरः, तत्र, न, मुह्यति॥ १३॥

किंतु—

यथा	= जैसे	**तथा**	= वैसे ही
देहिनः	= जीवात्माकी	**देहान्तरप्राप्तिः**	= अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है;
अस्मिन्	= इस		
देहे	= देहमें	**तत्र**	= उस विषयमें
कौमारम्	= बालकपन,	**धीरः**	= धीर पुरुष
यौवनम्	= जवानी (और)		
जरा	= वृद्धावस्था (होती है)	**न, मुह्यति**	= मोहित नहीं होता।

[समस्त भोगोंको अनित्य बतलाकर सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंको सहन करनेके लिये आज्ञा।]

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥ १४॥

मात्रास्पर्शाः, तु, कौन्तेय, शीतोष्णसुखदुःखदाः,
आगमापायिनः, अनित्याः, तान्, तितिक्षस्व, भारत॥ १४॥

कौन्तेय	= हे कुन्तीपुत्र!	**तु**	= तो
शीतोष्ण-सुखदुःखदाः	= सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखको देनेवाले	**आगमापायिनः**	= उत्पत्ति-विनाशशील (और)
मात्रास्पर्शाः	= इन्द्रिय और विषयोंके संयोग	**अनित्याः**	= अनित्य हैं, (इसलिये)

भारत	= हे भारत!	**तितिक्षस्व**	= सहन कर।
तान्	= उनको (तू)		

[उक्त सहनशीलताको मोक्षप्राप्तिमें हेतु बतलाना।]

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ १५॥

यम्, हि, न, व्यथयन्ति, एते, पुरुषम्, पुरुषर्षभ,
समदुःखसुखम्, धीरम्, सः, अमृतत्वाय, कल्पते॥ १५॥

हि	= क्योंकि	**एते**	= ये (इन्द्रिय और विषयोंके संयोग)
पुरुषर्षभ	= हे पुरुषश्रेष्ठ!	**न व्यथयन्ति**	= व्याकुल नहीं करते,
समदुःखसुखम्	= दुःख-सुखको समान समझनेवाले	**सः**	= वह
यम्	= जिस	**अमृतत्वाय**	= मोक्षके
धीरम्	= धीर	**कल्पते**	= योग्य होता है।
पुरुषम्	= पुरुषको		

[सत् और असत्‌का लक्षण।]

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ १६॥

न, असतः, विद्यते, भावः, न, अभावः, विद्यते, सतः,
उभयोः, अपि, दृष्टः, अन्तः, तु, अनयोः, तत्त्वदर्शिभिः॥ १६॥

और हे अर्जुन!—

असतः	= असत् (वस्तु) की (तो)	**विद्यते**	= है
		तु	= और
भावः	= सत्ता	**सतः**	= सत्‌का
न	= नहीं	**अभावः**	= अभाव

न	= नहीं	**अपि**	= ही
विद्यते	= है। (इस प्रकार)	**अन्तः**	= तत्त्व
अनयोः	= इन	**तत्त्वदर्शिभिः**	= तत्त्वज्ञानी पुरुषोंद्वारा
उभयोः	= दोनोंका	**दृष्टः**	= देखा गया है—

[सत् और असत् वस्तुके स्वरूपका निरूपण एवं अर्जुनको युद्ध करनेकी आज्ञा।]

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥ १७॥

अविनाशि, तु, तत्, विद्धि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्,
विनाशम्, अव्ययस्य, अस्य, न, कश्चित्, कर्तुम्, अर्हति॥ १७॥

इस न्यायके अनुसार—

अविनाशि	= नाशरहित	**ततम्**	= व्याप्त है।
तु	= तो (तू)	**अस्य**	= इस
तत्	= उसको	**अव्ययस्य**	= अविनाशीका
विद्धि	= जान,	**विनाशम्**	= विनाश
येन	= जिससे	**कर्तुम्**	= करनेमें
इदम्	= यह		
सर्वम्	= सम्पूर्ण जगत् (दृश्यवर्ग)	**कश्चित्**	= कोई भी
		न, अर्हति	= समर्थ नहीं है।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥ १८॥

अन्तवन्तः, इमे, देहाः, नित्यस्य, उक्ताः, शरीरिणः,
अनाशिनः, अप्रमेयस्य, तस्मात्, युध्यस्व, भारत॥ १८॥

और इस—

अनाशिनः	= नाशरहित,	**नित्यस्य**	= नित्यस्वरूप
अप्रमेयस्य	= अप्रमेय,	**शरीरिणः**	= जीवात्माके

इमे	= ये सब	**तस्मात्**	= इसलिये
देहाः	= शरीर	**भारत**	= हे भरतवंशी अर्जुन! (तू)
अन्तवन्तः	= नाशवान्		
उक्ताः	= कहे गये हैं।	**युध्यस्व**	= युद्ध कर।

[आत्माको मरने या मारनेवाला समझनेवालोंको अज्ञानी बतलाना।]

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥ १९॥

यः, एनम्, वेत्ति, हन्तारम्, यः, च, एनम्, मन्यते, हतम्,
उभौ तौ, न, विजानीतः, न, अयम्, हन्ति, न, हन्यते॥ १९॥

और—

यः	= जो	**उभौ**	= दोनों ही
एनम्	= इस आत्माको	**न**	= नहीं
हन्तारम्	= मारनेवाला	**विजानीतः**	= जानते; (क्योंकि)
वेत्ति	= समझता है		
च	= तथा	**अयम्**	= यह आत्मा (वास्तवमें)
यः	= जो		
एनम्	= इसको	**न**	= न (तो किसीको)
हतम्	= मरा	**हन्ति**	= मारता है (और)
मन्यते	= मानता है,	**न**	= न (किसीके द्वारा)
तौ	= वे	**हन्यते**	= मारा जाता है।

[जन्मादि छः विकारोंसे रहित आत्मस्वरूपका निरूपण।]

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो-
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ २०॥

न, जायते, म्रियते, वा, कदाचित्, न, अयम्, भूत्वा, भविता, वा, न, भूयः, अजः, नित्यः, शाश्वतः, अयम्, पुराणः, न, हन्यते, हन्यमाने, शरीरे ॥ २० ॥

अयम्	= यह आत्मा	**भविता**	= होनेवाला (ही) है। (क्योंकि)
कदाचित्	= किसी कालमें भी	**अयम्**	= यह
न	= न (तो)	**अजः**	= अजन्मा,
जायते	= जन्मता है	**नित्यः**	= नित्य,
वा	= और	**शाश्वतः**	= सनातन (और)
न	= न	**पुराणः**	= पुरातन (है);
म्रियते	= मरता (ही) है	**शरीरे**	= शरीरके
वा	= तथा	**हन्यमाने**	= मारे जानेपर भी (यह)
न	= न (यह)	**न**	= नहीं
भूत्वा	= उत्पन्न होकर	**हन्यते**	= मारा जाता।
भूयः	= फिर		

[आत्मतत्त्ववित् किसीको भी मारने या मरवानेवाला नहीं होता—यह कथन।]

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥ २१ ॥

वेद, अविनाशिनम्, नित्यम्, यः, एनम्, अजम्, अव्ययम्, कथम् सः, पुरुषः, पार्थ, कम्, घातयति, हन्ति, कम् ॥ २१ ॥

पार्थ	= हे पृथापुत्र अर्जुन!	**अजम्**	= अजन्मा (और)
यः	= जो	**अव्ययम्**	= अव्यय
पुरुषः	= पुरुष	**वेद**	= जानता है,
एनम्	= इस आत्माको	**सः**	= वह (पुरुष)
अविनाशिनम्	= नाशरहित,	**कथम्**	= कैसे
नित्यम्	= नित्य,	**कम्**	= किसको

घातयति	= मरवाता है (और)	**कम्**	= किसको
(कथम्)	= कैसे	**हन्ति**	= मारता है ?

[मनुष्यके कपड़े बदलनेका उदाहरण देते हुए शरीरान्तर-प्राप्तिका तत्त्व समझाना।]

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ २२॥

वासांसि, जीर्णानि, यथा, विहाय, नवानि, गृह्णाति, नरः, अपराणि, तथा, शरीराणि, विहाय, जीर्णानि, अन्यानि, संयाति, नवानि, देही॥ २२॥

और यदि तू कहे कि मैं तो शरीरोंके वियोगका शोक करता हूँ तो यह भी उचित नहीं है; क्योंकि—

यथा	= जैसे	**तथा**	= वैसे ही
नरः	= मनुष्य	**देही**	= जीवात्मा
जीर्णानि	= पुराने	**जीर्णानि**	= पुराने
वासांसि	= वस्त्रोंको	**शरीराणि**	= शरीरोंको
विहाय	= त्यागकर	**विहाय**	= त्यागकर
अपराणि	= दूसरे	**अन्यानि**	= दूसरे
नवानि	= नये (वस्त्रोंको)	**नवानि**	= नये (शरीरोंको)
गृह्णाति	= ग्रहण करता है,	**संयाति**	= प्राप्त होता है।

[आत्मतत्त्वको अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य तथा नित्य, सर्वगत, स्थाणु, अचल, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य एवं निर्विकार कहकर उसके लिये शोक करना अनुचित बतलाना।]

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ २३॥

न, एनम्, छिन्दन्ति, शस्त्राणि, न, एनम्, दहति, पावकः,
न, च, एनम्, क्लेदयन्ति, आपः, न, शोषयति, मारुतः ॥ २३ ॥

और हे अर्जुन!—

एनम्	= इस आत्माको	**एनम्**	= इसको
शस्त्राणि	= शस्त्र	**आपः**	= जल
न	= नहीं	**न**	= नहीं
छिन्दन्ति	= काट सकते,	**क्लेदयन्ति**	= गला सकता
एनम्	= इसको	**च**	= और
पावकः	= आग	**मारुतः**	= वायु
न	= नहीं	**न**	= नहीं
दहति	= जला सकती,	**शोषयति**	= सुखा सकता।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥

अच्छेद्यः, अयम्, अदाह्यः, अयम्, अक्लेद्यः, अशोष्यः, एव, च,
नित्यः, सर्वगतः, स्थाणुः, अचलः, अयम्, सनातनः ॥ २४ ॥

क्योंकि—

अयम्	= यह आत्मा	**अयम्**	= यह आत्मा
अच्छेद्यः	= अच्छेद्य है;	**नित्यः**	= नित्य
अयम्	= यह आत्मा	**सर्वगतः**	= सर्वव्यापी,
अदाह्यः	= अदाह्य,	**अचलः**	= अचल,
अक्लेद्यः	= अक्लेद्य	**स्थाणुः**	= स्थिर रहनेवाला, (और)
च	= और		
एव	= निःसंदेह		
अशोष्यः	= अशोष्य है (तथा)	**सनातनः**	= सनातन है।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

अव्यक्तः, अयम्, अचिन्त्यः, अयम्, अविकार्यः, अयम्, उच्यते,
तस्मात्, एवम्, विदित्वा, एनम्, न, अनुशोचितुम्, अर्हसि ॥ २५ ॥

और—

अयम्	=	यह आत्मा	**एनम्**	=	इस आत्माको
अव्यक्तः	=	अव्यक्त है,	**एवम्**	=	उपर्युक्त प्रकारसे
अयम्	=	यह आत्मा	**विदित्वा**	=	जानकर (तू)
अचिन्त्यः	=	अचिन्त्य है, (और)	**अनुशोचितुम्**	=	शोक करनेके
अयम्	=	यह आत्मा	**न, अर्हसि**	=	योग्य नहीं है, अर्थात् तुझे, शोक करना उचित नहीं है।
अविकार्यः	=	विकाररहित			
उच्यते	=	कहा जाता है।			
तस्मात्	=	इससे (हे अर्जुन!)			

[आत्माको जन्मने-मरनेवाला माननेपर भी शरीरकी अनित्यताको समझकर शोक करनेका निषेध।]

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि॥ २६॥

अथ, च, एनम्, नित्यजातम्, नित्यम्, वा, मन्यसे, मृतम्,
तथापि, त्वम्, महाबाहो, न, एवम्, शोचितुम्, अर्हसि॥ २६॥

अथ	=	किंतु	**मृतम्**	=	मरनेवाला
च	=	यदि	**मन्यसे**	=	मानता है,
त्वम्	=	तू	**तथापि**	=	तो भी
एनम्	=	इस आत्माको	**महाबाहो**	=	हे महाबाहो! (तू)
नित्यजातम्	=	सदा जन्मनेवाला	**एवम्**	=	इस प्रकार
वा	=	तथा	**शोचितुम्**	=	शोक करनेको
नित्यम्	=	सदा	**न, अर्हसि**	=	योग्य नहीं है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ २७॥

जातस्य, हि, ध्रुवः, मृत्युः, ध्रुवम्, जन्म, मृतस्य, च, तस्मात्,
अपरिहार्ये, अर्थे, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि॥ २७॥

हि	= क्योंकि (इस मान्यताके अनुसार)		**जन्म**	= जन्म
			ध्रुवम्	= निश्चित है।
			तस्मात्	= इससे (भी इस)
जातस्य	= जन्मे हुएकी		**अपरिहार्ये**	= बिना उपायवाले
मृत्युः	= मृत्यु		**अर्थे**	= विषयमें
ध्रुवः	= निश्चित है		**त्वम्**	= तू
च	= और		**शोचितुम्**	= शोक करनेको
मृतस्य	= मरे हुएका		**न, अर्हसि**	= योग्य नहीं है।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥ २८॥

अव्यक्तादीनि, भूतानि, व्यक्तमध्यानि, भारत,
अव्यक्तनिधनानि, एव, तत्र, का, परिदेवना॥ २८॥

और ये भीष्मादिकोंके शरीर मायामय होनेसे अनित्य हैं, इससे शरीरोंके लिये भी शोक करना उचित नहीं; क्योंकि—

भारत	= हे अर्जुन!		**व्यक्तमध्यानि**	= बीचमें ही, प्रकट हैं; (फिर)
भूतानि	= सम्पूर्ण प्राणी			
अव्यक्तादीनि	= जन्मसे पहले अप्रकट थे (और)		**तत्र**	= ऐसी स्थितिमें
अव्यक्त-निधनानि, एव	= मरनेके बाद भी अप्रकट हो जानेवाले हैं, (केवल)		**का**	= क्या
			परिदेवना	= शोक करना है?

[आत्मतत्त्वके द्रष्टा, वक्ता और श्रोताकी दुर्लभताका प्रतिपादन।]

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥ २९॥

आश्चर्यवत्, पश्यति, कश्चित्, एनम्, आश्चर्यवत्, वदति, तथा, एव, च, अन्यः, आश्चर्यवत्, च, एनम्, अन्यः, शृणोति, श्रुत्वा, अपि, एनम्, वेद, न, च, एव, कश्चित्॥ २९॥

और हे अर्जुन! यह आत्मतत्त्व बड़ा गहन है, इसलिये—

कश्चित्	= कोई एक महापुरुष ही	**च**	= तथा
एनम्	= इस आत्माको	**अन्यः**	= दूसरा कोई, (अधिकारी पुरुष ही)
आश्चर्यवत्	= आश्चर्यकी भाँति	**एनम्**	= इसे
पश्यति	= देखता है	**आश्चर्यवत्**	= आश्चर्यकी भाँति
च	= और	**शृणोति**	= सुनता है
तथा	= वैसे	**च**	= और
एव	= ही	**कश्चित्**	= कोई-कोई (तो)
अन्यः	= दूसरा कोई महापुरुष ही (इसके तत्त्वका)	**श्रुत्वा**	= सुनकर
		अपि	= भी
		एनम्	= इसको
आश्चर्यवत्	= आश्चर्यकी भाँति	**न, एव**	= नहीं
वदति	= वर्णन करता है	**वेद**	= जानता।

[आत्मतत्त्व सर्वथा अवध्य होनेके कारण किसी भी प्राणीके लिये शोक करनेका निषेध।]

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥ ३०॥

देही, नित्यम्, अवध्यः, अयम्, देहे, सर्वस्य, भारत, तस्मात्, सर्वाणि, भूतानि, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि॥ ३०॥

भारत	=	हे अर्जुन!	**तस्मात्**	=	इस कारण
अयम्	=	यह	**सर्वाणि**	=	सम्पूर्ण
देही	=	आत्मा	**भूतानि**	=	प्राणियोंके लिये
सर्वस्य	=	सबके			
देहे	=	शरीरोंमें	**त्वम्**	=	तू
नित्यम्	=	सदा ही	**शोचितुम्**	=	शोक करनेको
अवध्यः	=	अवध्य है*	**न, अर्हसि**	=	योग्य नहीं है।

क्षात्रधर्मकी दृष्टिसे युद्धको अर्जुनका स्वधर्म बतलाकर उसके त्यागको सब प्रकारसे अनुचित सिद्ध करना।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥ ३१॥

स्वधर्मम्, अपि, च, अवेक्ष्य, न, विकम्पितुम्, अर्हसि
धर्म्यात्, हि, युद्धात्, श्रेयः, अन्यत्, क्षत्रियस्य, न, विद्यते॥ ३१॥

च	=	तथा	**हि**	=	क्योंकि
स्वधर्मम्	=	अपने धर्मको	**क्षत्रियस्य**	=	क्षत्रियके लिये
अवेक्ष्य	=	देखकर	**धर्म्यात्**	=	धर्मयुक्त
अपि	=	भी (तू)	**युद्धात्**	=	युद्धसे (बढ़कर)
विकम्पितुम्	=	भय करने-	**अन्यत्**	=	दूसरा (कोई)
न, अर्हसि	=	योग्य नहीं, है यानी तुझे, भय नहीं करना, चाहिये;	**श्रेयः**	=	कल्याणकारी कर्तव्य
			न	=	नहीं
			विद्यते	=	है।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥ ३२॥

* जिसका वध नहीं किया जा सके।

यदृच्छया, च, उपपन्नम्, स्वर्गद्वारम्, अपावृतम्,
सुखिनः, क्षत्रियाः, पार्थ, लभन्ते, युद्धम्, ईदृशम् ॥ ३२ ॥

और—

पार्थ	= हे पार्थ !	**ईदृशम्**	= इस प्रकारके
यदृच्छया	= अपने-आप	**युद्धम्**	= युद्धको
उपपन्नम्	= प्राप्त हुए	**सुखिनः**	= भाग्यवान्
च	= और	**क्षत्रियाः**	= क्षत्रियलोग, (ही)
अपावृतम्	= खुले हुए		
स्वर्गद्वारम्	= स्वर्गके द्वाररूप	**लभन्ते**	= पाते हैं।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

अथ, चेत्, त्वम्, इमम्, धर्म्यम्, सङ्ग्रामम्, न, करिष्यसि,
ततः, स्वधर्मम्, कीर्तिम्, च, हित्वा, पापम्, अवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

अथ	= किंतु	**ततः**	= तो
चेत्	= यदि	**स्वधर्मम्**	= स्वधर्म
त्वम्	= तू	**च**	= और
इमम्	= इस	**कीर्तिम्**	= कीर्तिको
धर्म्यम्	= धर्मयुक्त	**हित्वा**	= खोकर
सङ्ग्रामम्	= युद्धको	**पापम्**	= पापको
न	= नहीं		
करिष्यसि	= करेगा	**अवाप्स्यसि**	= प्राप्त होगा।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

अकीर्तिम्, च, अपि, भूतानि, कथयिष्यन्ति, ते, अव्ययाम्,
सम्भावितस्य, च, अकीर्तिः, मरणात्, अतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

च	= तथा	**अव्ययाम्**	= बहुत कालतक रहनेवाली
भूतानि	= सब लोग		
ते	= तेरी	**अकीर्तिम्**	= अपकीर्तिका

अपि	= भी	**अकीर्तिः**	= अपकीर्ति
कथयिष्यन्ति	= कथन करेंगे		
च	= और	**मरणात्**	= मरणसे (भी)
सम्भावितस्य	= मानननीय पुरुष– के लिये	**अतिरिच्यते**	= बढ़कर है।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥ ३५ ॥

भयात्, रणात्, उपरतम्, मंस्यन्ते, त्वाम्, महारथाः,
येषाम्, च, त्वम्, बहुमतः, भूत्वा, यास्यसि, लाघवम्॥ ३५ ॥

च	= और	**महारथाः**	= महारथी लोग
येषाम्	= जिनकी (दृष्टिमें)		
त्वम्	= तू (पहले)	**त्वाम्**	= तुझे
बहुमतः	= बहुत सम्मानित	**भयात्**	= भयके कारण
भूत्वा	= होकर (अब)	**रणात्**	= युद्धसे
लाघवम्	= लघुताको	**उपरतम्**	= हटा हुआ
यास्यसि	= प्राप्त होगा, (वे)	**मंस्यन्ते**	= मानेंगे।

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्॥ ३६ ॥

अवाच्यवादान्, च, बहून्, वदिष्यन्ति, तव, अहिताः,
निन्दन्तः, तव, सामर्थ्यम्, ततः, दुःखतरम्, नु, किम्॥ ३६ ॥

तव	= तेरे	**बहून्**	= बहुत–से
अहिताः	= वैरी लोग	**अवाच्यवादान्**	= न कहनेयोग्य वचन
तव	= तेरे		
सामर्थ्यम्	= सामर्थ्यकी		
निन्दन्तः	= निन्दा करते हुए (तुझे)	**च**	= भी
		वदिष्यन्ति	= कहेंगे;

ततः	= उससे	**नु**	= और
दुःखतरम्	= अधिक दुःख	**किम्**	= क्या होगा?

[इस लोक और परलोक—दोनोंमें लाभप्रद बतलाकर अर्जुनको युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा देना।]

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥ ३७॥

हतः, वा, प्राप्स्यसि, स्वर्गम्, जित्वा, वा, भोक्ष्यसे, महीम्, तस्मात्, उत्तिष्ठ, कौन्तेय, युद्धाय, कृतनिश्चयः॥ ३७॥

वा	= या (तो तू युद्धमें)	**भोक्ष्यसे**	= भोगेगा।
हतः	= मारा जाकर	**तस्मात्**	= इस कारण
स्वर्गम्	= स्वर्गको	**कौन्तेय**	= हे अर्जुन! (तू)
प्राप्स्यसि	= प्राप्त होगा	**युद्धाय**	= युद्धके लिये
वा	= अथवा (संग्राममें)	**कृतनिश्चयः**	= निश्चय करके
जित्वा	= जीतकर		
महीम्	= पृथ्वीका राज्य	**उत्तिष्ठ**	= खड़ा हो जा।

[युद्धादि समस्त शास्त्रविहित कर्मोंका भली प्रकार आचरण करते हुए भी पापसे निर्लिप्त रहनेका उपाय—समत्व।]

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ ३८॥

सुखदुःखे, समे, कृत्वा, लाभालाभौ, जयाजयौ, ततः, युद्धाय, युज्यस्व, न, एवम्, पापम्, अवाप्स्यसि॥ ३८॥

यदि तुझे स्वर्ग तथा राज्यकी इच्छा न हो तो भी—

जयाजयौ	= जय-पराजय	**कृत्वा**	= समझकर,
लाभालाभौ	= { लाभ-हानि (और)	**ततः**	= उसके बाद
		युद्धाय	= युद्धके लिये
सुखदुःखे	= सुख-दुःखको		
समे	= समान	**युज्यस्व**	= तैयार हो जा,

एवम्	= { इस प्रकार (युद्ध करनेसे तू)	**पापम्**	= पापको
		न	= नहीं
		अवाप्स्यसि	= प्राप्त होगा।

[**कर्मबन्धनोंको काटनेमें हेतु, कर्मयोगविषयक बुद्धिका वर्णन करनेकी प्रस्तावना।**]

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥ ३९॥

एषा, ते, अभिहिता, साङ्ख्ये, बुद्धिः, योगे, तु, इमाम्, शृणु,
बुद्ध्या, युक्तः, यया, पार्थ, कर्मबन्धम्, प्रहास्यसि॥ ३९॥

पार्थ	= हे पार्थ!	**योगे**	= कर्मयोगके विषयमें
एषा	= यह	**शृणु**	= सुन—
बुद्धिः	= बुद्धि	**यया**	= जिस
ते	= तेरे लिये	**बुद्ध्या**	= बुद्धिसे
साङ्ख्ये	= { ज्ञानयोगके, विषयमें *	**युक्तः**	= युक्त हुआ (तू)
		कर्मबन्धम्	= कर्मोंके बन्धनको
अभिहिता	= कही गयी	**प्रहास्यसि**	= { भलीभाँति त्याग देगा यानी सर्वथा नष्ट कर डालेगा।
तु	= और (अब तू)		
इमाम्	= इसको		

[**कर्मयोगकी महिमाका वर्णन।**]

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ ४०॥

न, इह, अभिक्रमनाशः, अस्ति, प्रत्यवायः, न, विद्यते,
स्वल्पम्, अपि, अस्य, धर्मस्य, त्रायते, महतः, भयात्॥ ४०॥

और—

इह	= इस कर्मयोगमें	**न**	= नहीं
अभिक्रमनाशः	= { आरम्भका अर्थात् बीजका नाश	**अस्ति**	= है (और)

* अध्याय ३ श्लोक ३ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये।

प्रत्यवायः	= { उलटा फलरूप दोष (भी)	**स्वल्पम्**	= थोड़ा-सा
न	= नहीं	**अपि**	= { भी (साधन जन्म-मृत्युरूप)
विद्यते	= है, (बल्कि)	**महतः**	= महान्
अस्य	= इस कर्मयोगरूप	**भयात्**	= भयसे
धर्मस्य	= धर्मका	**त्रायते**	= रक्षा कर लेता है।

[निश्चयात्मिका बुद्धिका और अव्यवसायी सकाम पुरुषोंकी बुद्धियोंका भेदनिरूपण।]

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥ ४१॥

व्यवसायात्मिका, बुद्धिः, एका, इह, कुरुनन्दन,
बहुशाखाः, हि, अनन्ताः, च, बुद्धयः, अव्यवसायिनाम्॥ ४१॥

और—

कुरुनन्दन	= हे अर्जुन!	**अव्यवसायिनाम्**	= { अस्थिर विचारवाले विवेकहीन सकाम मनुष्योंकी
इह	= इस कर्मयोगमें		
व्यवसायात्मिका	= निश्चयात्मिका	**बुद्धयः**	= बुद्धियाँ
बुद्धिः	= बुद्धि	**हि**	= निश्चय ही
		बहुशाखाः	= बहुत भेदोंवाली
एका	= एक ही	**च**	= और
(भवति)	= होती है; (किंतु)	**अनन्ताः**	= अनन्त (होती हैं)।

[स्वर्गपरायण सकाम मनुष्योंके स्वभावका वर्णन।]

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥ ४२॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥ ४३॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥ ४४॥

याम्, इमाम्, पुष्पिताम्, वाचम्, प्रवदन्ति, अविपश्चितः,
वेदवादरताः, पार्थ, न, अन्यत्, अस्ति, इति, वादिनः ॥ ४२ ॥
कामात्मानः, स्वर्गपराः, जन्मकर्मफलप्रदाम्,
क्रियाविशेषबहुलाम्, भोगैश्वर्यगतिम्, प्रति ॥ ४३ ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम्, तया, अपहृतचेतसाम्,
व्यवसायात्मिका, बुद्धिः, समाधौ, न, विधीयते ॥ ४४ ॥

और—

पार्थ = हे अर्जुन!
कामात्मानः = जो भोगोंमें तन्मय हो रहे हैं,
वेदवादरताः = जो कर्मफलके प्रशंसक वेद-वाक्योंमें ही प्रीति रखते हैं,
स्वर्गपराः = जिनकी बुद्धिमें स्वर्ग ही परम प्राप्य वस्तु है (और जो स्वर्ग-से बढ़कर)
अन्यत् = दूसरी (कोई वस्तु ही)
न = नहीं
अस्ति = है—
इति = ऐसा
वादिनः = कहनेवाले हैं—
अविपश्चितः = वे अविवेकीजन
इमाम् = इस प्रकारकी
याम् = जिस
पुष्पिताम् = पुष्पित यानी दिखाऊ शोभायुक्त
वाचम् = वाणीको
प्रवदन्ति = कहा करते हैं (जो कि)
जन्मकर्मफल-प्रदाम् = जन्मरूप कर्म-फल देनेवाली (एवं)
भोगैश्वर्यगतिं प्रति = भोग तथा ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये
क्रियाविशेष-बहुलाम् = नाना प्रकारकी बहुत-सी क्रियाओंको वर्णन करनेवाली है,
तया = उस वाणीद्वारा
अपहृतचेतसाम् = जिनका चित्त हर लिया गया है,

भोगैश्वर्य-प्रसक्तानाम् = जो भोग और ऐश्वर्यमें अत्यन्त आसक्त हैं, उन पुरुषोंकी
समाधौ = परमात्मामें
व्यवसायात्मिका = निश्चयात्मिका
बुद्धिः = बुद्धि
न = नहीं
विधीयते = होती।

[अर्जुनको निष्कामी और आत्मसंयमी होनेके लिये आज्ञा।]

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥ ४५॥

त्रैगुण्यविषयाः, वेदाः, निस्त्रैगुण्यः, भव, अर्जुन, निर्द्वन्द्वः, नित्यसत्त्वस्थः, निर्योगक्षेमः, आत्मवान्॥ ४५॥

और—

अर्जुन = हे अर्जुन!
वेदाः = वेद (उपर्युक्त प्रकारसे)
त्रैगुण्यविषयाः = तीनों गुणोंके कार्यरूप समस्त भोगों एवं उनके साधनोंका प्रतिपादन करनेवाले हैं; (इसलिये तू)
निस्त्रैगुण्यः = उन भोगों एवं उनके साधनोंमें आसक्तिहीन,
निर्द्वन्द्वः = हर्ष-शोकादि द्वन्द्वोंसे रहित
नित्यसत्त्वस्थः = नित्यवस्तु परमात्मामें स्थित,
निर्योगक्षेमः = योग[1] क्षेमको[2] न चाहनेवाला और
आत्मवान् = स्वाधीन अन्तः-करणवाला
भव = हो।

[ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणके लिये वेदोक्त कर्मफलरूप सुखभोगकी अप्रयोजनीयताका कथन।]

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥ ४६॥

१-अप्राप्तकी प्राप्तिका नाम ''योग'' है। २-प्राप्त वस्तुकी रक्षाका नाम ''क्षेम'' है।

यावान्, अर्थः, उदपाने, सर्वतः, सम्प्लुतोदके,
तावान्, सर्वेषु, वेदेषु, ब्राह्मणस्य, विजानतः ॥ ४६ ॥

क्योंकि—

सर्वतः = सब ओरसे
सम्प्लुतोदके = परिपूर्ण जलाशयके
(प्राप्ते सति) = प्राप्त हो जानेपर
उदपाने = छोटे जलाशयमें (मनुष्यका)
यावान् = जितना
अर्थः = प्रयोजन
(अस्ति) = रहता है,
विजानतः = (ब्रह्मको) तत्त्वसे जाननेवाले
ब्राह्मणस्य = ब्राह्मणका
सर्वेषु = समस्त
वेदेषु = वेदोंमें
तावान् = उतना (ही प्रयोजन रह जाता है)।

[सूत्ररूपसे कर्मयोगके स्वरूपका वर्णन।]

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

कर्मणि, एव, अधिकारः, ते, मा, फलेषु, कदाचन,
मा, कर्मफलहेतुः, भूः, मा, ते, सङ्गः, अस्तु, अकर्मणि ॥ ४७ ॥

इससे—

ते = तेरा
कर्मणि = कर्म करनेमें
एव = ही
अधिकारः = अधिकार है (उसके)
फलेषु = फलोंमें
कदाचन = कभी
मा = नहीं। (इसलिये तू)
कर्मफलहेतुः = कर्मोंके फलका हेतु
मा, भूः = मत हो (तथा)
ते = तेरी
अकर्मणि = कर्म न करनेमें (भी)
सङ्गः = आसक्ति
मा = न
अस्तु = हो।

[योगकी परिभाषारूपमें समत्वका कथन।]

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ ४८॥

योगस्थः, कुरु, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, धनञ्जय,
सिद्ध्यसिद्ध्योः, समः, भूत्वा, समत्वम्, योगः, उच्यते॥ ४८॥

धनञ्जय = हे धनंजय!
सङ्गम् = तू आसक्तिको
त्यक्त्वा = त्यागकर (तथा)
सिद्ध्यसिद्ध्योः = सिद्धि और असिद्धिमें
समः = समान बुद्धिवाला
भूत्वा = होकर
योगस्थः = योगमें स्थित हुआ
कर्माणि = कर्तव्यकर्मोंको
कुरु = कर,
समत्वम् = समत्व* (ही)
योगः = योग
उच्यते = कहलाता है।

[समत्व बुद्धिकी अपेक्षा सकाम कर्मोंको अत्यन्त तुच्छ और फल चाहनेवालोंको अत्यन्त दीन बतलाना।]

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥ ४९॥

दूरेण, हि, अवरम्, कर्म, बुद्धियोगात्, धनंजय,
बुद्धौ, शरणम्, अन्विच्छ, कृपणाः, फलहेतवः॥ ४९॥

इस समत्वरूप—

बुद्धियोगात् = बुद्धियोगसे
कर्म = सकाम कर्म
दूरेण = अत्यन्त (ही)
अवरम् = निम्न श्रेणीका है।
(अतः) = इसलिये
धनंजय = हे धनंजय! (तू)
बुद्धौ = समबुद्धिमें (ही)
शरणम् = रक्षाका उपाय
अन्विच्छ = ढूँढ़ अर्थात् बुद्धियोगका ही आश्रय ग्रहण कर;
हि = क्योंकि

---

* जो कुछ भी कर्म किया जाय, उसके पूर्ण होने और न होनेमें तथा उसके फलमें समभाव रहनेका नाम ''समत्व'' है।

फलहेतवः = फलके हेतु बननेवाले

कृपणाः = अत्यन्त दीन हैं।

[समत्व बुद्धियुक्त पुरुषकी प्रशंसा कर अर्जुनको कर्मयोगके अनुष्ठानकी आज्ञा देना तथा समभावका फल अनामय-पदकी प्राप्ति बतलाना।]

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥ ५०॥

बुद्धियुक्तः, जहाति, इह, उभे, सुकृतदुष्कृते,
तस्मात् योगाय, युज्यस्व, योगः, कर्मसु, कौशलम्॥ ५०॥

और—

बुद्धियुक्तः = समबुद्धियुक्त (पुरुष)

सुकृतदुष्कृते = पुण्य और पाप

उभे = दोनोंको

इह = इसी लोकमें

जहाति = त्याग देता है, अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है।

तस्मात् = इससे (तू)

योगाय = समत्वरूप योगमें

युज्यस्व = लग जा, (यह)

योगः = समत्वरूप योग (ही)

कर्मसु = कर्मोंमें

कौशलम् = कुशलता है अर्थात् कर्मबन्धनसे छूटनेका उपाय है।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥ ५१॥

कर्मजम्, बुद्धियुक्ताः, हि, फलम्, त्यक्त्वा, मनीषिणः,
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः, पदम्, गच्छन्ति, अनामयम्॥ ५१॥

हि = क्योंकि

बुद्धियुक्ताः = समबुद्धिसे युक्त

मनीषिणः = ज्ञानीजन

कर्मजम् = कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले

फलम् = फलको

त्यक्त्वा = त्यागकर

जन्मबन्ध-विनिर्मुक्ताः = जन्मरूप-बन्धनसे मुक्त हो

अनामयम्	= निर्विकार	**पदम्**	= परमपदको
		गच्छन्ति	= प्राप्त हो जाते हैं।

[वैराग्यद्वारा बुद्धिके शुद्ध, स्वच्छ और निश्चल हो जानेपर परमात्मप्राप्तिका कथन।]

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥ ५२॥

यदा, ते, मोहकलिलम्, बुद्धिः, व्यतितरिष्यति,
तदा, गन्तासि, निर्वेदम्, श्रोतव्यस्य, श्रुतस्य, च॥ ५२॥

और हे अर्जुन!—

यदा	= जिस कालमें	**श्रुतस्य**	= सुने हुए
ते	= तेरी	**च**	= और
बुद्धिः	= बुद्धि	**श्रोतव्यस्य**	= सुननेमें आनेवाले (इस लोक और परलोकसम्बन्धी सभी भोगोंसे)
मोहकलिलम्	= मोहरूप दलदलको		
व्यतितरिष्यति	= भलीभाँति पार कर जायगी,	**निर्वेदम्**	= वैराग्यको
तदा	= उस समय (तू)	**गन्तासि**	= प्राप्त हो जायगा।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥ ५३॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना, ते, यदा, स्थास्यति, निश्चला,
समाधौ, अचला, बुद्धिः, तदा, योगम्, अवाप्स्यसि॥ ५३॥

और—

श्रुतिविप्रतिपन्ना	= भाँति-भाँतिके वचनोंको सुननेसे विचलित हुई	**यदा**	= जब
		समाधौ	= परमात्मामें
		निश्चला	= अचल (और)
ते	= तेरी	**अचला**	= स्थिर
बुद्धिः	= बुद्धि	**स्थास्यति**	= ठहर जायगी,

तदा	= तब (तू)	**अवाप्स्यसि**	=	प्राप्त हो जायगा अर्थात् तेरा परमात्मासे नित्य संयोग हो जायगा।
योगम्	= योगको			

[स्थिरबुद्धि पुरुषके विषयमें अर्जुनके चार प्रश्न।]

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥ ५४॥

स्थितप्रज्ञस्य, का, भाषा, समाधिस्थस्य, केशव,
स्थितधीः, किम्, प्रभाषेत, किम्, आसीत, व्रजेत, किम्॥ ५४॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुनने पूछा—

केशव	= हे केशव!	**स्थितधीः**	= स्थिरबुद्धि पुरुष
समाधिस्थस्य	= समाधिमें स्थित	**किम्**	= कैसे
स्थितप्रज्ञस्य	= परमात्माको प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि पुरुषका	**प्रभाषेत**	= बोलता है,
		किम्	= कैसे
		आसीत	= बैठता है (और)
का	= क्या	**किम्**	= कैसे
भाषा	= लक्षण है? (वह)	**व्रजेत**	= चलता है?

[पहले प्रश्नका उत्तर देते हुए स्थिरबुद्धि पुरुषको समस्त कामनाओंसे रहित तथा आत्मामें ही संतुष्ट बतलाना।]

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥ ५५॥

प्रजहाति, यदा, कामान्, सर्वान्, पार्थ, मनोगतान्,
आत्मनि, एव, आत्मना, तुष्टः, स्थितप्रज्ञः, तदा, उच्यते॥ ५५॥

उसके पश्चात् श्रीभगवान् बोले—

पार्थ	= हे अर्जुन!	**यदा**	= जिस कालमें (यह पुरुष)

मनोगतान्	=	मनमें स्थित	**एव**	=	ही
सर्वान्	=	सम्पूर्ण	**तुष्टः**	=	संतुष्ट रहता है,
कामान्	=	कामनाओंको			
प्रजहाति	=	भलीभाँति त्याग देता है (और)	**तदा**	=	उस कालमें (वह)
आत्मना	=	आत्मासे	**स्थितप्रज्ञः**	=	स्थितप्रज्ञ
आत्मनि	=	आत्मामें	**उच्यते**	=	कहा जाता है।

[स्थिरबुद्धि पुरुषको दुःखोंमें अनुद्विग्न, सुखोंमें निःस्पृह और शुभाशुभकी प्राप्तिमें हर्ष-शोकादि द्वन्द्वोंसे रहित कहकर दूसरे प्रश्नका उत्तर देना।]

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥ ५६॥

दुःखेषु, अनुद्विग्नमनाः, सुखेषु, विगतस्पृहः,
वीतरागभयक्रोधः, स्थितधीः, मुनिः, उच्यते॥ ५६॥

तथा—

दुःखेषु	=	दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर	**वीतराग-भयक्रोधः**	=	जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, (ऐसा)
अनुद्विग्नमनाः	=	जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता,			
सुखेषु	=	सुखोंकी प्राप्तिमें	**मुनिः**	=	मुनि
विगतस्पृहः	=	जो सर्वथा निःस्पृह है (तथा)	**स्थितधीः**	=	स्थिरबुद्धि
			उच्यते	=	कहा जाता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ ५७॥

यः, सर्वत्र, अनभिस्नेहः, तत्, तत्, प्राप्य, शुभाशुभम्,
न, अभिनन्दति, न, द्वेष्टि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता॥ ५७॥

और—

यः	= जो पुरुष	**न**	= न
सर्वत्र	= सर्वत्र	**अभिनन्दति**	= प्रसन्न होता है (और)
अनभिस्नेहः	= स्नेहरहित हुआ	**न**	= न
तत्, तत्	= उस-उस	**द्वेष्टि**	= द्वेष करता है,
शुभाशुभम्	= शुभ या अशुभ (वस्तु)-को	**तस्य**	= उसकी
प्राप्य	= प्राप्त होकर	**प्रज्ञा**	= बुद्धि
		प्रतिष्ठिता	= स्थिर है।

[तीसरे प्रश्नके उत्तरमें कछुएका उदाहरण देते हुए इन्द्रिय-निग्रहकी बात कहना।]

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ ५८॥

यदा, संहरते, च, अयम्, कूर्मः, अङ्गानि, इव, सर्वशः,
इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेभ्यः, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता॥ ५८॥

च	= और	**इन्द्रियार्थेभ्यः**	= इन्द्रियोंके विषयोंसे
कूर्मः	= कछुआ	**इन्द्रियाणि**	= इन्द्रियोंको
सर्वशः	= सब ओरसे (अपने)	**संहरते**	= सब प्रकारसे हटा लेता है, (तब)
अंगानि	= अंगोंको	**तस्य**	= उसकी
इव	= जैसे (समेट लेता है, वैसे ही)	**प्रज्ञा**	= बुद्धि
यदा	= जब	**प्रतिष्ठिता**	= स्थिर है (ऐसा समझना चाहिये)।
अयम्	= यह पुरुष		

[इन्द्रियोंद्वारा हठपूर्वक विषयोंका ग्रहण न करनेसे विषयोंकी निवृत्ति होनेपर भी रागकी निवृत्ति न होनेका और परमात्मदर्शनसे होनेका कथन।]

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥ ५९॥

विषयाः, विनिवर्तन्ते, निराहारस्य, देहिनः, रसवर्जम्, रसः, अपि, अस्य, परम्, दृष्ट्वा, निवर्तते ॥ ५९ ॥

यद्यपि—

निराहारस्य	= (इन्द्रियोंके द्वारा) विषयोंको ग्रहण न करनेवाले	**रसवर्जम्**	= आसक्ति निवृत्त नहीं होती।
देहिनः	= पुरुषके (भी केवल)	**अस्य**	= इस स्थितप्रज्ञ पुरुषकी (तो)
विषयाः	= विषय (तो)	**रसः**	= आसक्ति
		अपि	= भी
		परम्	= परमात्माका
विनिवर्तन्ते	= निवृत्त हो जाते हैं, (परंतु उनमें रहनेवाली)	**दृष्ट्वा**	= साक्षात्कार करके
		निवर्तते	= निवृत्त हो जाती है।

[इन्द्रियोंकी प्रबलताका निरूपण।]

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥

यततः, हि, अपि, कौन्तेय, पुरुषस्य, विपश्चितः, इन्द्रियाणि, प्रमाथीनि, हरन्ति, प्रसभम्, मनः ॥ ६० ॥

और—

कौन्तेय	= हे अर्जुन!	**यततः**	= यत्न करते हुए
हि	= आसक्तिका नाश न होनेके कारण	**विपश्चितः**	= बुद्धिमान्
		पुरुषस्य	= पुरुषके
		मनः	= मनको
प्रमाथीनि	= ये प्रमथन-स्वभाववाली	**अपि**	= भी
		प्रसभम्	= बलात्
इन्द्रियाणि	= इन्द्रियाँ	**हरन्ति**	= हर लेती हैं।

[मन और इन्द्रियोंको संयमपूर्वक भगवत्परायण करनेकी प्रेरणा तथा इन्द्रियविजयी पुरुषकी प्रशंसा।]

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ ६१ ॥

तानि, सर्वाणि, संयम्य, युक्तः, आसीत, मत्परः,
वशे, हि, यस्य, इन्द्रियाणि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

इसलिये साधकको चाहिये कि वह—

तानि = उन		**हि** = क्योंकि	
सर्वाणि = सम्पूर्ण इन्द्रियोंको		**यस्य** = जिस पुरुषकी	
संयम्य = वशमें करके		**इन्द्रियाणि** = इन्द्रियाँ	
युक्तः = समाहित चित्त हुआ		**वशे** = वशमें (होती हैं),	
मत्परः = मेरे परायण होकर		**तस्य** = उसीकी	
आसीत = ध्यानमें बैठे;		**प्रज्ञा** = बुद्धि	
		प्रतिष्ठिता = स्थिर हो जाती है।	

[विषयोंके चिन्तनसे आसक्ति आदि अवगुणोंकी उत्पत्ति और अधःपतनका कथन।]

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥ ६२ ॥

ध्यायतः, विषयान्, पुंसः, सङ्गः, तेषु, उपजायते,
सङ्गात्, सञ्जायते, कामः, कामात्, क्रोधः, अभिजायते ॥ ६२ ॥

और हे अर्जुन! मनसहित इन्द्रियोंको वशमें करके मेरे परायण न होनेसे मनके द्वारा विषयोंका चिन्तन होता है और—

विषयान् = विषयोंका	**उपजायते** = हो जाती है,
ध्यायतः = चिन्तन करनेवाले	**सङ्गात्** = आसक्तिसे
पुंसः = पुरुषकी	
तेषु = उन विषयोंमें	**कामः** = (उन विषयोंकी) कामना
सङ्गः = आसक्ति	

संजायते	= उत्पन्न होती है (और)	**क्रोधः**	= क्रोध
कामात्	= कामना (में विघ्न पड़ने)-से	**अभिजायते**	= उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ ६३॥

क्रोधात्, भवति, सम्मोहः, सम्मोहात्, स्मृतिविभ्रमः, स्मृतिभ्रंशात्, बुद्धिनाशः, बुद्धिनाशात्, प्रणश्यति॥ ६३॥

और—

क्रोधात्	= क्रोधसे	**बुद्धिनाशः**	= बुद्धि अर्थात् ज्ञान-शक्तिका नाश हो जाता है (और)
सम्मोहः	= अत्यन्त मूढ़भाव		
भवति	= उत्पन्न हो जाता है,		
सम्मोहात्	= मूढ़भावसे		
स्मृतिविभ्रमः	= स्मृतिमें भ्रम हो जाता है,	**बुद्धिनाशात्**	= बुद्धिका नाश हो जानेसे (यह पुरुष अपनी स्थितिसे)
स्मृतिभ्रंशात्	= स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे	**प्रणश्यति**	= गिर जाता है।

[राग-द्वेषसे रहित होकर कर्म करनेवालोंको प्रसादकी प्राप्ति, उससे समस्त दुःखोंका नाश तथा शीघ्र ही उसकी बुद्धि स्थिर होनेका कथन करते हुए चौथे प्रश्नका उत्तर देना।]

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥ ६४॥

रागद्वेषवियुक्तैः, तु, विषयान्, इन्द्रियैः, चरन्, आत्मवश्यैः, विधेयात्मा, प्रसादम्, अधिगच्छति॥ ६४॥

तु	= परंतु	**आत्मवश्यैः**	= अपने वशमें की हुई
विधेयात्मा	= अपने अधीन किये हुए अन्तः-करणवाला साधक	**रागद्वेषवियुक्तैः**	= राग-द्वेषसे रहित
		इन्द्रियैः	= इन्द्रियोंद्वारा

विषयान्	= विषयोंमें	**प्रसादम्**	= प्रसन्नताको
चरन्	= विचरण करता हुआ (अन्तः-करणकी)	**अधिगच्छति**	= प्राप्त होता है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥ ६५॥

प्रसादे, सर्वदुःखानाम्, हानिः, अस्य, उपजायते,
प्रसन्नचेतसः, हि, आशु, बुद्धिः, पर्यवतिष्ठते॥ ६५॥

और—

प्रसादे	= (अन्तःकरणकी) प्रसन्नता होनेपर	**बुद्धिः**	= बुद्धि
		आशु	= शीघ्र
अस्य	= इसके		
सर्वदुःखानाम्	= सम्पूर्ण दुःखोंका	**हि**	= ही (सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही)
हानिः	= अभाव		
उपजायते	= हो जाता है (और उस)		
प्रसन्नचेतसः	= प्रसन्न-चित्तवाले कर्मयोगीकी	**पर्यवतिष्ठते**	= भलीभाँति स्थिर हो जाती है।

[अयुक्त पुरुषके लिये श्रेष्ठ बुद्धि, भगवच्चिन्तन, शान्ति और सुखके अभावका कथन।]

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥ ६६॥

न, अस्ति, बुद्धिः, अयुक्तस्य, न, च, अयुक्तस्य, भावना,
न, च, अभावयतः, शान्तिः, अशान्तस्य, कुतः, सुखम्॥ ६६॥

और हे अर्जुन—

अयुक्तस्य	= न जीते हुए मन और इन्द्रियोंवाले पुरुषमें	**बुद्धिः**	= (निश्चयात्मिका) बुद्धि
		न	= नहीं

अस्ति = होती
च = और (उस)
अयुक्तस्य = अयुक्त मनुष्यके (अन्तःकरणमें)
भावना = भावना (भी)
न = नहीं (होती)
च = तथा
अभावयतः = भावनाहीन मनुष्यको
शान्तिः = शान्ति
न = नहीं (मिलती) (और)
अशान्तस्य = शान्तिरहित मनुष्यको
सुखम् = सुख
कुतः = कैसे (मिल सकता है)?

[वायु और नौकाके दृष्टान्तद्वारा मनके संयोगसे इन्द्रियको बुद्धिका हरण करनेवाली बतलाना।]

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥ ६७॥

इन्द्रियाणाम्, हि, चरताम्, यत्, मनः, अनु, विधीयते,
तत्, अस्य, हरति, प्रज्ञाम्, वायुः, नावम्, इव, अम्भसि॥ ६७॥

हि = क्योंकि
इव = जैसे
अम्भसि = जलमें (चलनेवाली)
नावम् = नावको
वायुः = वायु
हरति = हर लेती है, (वैसे ही)
चरताम् = विषयोंमें विचरती हुई
इन्द्रियाणाम् = इन्द्रियोंमेंसे
मनः = मन
यत् = जिस (इन्द्रियके)
अनु = साथ
विधीयते = रहता है,
तत् = वह (एक ही इन्द्रिय)
अस्य = इस (अयुक्त पुरुष)-की
प्रज्ञाम् = बुद्धिको (हर लेती है)।

[स्थिरबुद्धि पुरुषके लक्षणोंमें इन्द्रियनिग्रहकी प्रधानता।]

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ ६८॥

तस्मात्, यस्य, महाबाहो, निगृहीतानि, सर्वशः,
इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेभ्यः, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

तस्मात्	= इसलिये	**सर्वशः**	= सब प्रकार
महाबाहो	= हे महाबाहो!	**निगृहीतानि**	= निग्रह की हुई हैं,
यस्य	= जिस पुरुषकी	**तस्य**	= उसीकी
इन्द्रियाणि	= इन्द्रियाँ	**प्रज्ञा**	= बुद्धि
इन्द्रियार्थेभ्यः	= इन्द्रियोंके विषयोंसे	**प्रतिष्ठिता**	= स्थिर है।

[साधारण मनुष्योंके लिये ब्रह्मानन्दको और तत्त्ववेत्ता पुरुषके लिये विषयसुखको रात्रिके समान बतलाना।]

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥

या, निशा, सर्वभूतानाम्, तस्याम्, जागर्ति, संयमी,
यस्याम्, जाग्रति, भूतानि, सा, निशा, पश्यतः, मुनेः ॥ ६९ ॥

और हे अर्जुन!—

सर्वभूतानाम्	= सम्पूर्ण प्राणियों-के लिये	**भूतानि**	= सब प्राणी
या	= जो	**जाग्रति**	= जागते हैं,
निशा	= रात्रिके (समान है),		
तस्याम्	= उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्दकी प्राप्तिमें	**पश्यतः**	= (परमात्माके तत्त्वको) जाननेवाले
		मुनेः	= मुनिके लिये
संयमी	= स्थितप्रज्ञ योगी		
जागर्ति	= जागता है (और)	**सा**	= वह
यस्याम्	= जिस नाशवान् सांसारिक सुखकी प्राप्तिमें	**निशा**	= रात्रिके (समान है)।

[समुद्रके दृष्टान्तसे ज्ञानी महापुरुषोंकी महिमाका कथन।]

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं–
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥

आपूर्यमाणम्, अचलप्रतिष्ठम्, समुद्रम्, आपः, प्रविशन्ति, यद्वत्, तद्वत्, कामाः, यम्, प्रविशन्ति, सर्वे, सः, शान्तिम्, आप्नोति, न, कामकामी ॥ ७० ॥

और—

यद्वत् = जैसे (नाना नदियोंके)
आपः = जल (जब)
आपूर्यमाणम् = सब ओरसे परिपूर्ण,
अचलप्रतिष्ठम् = अचल प्रतिष्ठावाले
समुद्रम् = समुद्रमें (उसको विचलित न करते हुए ही)
प्रविशन्ति = समा जाते हैं,
तद्वत् = वैसे ही
सर्वे = सब
कामाः = भोग
यम् = जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषमें (किसी प्रकारका विकार उत्पन्न किये बिना ही)
प्रविशन्ति = समा जाते हैं,
सः = वही पुरुष
शान्तिम् = परम शान्तिको
आप्नोति = प्राप्त होता है,
कामकामी = भोगोंको चाहनेवाला
न = नहीं।

[कामना, स्पृहा, ममता और अहंकारादिसे रहित होकर विचरनेवाले पुरुषकी परम शान्तिकी प्राप्ति।]

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

विहाय, कामान्, यः, सर्वान्, पुमान्, चरति, निःस्पृहः, निर्ममः, निरहङ्कारः, सः, शान्तिम्, अधिगच्छति ॥ ७१ ॥

क्योंकि—

यः	= जो	**निःस्पृहः**	= स्पृहारहित हुआ
पुमान्	= पुरुष	**चरति**	= विचरता है,
सर्वान्	= सम्पूर्ण	**सः**	= वही
कामान्	= कामनाओंको	**शान्तिम्**	= शान्तिको
विहाय	= त्यागकर	**अधिगच्छति**	= प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है।
निर्ममः	= ममतारहित,		
निरहङ्कारः	= अहंकाररहित (और)		

[ब्राह्मी स्थितिके माहात्म्यका वर्णन करते हुए अध्यायका उपसंहार।]

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥ ७२॥

एषा, ब्राह्मी, स्थितिः, पार्थ, न, एनाम्, प्राप्य, विमुह्यति,
स्थित्वा, अस्याम्, अन्तकाले, अपि, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋच्छति॥ ७२॥

पार्थ	= हे अर्जुन!	**न, विमुह्यति**	= मोहित नहीं होता (और)
एषा	= यह	**अन्तकाले**	= अन्तकालमें
ब्राह्मी	= ब्रह्मको प्राप्त पुरुषकी	**अपि**	= भी
स्थितिः	= स्थिति है;	**अस्याम्**	= इस ब्राह्मी स्थितिमें
एनाम्	= इसको	**स्थित्वा**	= स्थित होकर
प्राप्य	= प्राप्त होकर (योगी कभी)	**ब्रह्मनिर्वाणम्**	= ब्रह्मानन्दको
		ऋच्छति	= प्राप्त हो जाता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे साङ्ख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रधान-विषय— १ से ८ तक ज्ञानयोग और निष्काम कर्मयोगके अनुसार अनासक्तभावसे नियत कर्म करनेकी श्रेष्ठताका निरूपण, (९—१६) यज्ञादि कर्म करनेकी आवश्यकताका निरूपण, (१७—२४) ज्ञानवान् और भगवान्‌के लिये भी लोकसंग्रहार्थ कर्म करनेकी आवश्यकता, (२५—३५) अज्ञानी और ज्ञानवान्‌के लक्षण तथा राग-द्वेषसे रहित होकर कर्म करनेके लिये प्रेरणा, (३६—४३) कामके निरोधका विषय।

[ज्ञान और कर्मकी श्रेष्ठताके विषयमें अर्जुनकी शंका व भगवान्‌से अपना ऐकान्तिक श्रेयःसाधन बतलानेके लिये प्रार्थना।]

अर्जुन उवाच—

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥ १॥

ज्यायसी, चेत्, कर्मणः, ते, मता, बुद्धिः, जनार्दन,
तत्, किम्, कर्मणि, घोरे, माम्, नियोजयसि, केशव॥ १॥

इसपर अर्जुनने प्रश्न किया कि—

जनार्दन	= हे जनार्दन!	**तत्**	= तो फिर
चेत्	= यदि	**केशव**	= हे केशव!
ते	= आपको	**माम्**	= मुझे
कर्मणः	= कर्मकी अपेक्षा	**घोरे**	= भयंकर
बुद्धिः	= ज्ञान	**कर्मणि**	= कर्ममें
ज्यायसी	= श्रेष्ठ	**किम्**	= क्यों
मता	= मान्य है	**नियोजयसि**	= लगाते हैं?

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥ २॥

व्यामिश्रेण, इव, वाक्येन, बुद्धिम्, मोहयसि, इव, मे
तत्, एकम्, वद, निश्चित्य, येन, श्रेयः, अहम्, आप्नुयाम्॥ २॥

तथा आप—

व्यामिश्रेण, इव	= मिले हुए-से	**तत्**	= उस
वाक्येन	= वचनोंसे	**एकम्**	= एक बातको
मे	= मेरी	**निश्चित्य**	= निश्चित करके
बुद्धिम्	= बुद्धिको	**वद**	= कहिये,
		येन	= जिससे
मोहयसि, इव	= मानो मोहित कर रहे हैं (इसलिये)	**अहम्**	= मैं
		श्रेयः	= कल्याणको
		आप्नुयाम्	= प्राप्त हो जाऊँ।

[अधिकारी-भेदसे दो निष्ठाओंका वर्णन।]

श्रीभगवानुवाच

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥ ३॥

लोके, अस्मिन्, द्विविधा, निष्ठा, पुरा, प्रोक्ता, मया, अनघ,
ज्ञानयोगेन, साङ्ख्यानाम्, कर्मयोगेन, योगिनाम्॥ ३॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्ण महाराज बोले—

अनघ	= हे निष्पाप!	**द्विविधा**	= दो प्रकारकी
अस्मिन्	= इस	**निष्ठा**	= निष्ठा*
लोके	= लोकमें	**मया**	= मेरे द्वारा

* साधनकी परिपक्व अवस्था अर्थात् पराकाष्ठाका नाम 'निष्ठा' है।

पुरा	= पहले	**ज्ञानयोगेन**	= ज्ञानयोगसे[1] (और)
प्रोक्ता	= कही गयी है। (उनमेंसे)	**योगिनाम्**	= योगियोंकी (निष्ठा)
साङ्ख्यानाम्	= साङ्ख्ययोगियों-की (निष्ठा तो)	**कर्मयोगेन**	= कर्मयोगसे[2] (होती है)।

[किसी भी निष्ठाकी सिद्धि-हेतु कर्मोंका स्वरूपसे त्याग करनेका निषेध।]

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति॥ ४॥

न, कर्मणाम्, अनारम्भात्, नैष्कर्म्यम्, पुरुषः, अश्नुते,
न, च, सन्न्यसनात्, एव, सिद्धिम्, समधिगच्छति॥ ४॥

परंतु किसी भी मार्गके अनुसार कर्मोंको स्वरूपसे त्यागनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि—

पुरुषः	= मनुष्य		यानी योग-निष्ठाको
न	= न (तो)		
कर्मणाम्	= कर्मोंका	**अश्नुते**	= प्राप्त होता है
अनारम्भात्	= आरम्भ किये बिना	**च**	= और
नैष्कर्म्यम्	= निष्कर्मताको[3]	**न**	= न

१- मायासे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बरतते हैं, ऐसे समझकर तथा मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित रहनेका नाम ''ज्ञानयोग'' है, इसीको 'संन्यास', 'सांख्ययोग' इत्यादि नामोंसे कहा है।

२- फल और आसक्तिको त्यागकर भगवदाज्ञानुसार केवल भगवदर्थ समत्वबुद्धिसे कर्म करनेका नाम 'निष्काम कर्मयोग' है, इसीको 'समत्वयोग', बुद्धियोग', 'कर्मयोग', 'तदर्थकर्म', 'मदर्थकर्म', 'मत्कर्म' इत्यादि नामोंसे कहा है।

३- जिस अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके कर्म अकर्म हो जाते हैं अर्थात् फल उत्पन्न नहीं कर सकते, उस अवस्थाका नाम 'निष्कर्मता' है।

सन्न्यसनात्, **एव**	=	(कर्मोंके केवल) त्यागमात्रसे		सांख्यनिष्ठाको (ही)
सिद्धिम्	=	सिद्धि यानी	**समधिगच्छति** =	प्राप्त होता है।

[क्षणमात्रके लिये भी कर्मोंका सर्वथा त्याग असम्भव बतलाना।]

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

न, हि, कश्चित्, क्षणम्, अपि, जातु, तिष्ठति, अकर्मकृत्,
कार्यते, हि, अवशः, कर्म, सर्वः, प्रकृतिजैः, गुणैः ॥ ५ ॥

तथा सर्वथा कर्मोंका स्वरूपसे त्याग हो भी नहीं सकता—

हि	= नि:सन्देह		**सर्वः**	= सारा मनुष्य-समुदाय
कश्चित्	= कोई भी (मनुष्य)			
जातु	= किसी भी कालमें			
क्षणम्	= क्षणमात्र		**प्रकृतिजैः**	= प्रकृतिजनित
अपि	= भी		**गुणैः**	= गुणोंद्वारा
अकर्मकृत्	= बिना कर्म किये		**अवशः**	= परवश हुआ
न	= नहीं		**कर्म**	= कर्म करनेके लिये
तिष्ठति	= रहता;		**कार्यते**	= बाध्य किया जाता है।
हि	= क्योंकि			

[केवल ऊपरसे इन्द्रियोंकी क्रिया न करनेवाले विषय-चिन्तक मनुष्यको मिथ्याचारी बतलाना।]

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

कर्मेन्द्रियाणि, संयम्य, यः, आस्ते, मनसा, स्मरन्,
इन्द्रियार्थान्, विमूढात्मा, मिथ्याचारः, सः, उच्यते ॥ ६ ॥

इसलिये—

यः	= जो	**इन्द्रियार्थान्**	= इन्द्रियोंके विषयोंका
विमूढात्मा	= मूढ़बुद्धि मनुष्य	**स्मरन्**	= चिन्तन करता
कर्मेन्द्रियाणि	= समस्त इन्द्रियों-को (हठपूर्वक ऊपरसे)	**आस्ते**	= रहता है,
संयम्य	= रोककर	**सः**	= वह
मनसा	= मनसे (उन)	**मिथ्याचारः**	= मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी
		उच्यते	= कहा जाता है।

[मनसे इन्द्रियोंका संयम करके अनासक्तभावसे कर्म करनेवालेकी प्रशंसा।]

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥ ७॥

यः, तु, इन्द्रियाणि, मनसा, नियम्य, आरभते, अर्जुन,
कर्मेन्द्रियैः, कर्मयोगम्, असक्तः, सः, विशिष्यते॥ ७॥

तु	= किंतु	**असक्तः**	= अनासक्त हुआ
अर्जुन	= हे अर्जुन!	**कर्मेन्द्रियैः**	= समस्त इन्द्रियोंद्वारा
यः	= जो (पुरुष)	**कर्मयोगम्**	= कर्मयोगका
मनसा	= मनसे	**आरभते**	= आचरण करता है,
इन्द्रियाणि	= इन्द्रियोंको	**सः**	= वही
नियम्य	= वशमें करके	**विशिष्यते**	= श्रेष्ठ है।

[कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्मोंका करना श्रेष्ठ तथा कर्मोंके बिना शरीरनिर्वाह असम्भव बतलाकर निःस्वार्थ और अनासक्तभावसे विहित कर्म करनेकी आज्ञा।]

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥ ८॥

नियतम्, कुरु, कर्म, त्वम्, कर्म, ज्यायः, हि, अकर्मणः,
शरीरयात्रा, अपि, च, ते, न, प्रसिद्ध्येत्, अकर्मणः॥ ८॥

इसलिये—

त्वम्	= तू	**ज्यायः**	= श्रेष्ठ है
नियतम्	= शास्त्रविहित	**च**	= तथा
कर्म	= कर्तव्यकर्म	**अकर्मणः**	= कर्म न करनेसे
कुरु	= कर;	**ते**	= तेरा
हि	= क्योंकि	**शरीरयात्रा**	= शरीर-निर्वाह
अकर्मणः	= कर्म न करनेकी अपेक्षा	**अपि**	= भी
		न	= नहीं
कर्म	= कर्म करना	**प्रसिद्ध्येत्**	= सिद्ध होगा।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥ ९॥

यज्ञार्थात्, कर्मणः, अन्यत्र, लोकः, अयम्, कर्मबन्धनः,
तदर्थम्, कर्म, कौन्तेय, मुक्तसङ्गः, समाचर॥ ९॥

और हे अर्जुन! बन्धनके भयसे भी कर्मोंका त्याग करना योग्य नहीं है; क्योंकि—

यज्ञार्थात्	= यज्ञके निमित्त किये जानेवाले		(इसलिये)
		कौन्तेय	= हे अर्जुन! (तू)
कर्मणः	= कर्मोंसे अतिरिक्त	**मुक्तसङ्गः**	= आसक्तिसे रहित होकर
अन्यत्र	= दूसरे कर्मोंमें (लगा हुआ ही)	**तदर्थम्**	= उस यज्ञके निमित्त (ही भलीभाँति)
अयम्	= यह		
लोकः	= मनुष्य-समुदाय	**कर्म**	= कर्तव्यकर्म
कर्मबन्धनः	= कर्मोंसे बँधता है।	**समाचर**	= कर।

[प्रजापतिकी आज्ञा होनेके कारण कर्मोंकी अवश्यकर्तव्यताका कथन।]

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥ १०॥

सहयज्ञाः, प्रजाः, सृष्ट्वा, पुरा, उवाच, प्रजापतिः,
अनेन, प्रसविष्यध्वम्, एषः, वः, अस्तु, इष्टकामधुक् ॥ १० ॥

तथा कर्म न करनेसे तू पापको भी प्राप्त होगा; क्योंकि—

प्रजापतिः = प्रजापति ब्रह्माने
पुरा = कल्पके आदिमें
सहयज्ञाः = यज्ञसहित
प्रजाः = प्रजाओंको
सृष्ट्वा = रचकर (उनसे)
उवाच = कहा (कि)
(यूयम्) = तुमलोग
अनेन = इस यज्ञके द्वारा
प्रसविष्यध्वम् = वृद्धिको प्राप्त होओ (और)
एषः = यह यज्ञ
वः = तुमलोगोंको
इष्टकामधुक् = इच्छित भोग प्रदान करनेवाला
अस्तु = हो।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ ११ ॥

देवान्, भावयत, अनेन, ते, देवाः, भावयन्तु, वः,
परस्परम्, भावयन्तः, श्रेयः, परम्, अवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

तथा तुमलोग—

अनेन = इस यज्ञके द्वारा
देवान् = देवताओंको
भावयत = उन्नत करो (और)
ते = वे
देवाः = देवता
वः = तुमलोगोंको
भावयन्तु = उन्नत करें।
(एवम्) = इस प्रकार (निःस्वार्थभावसे)
परस्परम् = एक-दूसरेको
भावयन्तः = उन्नत करते हुए
(यूयम्) = तुमलोग
परम् = परम
श्रेयः = कल्याणको
अवाप्स्यथ = प्राप्त हो जाओगे।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥ १२ ॥

इष्टान्, भोगान्, हि, वः, देवाः, दास्यन्ते, यज्ञभाविताः,
तैः, दत्तान्, अप्रदाय, एभ्यः, यः, भुङ्क्ते, स्तेनः, एव, सः ॥ १२ ॥

तथा—

यज्ञभाविताः	= यज्ञके द्वारा बढ़ाये हुए	**तैः**	= उन देवताओंके द्वारा
देवाः	= देवता	**दत्तान्**	= दिये हुए भोगोंको
वः	= तुमलोगोंको (बिना माँगे ही)	**यः**	= जो पुरुष
		एभ्यः	= इनको
इष्टान्	= इच्छित	**अप्रदाय**	= बिना दिये (स्वयम्)
भोगान्	= भोग		
हि	= निश्चय ही	**भुङ्क्ते**	= भोगता है,
		सः	= वह
दास्यन्ते	= देते रहेंगे। (इस प्रकार)	**स्तेनः**	= चोर
		एव	= ही है।

[यज्ञशिष्ट-अन्नसे सब पापोंका नाश और यज्ञ न करनेवालोंको पापी बतलाना।]

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥

यज्ञशिष्टाशिनः, सन्तः, मुच्यन्ते, सर्वकिल्बिषैः,
भुञ्जते, ते, तु, अघम्, पापाः, ये, पचन्ति, आत्मकारणात् ॥ १३ ॥

कारण कि—

यज्ञशिष्टाशिनः	= यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले	**सर्वकिल्बिषैः**	= सब पापोंसे
		मुच्यन्ते	= मुक्त हो जाते हैं (और)
सन्तः	= श्रेष्ठ पुरुष		

ये = जो
पापाः = पापीलोग
आत्मकारणात् = अपना शरीर पोषण करनेके लिये ही
पचन्ति = (अन्न) पकाते हैं,
ते = वे
तु = तो
अघम् = पापको (ही)
भुंजते = खाते हैं।

[सृष्टिचक्रका वर्णन कर सर्वव्यापी परमेश्वरको यज्ञरूप साधनमें नित्य प्रतिष्ठित बतलाना।]

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥ १४॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥ १५॥

अन्नात्, भवन्ति, भूतानि, पर्जन्यात्, अन्नसम्भवः,
यज्ञात्, भवति, पर्जन्यः, यज्ञः, कर्मसमुद्भवः॥ १४॥
कर्म, ब्रह्मोद्भवम्, विद्धि, ब्रह्म, अक्षरसमुद्भवम्,
तस्मात्, सर्वगतम्, ब्रह्म, नित्यम्, यज्ञे, प्रतिष्ठितम्॥ १५॥

क्योंकि—

भूतानि = सम्पूर्ण प्राणी
अन्नात् = अन्नसे
भवन्ति = उत्पन्न होते हैं,
अन्नसम्भवः = अन्नकी उत्पत्ति
पर्जन्यात् = वृष्टिसे (होती है)
पर्जन्यः = वृष्टि
यज्ञात् = यज्ञसे
भवति = होती है (और)
यज्ञः = यज्ञ
कर्मसमुद्भवः = विहित कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला है।
कर्म = कर्मसमुदायको (तू)
ब्रह्मोद्भवम् = वेदसे उत्पन्न (और)
ब्रह्म = वेदको
अक्षरसमुद्भवम् = अविनाशी परमात्मासे

उत्पन्न हुआ
विद्धि = जान।
तस्मात् = इससे (सिद्ध होता है कि)
सर्वगतम् = सर्वव्यापी
ब्रह्म = परम अक्षर परमात्मा
नित्यम् = सदा ही
यज्ञे = यज्ञमें
प्रतिष्ठितम् = प्रतिष्ठित है।

[सृष्टिचक्रके अनुसार न बरतनेवालेकी निन्दा।]

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥ १६ ॥

एवम्, प्रवर्तितम्, चक्रम्, न, अनुवर्तयति, इह, यः,
अघायुः, इन्द्रियारामः, मोघम्, पार्थ, सः, जीवति ॥ १६ ॥

पार्थ = हे पार्थ!
यः = जो पुरुष
इह = इस लोकमें
एवम् = इस प्रकार (परम्परासे
प्रवर्तितम् = प्रचलित
चक्रम् = सृष्टिचक्रके
न, अनुवर्तयति = अनुकूल नहीं बरतता अर्थात्
अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता,
सः = वह
इन्द्रियारामः = इन्द्रियोंके द्वारा भोगोंमें रमण करनेवाला
अघायुः = पापायु (पुरुष)
मोघम् = व्यर्थ (ही)
जीवति = जीता है।

[आत्मज्ञानीके लिये कर्तव्यके अभावका कथन।]

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥ १७ ॥

यः, तु, आत्मरतिः, एव, स्यात्, आत्मतृप्तः, च, मानवः,
आत्मनि, एव, च, सन्तुष्टः, तस्य, कार्यम्, न, विद्यते ॥ १७ ॥

तु = परंतु
यः = जो
मानवः = मनुष्य
आत्मरतिः, एव = आत्मामें ही रमण करनेवाला

च	= और	**स्यात्**	= हो,
आत्मतृप्तः	= आत्मामें ही तृप्त	**तस्य**	= उसके लिये
च	= तथा	**कार्यम्**	= कोई कर्तव्य
आत्मनि एव	= आत्मामें ही	**न**	= नहीं
सन्तुष्टः	= संतुष्ट	**विद्यते**	= है।

[कर्म करने और न करनेमें ज्ञानीके प्रयोजनका अभाव।]

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥ १८॥

न, एव, तस्य, कृतेन, अर्थः, न, अकृतेन, इह, कश्चन,
न, च, अस्य, सर्वभूतेषु, कश्चित्, अर्थव्यपाश्रयः॥ १८॥

क्योंकि—

तस्य	= उस (महापुरुषका)	**एव**	= ही (कोई प्रयोजन रहता है)
इह	= इस विश्वमें		
न	= न (तो)	**च**	= तथा
कृतेन	= कर्म करनेसे	**सर्वभूतेषु**	= सम्पूर्ण प्राणियोंमें (भी)
कश्चन	= कोई		
अर्थः	= प्रयोजन (रहता है) (और)	**अस्य**	= इसका
		कश्चित्	= किंचिन्मात्र भी
न	= न	**अर्थव्यपाश्रयः**	= स्वार्थका सम्बन्ध
अकृतेन	= कर्मोंके न करनेसे	**न**	= नहीं (रहता)।

[निष्काम कर्मका फल परमात्माकी प्राप्ति बतलाकर अर्जुनको अनासक्त भावसे कर्म करनेकी आज्ञा।]

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥ १९॥

तस्मात्, असक्तः, सततम्, कार्यम्, कर्म, समाचर,
असक्तः, हि, आचरन्, कर्म, परम्, आप्नोति, पूरुषः॥ १९॥

तस्मात्	=	इसलिये (तू)	**असक्तः**	=	आसक्तिसे रहित होकर
सततम्	=	निरन्तर			
असक्तः	=	आसक्तिसे रहित होकर (सदा)	**कर्म**	=	कर्म
कार्यम्, कर्म	=	कर्तव्यकर्मको	**आचरन्**	=	करता हुआ
समाचर	=	भलीभाँति करता रह।	**पूरुषः**	=	मनुष्य
			परम्	=	परमात्माको
हि	=	क्योंकि	**आप्नोति**	=	प्राप्त हो जाता है।

[जनकादिके दृष्टान्तसे कर्म करनेके लिये प्रेरणा।]

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥ २०॥

कर्मणा, एव, हि, संसिद्धिम्, आस्थिताः, जनकादयः,
लोकसङ्ग्रहम्, एव, अपि, सम्पश्यन्, कर्तुम्, अर्हसि॥ २०॥

इस प्रकार—

जनकादयः	=	जनकादि ज्ञानीजन भी	**लोकसङ्ग्रहम्**	=	लोकसंग्रहको
			सम्पश्यन्	=	देखते हुए
कर्मणा	=	(आसक्तिरहित) कर्मद्वारा	**अपि**	=	भी (तू)
			कर्तुम्	=	कर्म करनेको
एव	=	ही	**एव**	=	ही
संसिद्धिम्	=	परमसिद्धिको	**अर्हसि**	=	योग्य है अर्थात् तुझे कर्म करना ही उचित है।
आस्थिताः	=	प्राप्त हुए थे।			
हि	=	इसलिये (तथा)			

[श्रेष्ठ पुरुषके आचरण प्रमाणस्वरूप माने जानेका कथन।]

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ २१॥

यत्, यत्, आचरति, श्रेष्ठः, तत्, तत्, एव, इतरः, जनः,
सः, यत्, प्रमाणम्, कुरुते, लोकः, तत्, अनुवर्तते ॥ २१ ॥

क्योंकि—

श्रेष्ठः	= श्रेष्ठ पुरुष	**यत्**	= जो कुछ
यत्, यत्	= जो-जो	**प्रमाणम्**	= प्रमाण
आचरति	= आचरण करता है,	**कुरुते**	= कर देता है,
इतरः	= अन्य	**लोकः**	= समस्त मनुष्य-समुदाय
जनः	= पुरुष (भी)		
तत्, तत्	= वैसा-वैसा	**तत्**	= उसीके
एव	= ही (आचरण करते हैं)।	**अनुवर्तते**	= अनुसार बरतने लग जाता है।
सः	= वह		

[स्वयं अपना दृष्टान्त देते हुए कर्म करनेसे लाभ और कर्म न करनेसे हानिका कथन।]

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥ २२ ॥

न, मे, पार्थ, अस्ति, कर्तव्यम्, त्रिषु, लोकेषु, किंचन,
न, अनवाप्तम्, अवाप्तव्यम्, वर्ते, एव, च, कर्मणि ॥ २२ ॥

इसलिये—

पार्थ	= हे अर्जुन!	**न**	= न (कोई भी)
मे	= मुझे (इन)	**अवाप्तव्यम्**	= प्राप्त करनेयोग्य (वस्तु)
त्रिषु	= तीनों		
लोकेषु	= लोकोंमें	**अनवाप्तम्**	= अप्राप्त है, (तो भी मैं)
न	= न तो		
किंचन	= कुछ		
कर्तव्यम्	= कर्तव्य	**कर्मणि**	= कर्ममें
अस्ति	= है	**एव**	= ही
च	= और	**वर्ते**	= बरतता हूँ।

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ २३॥

यदि, हि, अहम्, न, वर्तेयम्, जातु, कर्मणि, अतन्द्रितः,
मम, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः॥ २३॥

हि	= क्योंकि	**वर्तेयम्**	= बरतूँ (तो बड़ी हानि हो जाय; क्योंकि)
पार्थ	= हे पार्थ!	**मनुष्याः**	= मनुष्य
यदि	= यदि	**सर्वशः**	= सब प्रकारसे
जातु	= कदाचित्	**मम**	= मेरे (ही)
अहम्	= मैं	**वर्त्म**	= मार्गका
अतन्द्रितः	= सावधान होकर	**अनुवर्तन्ते**	= अनुसरण करते हैं।
कर्मणि	= कर्मोंमें		
न	= न		

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥ २४॥

उत्सीदेयुः, इमे, लोकाः, न, कुर्याम्, कर्म, चेत्, अहम्,
संकरस्य, च, कर्ता, स्याम्, उपहन्याम्, इमाः, प्रजाः॥ २४॥

इसलिये—

चेत्	= यदि	**च**	= और (मैं)
अहम्	= मैं	**संकरस्य**	= संकरताका
कर्म	= कर्म	**कर्ता**	= करनेवाला
न	= न	**स्याम्**	= होऊँ (तथा)
कुर्याम्	= करूँ (तो)	**इमाः**	= इस
इमे	= ये	**प्रजाः**	= समस्त प्रजाको
लोकाः	= सब मनुष्य	**उपहन्याम्**	= नष्ट करनेवाला बनूँ।
उत्सीदेयुः	= नष्ट-भ्रष्ट हो जायँ		

[ज्ञानीके लिये भी लोक-संग्रहार्थ स्वयं कर्म करने और दूसरोंसे करवानेका विधान।]

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम् ॥ २५ ॥

सक्ताः, कर्मणि, अविद्वांसः, यथा, कुर्वन्ति, भारत,
कुर्यात्, विद्वान्, तथा, असक्तः, चिकीर्षुः, लोकसङ्ग्रहम् ॥ २५ ॥

इसलिये—

भारत = हे भारत!
कर्मणि = कर्ममें
सक्ताः = आसक्त हुए
अविद्वांसः = अज्ञानीजन
यथा = जिस प्रकार (कर्म)
कुर्वन्ति = करते हैं,
असक्तः = आसक्तिरहित
विद्वान् = विद्वान् (भी)
लोकसङ्ग्रहम् = लोक-संग्रह
चिकीर्षुः = करना चाहता हुआ
तथा = उसी प्रकार (कर्म)
कुर्यात् = करे।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥

न, बुद्धिभेदम्, जनयेत्, अज्ञानाम्, कर्मसङ्गिनाम्,
जोषयेत्, सर्वकर्माणि, विद्वान्, युक्तः, समाचरन् ॥ २६ ॥

तथा—

युक्तः = परमात्माके स्वरूपमें अटल स्थित हुए
विद्वान् = ज्ञानी पुरुषको (चाहिये कि वह)
कर्मसङ्गिनाम् = शास्त्रविहितकर्मों-में आसक्तिवाले
अज्ञानाम् = अज्ञानियोंकी
बुद्धिभेदम् = बुद्धिमें भ्रम अर्थात् कर्मोंमें अश्रद्धा

न, जनयेत्	=	उत्पन्न न करे। (किंतु स्वयम्)	**समाचरन्**	=	भलीभाँति करता हुआ (उनसे भी वैसे ही)
सर्वकर्माणि	=	शास्त्रविहित समस्त कर्म	**जोषयेत्**	=	करवावे।

[मूढ पुरुषका लक्षण।]

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥ २७॥

प्रकृतेः, क्रियमाणानि, गुणैः, कर्माणि, सर्वशः,
अहङ्कारविमूढात्मा, कर्ता, अहम्, इति, मन्यते॥ २७॥

और हे अर्जुन! वास्तवमें—

कर्माणि	=	सम्पूर्ण कर्म	**अहङ्कार-विमूढात्मा**	=	जिसका अन्तः-करण अहंकारसे मोहित हो रहा है, ऐसा अज्ञानी
सर्वशः	=	सब प्रकारसे			
प्रकृतेः	=	प्रकृतिके			
गुणैः	=	गुणोंद्वारा	**अहम्, कर्ता**	=	'मैं कर्ता हूँ'
क्रियमाणानि	=	किये जाते हैं (तो भी)	**इति**	=	ऐसा
			मन्यते	=	मानता है।

[कर्मासक्त जनसमुदायकी अपेक्षा सांख्ययोगीकी विलक्षणताका प्रतिपादन]

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥ २८॥

तत्त्ववित्, तु, महाबाहो, गुणकर्मविभागयोः,
गुणाः, गुणेषु, वर्तन्ते, इति, मत्वा, न, सज्जते॥ २८॥

तु	=	परंतु	**गुणकर्म-विभागयोः**	=	गुणविभाग और कर्मविभागके*
महाबाहो	=	हे महाबाहो!			

* त्रिगुणात्मक मायाके कार्यरूप पाँच महाभूत और मन, बुद्धि अहंकार तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और शब्दादि पाँच विषय—इन सबके समुदायका नाम 'गुणविभाग' है और इनकी परस्परकी चेष्टाओंका नाम 'कर्मविभाग' है।

तत्त्ववित् = तत्त्वको * जाननेवाला ज्ञानयोगी
गुणाः = सम्पूर्ण गुण (ही)
गुणेषु = गुणोंमें
वर्तन्ते = बरत रहे हैं
इति = ऐसा
मत्वा = समझकर (उनमें)
न, सज्जते = आसक्त नहीं होता।

[ज्ञानीके लिये साधारण मनुष्योंको कर्मोंसे विचलित करनेका निषेध।]

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥ २९॥

प्रकृतेः, गुणसम्मूढाः, सज्जन्ते, गुणकर्मसु,
तान्, अकृत्स्नविदः, मन्दान्, कृत्स्नवित्, न, विचालयेत्॥ २९॥

और—

प्रकृतेः = प्रकृतिके
गुणसम्मूढाः = गुणोंसे अत्यन्त मोहित हुए मनुष्य
गुणकर्मसु = गुणोंमें और कर्मोंमें
सज्जन्ते = आसक्त रहते हैं,
तान् = उन
अकृत्स्नविदः = पूर्णतया न समझनेवाले
मन्दान् = मन्दबुद्धि अज्ञानियोंको
कृत्स्नवित् = पूर्णतया जाननेवाला ज्ञानी
न, विचालयेत् = विचलित न करे।

[अर्जुनको आशा, ममतादिका सर्वथा त्यागकर भगवदर्पण बुद्धिसे युद्ध करनेकी आज्ञा।]

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ ३०॥

मयि, सर्वाणि, कर्माणि, सन्न्यस्य, अध्यात्मचेतसा,
निराशीः, निर्ममः, भूत्वा, युध्यस्व, विगतज्वरः॥ ३०॥

---

* उपर्युक्त 'गुणविभाग' और 'कर्मविभाग' से आत्माको पृथक् अर्थात् निर्लेप जानना ही इनका तत्त्व जानना है।

इसलिये हे अर्जुन! तू—

अध्यात्मचेतसा	= मुझ अन्तर्यामी परमात्मामें लगे हुए चित्तद्वारा
सर्वाणि	= सम्पूर्ण
कर्माणि	= कर्मोंको
मयि	= मुझमें
सन्न्यस्य	= अर्पण करके
निराशीः	= आशारहित,
निर्ममः	= ममतारहित (और)
विगतज्वरः	= संतापरहित
भूत्वा	= होकर
युध्यस्व	= युद्ध कर।

[भगवत्-सिद्धान्तके अनुकूल बरतनेसे मुक्ति।]

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥ ३१ ॥

ये, मे, मतम्, इदम्, नित्यम्, अनुतिष्ठन्ति, मानवाः,
श्रद्धावन्तः, अनसूयन्तः, मुच्यन्ते, ते, अपि, कर्मभिः॥ ३१ ॥

और हे अर्जुन!—

ये	= जो कोई
मानवाः	= मनुष्य
अनसूयन्तः	= दोषदृष्टिसे रहित (और)
श्रद्धावन्तः	= श्रद्धायुक्त होकर
मे	= मेरे
इदम्	= इस
मतम्	= मतका
नित्यम्	= सदा
अनुतिष्ठन्ति	= अनुसरण करते हैं,
ते	= वे
अपि	= भी
कर्मभिः	= सम्पूर्ण कर्मोंसे
मुच्यन्ते	= छूट जाते हैं।

[भगवत्-सिद्धान्तके अनुसार न बरतनेसे पतन।]

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः॥ ३२ ॥

ये, तु, एतत्, अभ्यसूयन्तः, न, अनुतिष्ठन्ति, मे, मतम्,
सर्वज्ञानविमूढान्, तान्, विद्धि, नष्टान्, अचेतसः॥ ३२ ॥

तु	=	परंतु	**न, अनुतिष्ठन्ति**	=	अनुसार नहीं चलते हैं,
ये	=	जो मनुष्य (मुझमें)	**तान्**	=	उन
अभ्यसूयन्तः	=	दोषारोपण करते हुए	**अचेतसः**	=	मूर्खोंको (तू)
मे	=	मेरे	**सर्वज्ञानविमूढान्**	=	सम्पूर्ण ज्ञानोंमें मोहित (और)
एतत्	=	इस	**नष्टान्**	=	नष्ट हुए (ही)
मतम्	=	मतके	**विद्धि**	=	समझ।

[स्वाभाविक कर्मोंकी चेष्टामें प्रकृतिकी प्रबलताका कथन।]

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥ ३३॥

सदृशम्, चेष्टते, स्वस्याः, प्रकृतेः, ज्ञानवान्, अपि,
प्रकृतिम्, यान्ति, भूतानि, निग्रहः, किम्, करिष्यति॥ ३३॥

क्योंकि—

भूतानि	=	सभी प्राणी	**स्वस्याः**	=	अपनी
प्रकृतिम्	=	प्रकृतिको	**प्रकृतेः**	=	प्रकृतिके
यान्ति	=	प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने स्वभावके परवश हुए कर्म करते हैं।	**सदृशम्**	=	अनुसार
			चेष्टते	=	चेष्टा करता है। (फिर इसमें किसीका)
			निग्रहः	=	हठ
ज्ञानवान्	=	ज्ञानवान्	**किम्**	=	क्या
अपि	=	भी	**करिष्यति**	=	करेगा?

[राग-द्वेषके वशमें न होनेकी प्रेरणा।]

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥ ३४॥

इन्द्रियस्य, इन्द्रियस्य, अर्थे, रागद्वेषौ, व्यवस्थितौ,
तयोः, न, वशम्, आगच्छेत्, तौ, हि, अस्य, परिपन्थिनौ॥ ३४॥

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि—

इन्द्रियस्य, इन्द्रियस्य	= इन्द्रिय-इन्द्रियके	**वशम्**	= वशमें
		न	= नहीं
अर्थे	= अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें	**आगच्छेत्**	= होना चाहिये;
		हि	= क्योंकि
		तौ	= वे दोनों (ही)
रागद्वेषौ	= राग और द्वेष	**अस्य**	= इसके (कल्याणमार्गमें)
व्यवस्थितौ	= छिपे हुए स्थित हैं। (मनुष्यको)	**परिपन्थिनौ**	= विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं।
तयोः	= उन दोनोंके		

[स्वधर्मपालनसे कल्याण और परधर्मसे हानि।]

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ ३५॥

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे, निधनम्, श्रेयः, परधर्मः, भयावहः॥ ३५॥

इसलिये उन दोनोंको जीतकर सावधान हुआ स्वधर्मका आचरण करे; क्योंकि—

स्वनुष्ठितात्	= अच्छी प्रकार आचरणमें लाये हुए	**स्वधर्मे**	= अपने धर्ममें (तो)
		निधनम्	= मरना (भी)
		श्रेयः	= कल्याणकारक है (और)
परधर्मात्	= दूसरेके धर्मसे	**परधर्मः**	= दूसरेका धर्म
विगुणः	= गुणरहित (भी)	**भयावहः**	= भयको देनेवाला है।
स्वधर्मः	= अपना धर्म		
श्रेयान्	= अति उत्तम है।		

[बलात् मनुष्यको पापमें प्रवृत्त कौन करता है ? इस विषयमें अर्जुनका प्रश्न।]

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥ ३६॥

अथ, केन, प्रयुक्तः, अयम्, पापम्, चरति, पूरुषः,
अनिच्छन्, अपि, वार्ष्णेय, बलात्, इव, नियोजितः॥ ३६॥

इसपर अर्जुनने पूछा कि—

वार्ष्णेय = हे कृष्ण! (तो)
अथ = फिर
अयम् = यह
पूरुषः = मनुष्य (स्वयम्)
अनिच्छन् = न चाहता हुआ
अपि = भी
बलात् = बलात्
नियोजितः = लगाये हुएकी
इव = भाँति
केन = किससे
प्रयुक्तः = प्रेरित होकर
पापम् = पापका
चरति = आचरण करता है ?

[बलात् पाप करानेमें कामरूप हेतुका कथन।]

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥ ३७॥

कामः, एषः, क्रोधः, एषः, रजोगुणसमुद्भवः,
महाशनः, महापाप्मा, विद्धि, एनम्, इह, वैरिणम्॥ ३७॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन!—

रजोगुणसमुद्भवः = रजोगुणसे उत्पन्न हुआ
एषः = यह
कामः = काम (ही)
क्रोधः = क्रोध है,
एषः = यह
महाशनः = बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे

	कभी न अघानेवाला (और)	**इह**	= इस विषयमें
महापाप्मा	= बड़ा पापी है,	**वैरिणम्**	= वैरी
एनम्	= इसको (ही) तू	**विद्धि**	= जान।

[कामरूप वैरीसे ज्ञान ढका हुआ है, इस विषयका दृष्टान्तोंसहित वर्णन।]

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥ ३८॥

धूमेन, आव्रियते, वह्निः, यथा, आदर्शः, मलेन, च,
यथा, उल्बेन, आवृतः, गर्भः, तथा, तेन, इदम्, आवृतम्॥ ३८॥

यथा	= जिस प्रकार	**यथा**	= जिस प्रकार
धूमेन	= धुएँसे	**उल्बेन**	= जेरसे
वह्निः	= अग्नि	**गर्भः**	= गर्भ
च	= और	**आवृतः**	= ढका रहता है,
मलेन	= मैलसे	**तथा**	= वैसे ही
आदर्शः	= दर्पण	**तेन**	= उस कामके द्वारा
आव्रियते	= ढका जाता है (तथा)	**इदम्**	= यह (ज्ञान)
		आवृतम्	= ढका रहता है।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥ ३९॥

आवृतम्, ज्ञानम्, एतेन, ज्ञानिनः, नित्यवैरिणा,
कामरूपेण, कौन्तेय, दुष्पूरेण, अनलेन, च॥ ३९॥

च	= और	**अनलेन**	= अग्निके (समान कभी)
कौन्तेय	= हे अर्जुन!		
एतेन	= इस	**दुष्पूरेण**	= न पूर्ण होनेवाले

कामरूपेण = कामरूप		**ज्ञानम्** = ज्ञान	
ज्ञानिनः = ज्ञानियोंके			
नित्यवैरिणा = नित्य वैरीके द्वारा (मनुष्यका)		**आवृतम्** = ढका हुआ है।	

[कामके वासस्थानोंका कथन।]

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥ ४०॥

इन्द्रियाणि, मनः, बुद्धिः, अस्य, अधिष्ठानम्, उच्यते,
एतैः, विमोहयति, एषः, ज्ञानम्, आवृत्य, देहिनम्॥ ४०॥

तथा—

इन्द्रियाणि	= इन्द्रियाँ	**एतैः**	= इन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा ही
मनः	= मन (और)		
बुद्धिः	= बुद्धि—(ये सब)		
अस्य	= इसके	**ज्ञानम्**	= ज्ञानको
अधिष्ठानम्	= वासस्थान	**आवृत्य**	= आच्छादित करके
उच्यते	= कहे जाते हैं।	**देहिनम्**	= जीवात्माको
एषः	= यह काम	**विमोहयति**	= मोहित करता है।

[इन्द्रियोंको वशमें करके कामको मारनेकी आज्ञा।]

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥ ४१॥

तस्मात्, त्वम्, इन्द्रियाणि, आदौ, नियम्य, भरतर्षभ,
पाप्मानम्, प्रजहि, हि, एनम्, ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥ ४१॥

तस्मात्	= इसलिये	**आदौ**	= पहले
भरतर्षभ	= हे अर्जुन!	**इन्द्रियाणि**	= इन्द्रियोंको
त्वम्	= तू	**नियम्य**	= वशमें करके

एनम्	= इस	**पाप्मानम्**	= महान् पापी कामको
ज्ञानविज्ञान-नाशनम्	= ज्ञान और विज्ञानका नाश करनेवाले	**हि**	= अवश्य ही
		प्रजहि	= बलपूर्वक मार डाल।

[इन्द्रिय, मन और बुद्धिसे भी आत्माकी अति श्रेष्ठताका कथन।]

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥ ४२॥

इन्द्रियाणि, पराणि, आहुः, इन्द्रियेभ्यः, परम्, मनः,
मनसः, तु, परा, बुद्धिः, यः, बुद्धेः, परतः, तु, सः॥ ४२॥

और यदि तू समझे कि इन्द्रियोंको रोककर कामरूप वैरीको मारनेकी मेरी शक्ति नहीं है तो तेरी यह भूल है; क्योंकि—

इन्द्रियाणि	= इन्द्रियोंको (स्थूल शरीरसे)	**मनसः**	= मनसे
		तु	= भी
पराणि	= पर यानी श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म	**परा**	= पर
		बुद्धिः	= बुद्धि है
		तु	= और
आहुः	= कहते हैं;	**यः**	= जो
इन्द्रियेभ्यः	= इन इन्द्रियोंसे	**बुद्धेः**	= बुद्धिसे (भी)
परम्	= पर	**परतः**	= अत्यन्त पर है,
मनः	= मन है,	**सः**	= वह (आत्मा) है।

[बुद्धिसे परे आत्माको जानकर बुद्धिद्वारा मनका संयम करके कामको मारनेकी आज्ञा देते हुए अध्यायकी समाप्ति।]

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥ ४३॥

एवम्, बुद्धेः, परम्, बुद्ध्वा, संस्तभ्य, आत्मानम्, आत्मना,
जहि, शत्रुम्, महाबाहो, कामरूपम्, दुरासदम् ॥ ४३ ॥

एवम् = इस प्रकार		**आत्मानम्** = मनको	
बुद्धेः = बुद्धिसे		**संस्तभ्य** = वशमें करके	
परम् = पर अर्थात् सूक्ष्म बलवान् और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्माको		**महाबाहो** = हे महाबाहो! (तू इस)	
		कामरूपम् = कामरूप	
		दुरासदम् = दुर्जय	
बुद्ध्वा = जानकर (और)		**शत्रुम्** = शत्रुको	
आत्मना = बुद्धिके द्वारा		**जहि** = मार डाल।	

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो

नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रधान-विषय— *१ से १८ तक सगुण भगवान्‌का प्रभाव और निष्काम कर्मयोगका विषय, (१९—२३) योगी महात्मा पुरुषोंके आचरण और उनकी महिमा, (२४—३२) फलसहित पृथक्-पृथक् यज्ञोंका कथन, (३३—४२) ज्ञानकी महिमा।*

[कर्मयोगकी परम्परा और बहुत कालसे उसके लुप्तप्राय हो जानेका कथन।]

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥ १॥

इमम्, विवस्वते, योगम्, प्रोक्तवान्, अहम्, अव्ययम्,
विवस्वान्, मनवे, प्राह, मनुः, इक्ष्वाकवे, अब्रवीत्॥ १॥

इसके पश्चात् श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन!—

अहम् = मैंने
इमम् = इस
अव्ययम् = अविनाशी
योगम् = योगको
विवस्वते = सूर्यसे
प्रोक्तवान् = कहा था,
विवस्वान् = सूर्यने (अपने पुत्र वैवस्वत)
मनवे = मनुसे
प्राह = कहा (और)
मनुः = मनुने (अपने पुत्र)
इक्ष्वाकवे = राजा इक्ष्वाकुसे
अब्रवीत् = कहा।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप॥ २॥

एवम्, परम्पराप्राप्तम्, इमम्, राजर्षयः, विदुः,
सः, कालेन, इह, महता, योगः, नष्टः, परन्तप ॥ २ ॥

परन्तप	= हे परन्तप अर्जुन!	**सः**	=	वह
एवम्	= इस प्रकार	**योगः**	=	योग
परम्पराप्राप्तम्	= परम्परासे प्राप्त	**महता**	=	बहुत
इमम्	= इस योगको	**कालेन**	=	कालसे
राजर्षयः	= राजर्षियोंने			
विदुः	= जाना, (किंतु उसके बाद)	**इह**	=	इस पृथ्वीलोकमें
		नष्टः	=	लुप्तप्राय हो गया।

[पुरातन योगकी प्रशंसा।]

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥ ३ ॥

सः, एव, अयम्, मया, ते, अद्य, योगः, प्रोक्तः, पुरातनः,
भक्तः, असि, मे, सखा, च, इति, रहस्यम्, हि, एतत्, उत्तमम्॥ ३ ॥

(त्वम्)	= तू	**अद्य**	=	आज
मे	= मेरा	**मया**	=	मैंने
भक्तः	= भक्त	**ते**	=	तुझको
च	= और	**प्रोक्तः**	=	कहा है;
सखा	= प्रिय सखा	**हि**	=	क्योंकि
असि	= है,	**एतत्**	=	यह
इति	= इसलिये	**उत्तमम्**	=	बड़ा ही उत्तम
सः, एव	= वही			
अयम्	= यह			
पुरातनः	= पुरातन	**रहस्यम्**	=	रहस्य है अर्थात् गुप्त रखनेयोग्य विषय है।
योगः	= योग			

[श्रीकृष्णभगवान्‌का जन्म आधुनिक मानकर अर्जुनका प्रश्न करना।]

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति॥ ४॥

अपरम्, भवतः, जन्म, परम्, जन्म, विवस्वतः,
कथम्, एतत्, विजानीयाम्, त्वम्, आदौ, प्रोक्तवान् इति॥ ४॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचन सुनकर अर्जुन बोले, हे भगवन्!

भवतः	= आपका	**इति**	= इस बातको
जन्म	= जन्म (तो)	**कथम्**	= कैसे
अपरम्	= अर्वाचीन—अभी हालका है (और)	**विजानीयाम्**	= समझूँ (कि)
विवस्वतः	= सूर्यका	**त्वम्**	= आपहीने
जन्म	= जन्म	**आदौ**	= कल्पके आदिमें (सूर्यसे)
परम्	= बहुत पुराना है अर्थात् कल्पके आदिमें हो चुका था; (तब मैं)	**एतत्**	= यह योग
		प्रोक्तवान्	= कहा था?

[श्रीभगवान्‌द्वारा अपने और अर्जुनके बहुत जन्म व्यतीत होनेका कथन।]

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥ ५॥

बहूनि, मे, व्यतीतानि, जन्मानि, तव, च, अर्जुन,
तानि, अहम्, वेद, सर्वाणि, न, त्वम्, वेत्थ, परन्तप॥ ५॥

इसपर श्रीभगवान् बोले—

परन्तप	= हे परन्तप	**मे**	= मेरे
अर्जुन	= अर्जुन!	**च**	= और

तव	= तेरे	**त्वम्**	= तू
बहूनि	= बहुत-से	**न**	= नहीं
जन्मानि	= जन्म		
व्यतीतानि	= हो चुके हैं।	**वेत्थ**	= जानता, (किंतु)
तानि	= उन	**अहम्**	= मैं
सर्वाणि	= सबको	**वेद**	= जानता हूँ।

[श्रीभगवान्‌के जन्मकी अलौकिकता।]

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥ ६॥

अजः, अपि, सन्, अव्ययात्मा, भूतानाम्, ईश्वरः, अपि, सन्, प्रकृतिम्, स्वाम्, अधिष्ठाय, सम्भवामि, आत्ममायया॥ ६॥

तथा मेरा जन्म प्राकृत मनुष्योंके सदृश नहीं है—

(अहम्)	= मैं	**अपि**	= भी
अजः	= अजन्मा (और)	**स्वाम्**	= अपनी
अव्ययात्मा	= अविनाशीस्वरूप	**प्रकृतिम्**	= प्रकृतिको
सन्	= होते हुए	**अधिष्ठाय**	= अधीन करके
अपि	= भी (तथा)		
भूतानाम्	= समस्त प्राणियोंका	**आत्ममायया**	= अपनी योगमायासे
ईश्वरः	= ईश्वर		
सन्	= होते हुए	**सम्भवामि**	= प्रकट होता हूँ।

[श्रीभगवान्‌के अवतार लेनेके समयका कथन।]

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ ७॥

यदा, यदा, हि, धर्मस्य, ग्लानिः, भवति, भारत, अभ्युत्थानम्, अधर्मस्य, तदा, आत्मानम्, सृजामि, अहम्॥ ७॥

भारत	= हे भारत!	**तदा**	= तब-तब
यदा, यदा	= जब-जब	**हि**	= ही
धर्मस्य	= धर्मकी	**अहम्**	= मैं
ग्लानिः	= हानि (और)	**आत्मानम्**	= अपने रूपको
अधर्मस्य	= अधर्मकी	**सृजामि**	= रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ।
अभ्युत्थानम्	= वृद्धि		
भवति	= होती है,		

[श्रीभगवान्‌के अवतार लेनेके कारणका कथन।]

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ ८॥

परित्राणाय, साधूनाम्, विनाशाय, च, दुष्कृताम्,
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि, युगे, युगे॥ ८॥

क्योंकि—

साधूनाम्	= साधु पुरुषोंका	**धर्मसंस्थापनार्थाय**	= धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये (मैं)
परित्राणाय	= उद्धार करनेके लिये		
दुष्कृताम्	= पापकर्म करनेवालोंका		
विनाशाय	= विनाश करनेके लिये	**युगे, युगे**	= युग-युगमें
च	= और	**सम्भवामि**	= प्रकट हुआ करता हूँ।

[श्रीभगवान्‌के जन्म-कर्मोंको दिव्य जाननेका फल।]

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥ ९॥

जन्म, कर्म, च, मे, दिव्यम्, एवम्, यः, वेत्ति, तत्त्वतः,
त्यक्त्वा, देहम्, पुनः, जन्म, न, एति, माम्, एति, सः, अर्जुन॥ ९ ॥

इसलिये—

अर्जुन = हे अर्जुन!
मे = मेरे
जन्म = जन्म
च = और
कर्म = कर्म
दिव्यम् = दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—
एवम् = इस प्रकार
यः = जो मनुष्य
तत्त्वतः = तत्त्वसे*
वेत्ति = जान लेता है,
सः = वह
देहम् = शरीरको
त्यक्त्वा = त्यागकर
पुनः = फिर
जन्म = जन्मको
न, एति = प्राप्त नहीं होता, (किंतु)
माम् = मुझे (ही)
एति = प्राप्त होता है।

[श्रीभगवान्‌के आश्रित होनेका फल भगवत्प्राप्ति।]

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥ १० ॥

वीतरागभयक्रोधाः, मन्मयाः, माम्, उपाश्रिताः,
बहवः, ज्ञानतपसा, पूताः, मद्भावम्, आगताः॥ १० ॥

---

* सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्दघन परमात्मा अज, अविनाशी और सर्वभूतोंके परमगति तथा परम आश्रय हैं, वे केवल धर्मको स्थापन करने और संसारका उद्धार करनेके लिये ही अपनी योगमायासे सगुणरूप होकर प्रकट होते हैं, इसलिये परमेश्वरके समान सुहृद्, प्रेमी और पतितपावन दूसरा कोई नहीं है, ऐसा समझकर जो पुरुष परमेश्वरका अनन्य प्रेमसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ आसक्तिरहित संसारमें बरतता है, वही उनको तत्त्वसे जानता है।

और हे अर्जुन! पहले भी—

वीतराग-भयक्रोधाः	= जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये थे (और)	**माम्**	= मेरे
		उपाश्रिताः	= आश्रित रहनेवाले
		बहवः	= बहुत-से भक्त (उपर्युक्त)
		ज्ञानतपसा	= ज्ञानरूप तपसे
मन्मयाः	= जो मुझमें अनन्य प्रेमपूर्वक स्थित रहते थे, (ऐसे)	**पूताः**	= पवित्र होकर
		मद्भावम्	= मेरे स्वरूपको
		आगताः	= प्राप्त हो चुके हैं।

[**श्रीभगवान्‌का अपना भजन करनेवालेको उसी प्रकार भजनेका कथन।**]

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ ११॥

ये, यथा, माम्, प्रपद्यन्ते, तान्, तथा, एव, भजामि, अहम्,
मम्, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः ॥ ११ ॥

क्योंकि—

पार्थ	= हे अर्जुन!	**भजामि**	= भजता हूँ; (क्योंकि)
ये	= जो भक्त		
माम्	= मुझे	**मनुष्याः**	= सभी मनुष्य
यथा	= जिस प्रकार	**सर्वशः**	= सब प्रकारसे
प्रपद्यन्ते	= भजते हैं,	**मम**	= मेरे (ही)
अहम्	= मैं (भी)	**वर्त्म**	= मार्गका
तान्	= उनको	**अनुवर्तन्ते**	= अनुसरण करते हैं।
तथा, एव	= उसी प्रकार		

[**देवताओंकी उपासनाका लौकिक फल शीघ्र प्राप्त होनेका कथन।**]

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥ १२॥

काङ्‌क्षन्तः, कर्मणाम्, सिद्धिम्, यजन्ते, इह, देवताः,
क्षिप्रम्, हि, मानुषे, लोके, सिद्धिः, भवति, कर्मजा ॥ १२ ॥

जो मुझे तत्त्वसे नहीं जानते हैं, वे—

इह = इस
मानुषे = मनुष्य-
लोके = लोकमें
कर्मणाम् = कर्मोंके
सिद्धिम् = फलको
काङ्‌क्षन्तः = चाहनेवाले (लोग)
देवताः = देवताओंका
यजन्ते = पूजन किया करते हैं;
हि = क्योंकि (उनको)
कर्मजा = कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली
सिद्धिः = सिद्धि
क्षिप्रम् = शीघ्र
भवति = मिल जाती है।

[चारों वर्णोंकी रचना करनेमें भगवान्‌के अकर्तापनका कथन।]

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥ १३ ॥

चातुर्वर्ण्यम्, मया, सृष्टम्, गुणकर्मविभागशः,
तस्य, कर्तारम्, अपि, माम्, विद्धि, अकर्तारम्, अव्ययम्॥ १३ ॥

तथा हे अर्जुन!—

चातुर्वर्ण्यम् = ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों-का समूह,
गुणकर्म-विभागशः = गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक
मया = मेरे द्वारा
सृष्टम् = रचा गया है। (इस प्रकार)
तस्य = उस (सृष्टिरचनादि-कर्म)-का
कर्तारम् = कर्ता होनेपर
अपि = भी
माम् = मुझ
अव्ययम् = अविनाशी परमेश्वरको (तू वास्तवमें)

अकर्तारम्	= अकर्ता (ही)	**विद्धि**	= जान।

[श्रीभगवान्‌के कर्मोंकी दिव्यता और उनके जाननेका फल।]

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥ १४॥

न, माम्, कर्माणि, लिम्पन्ति, न, मे, कर्मफले, स्पृहा,
इति, माम्, यः, अभिजानाति, कर्मभिः, न, सः, बध्यते॥ १४॥

क्योंकि—

कर्मफले	= कर्मोंके फलमें	**यः**	= जो
मे	= मेरी	**माम्**	= मुझे
स्पृहा	= स्पृहा	**अभिजानाति**	= तत्त्वसे जान लेता है,
न	= नहीं है, (इसलिये)		
माम्	= मुझे	**सः**	= वह (भी)
कर्माणि	= कर्म	**कर्मभिः**	= कर्मोंसे
न, लिम्पन्ति	= लिप्त नहीं करते—	**न**	= नहीं
इति	= इस प्रकार	**बध्यते**	= बँधता।

[पूर्वज मुमुक्षुओंकी भाँति निष्काम कर्म करनेके लिये आज्ञा।]

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥ १५॥

एवम्, ज्ञात्वा, कृतम्, कर्म, पूर्वैः, अपि, मुमुक्षुभिः,
कुरु, कर्म, एव, तस्मात्, त्वम्, पूर्वैः, पूर्वतरम्, कृतम्॥ १५॥

तथा—

पूर्वैः	= पूर्वकालके	**ज्ञात्वा**	= जानकर (ही)
मुमुक्षुभिः	= मुमुक्षुओंने	**कर्म**	= कर्म
अपि	= भी	**कृतम्**	= किये हैं।
एवम्	= इस प्रकार	**तस्मात्**	= इसलिये

त्वम् = तू (भी)
पूर्वैः = पूर्वजोंद्वारा
पूर्वतरम्, कृतम् = सदासे किये जानेवाले
कर्म = कर्मोंको
एव = ही
कुरु = कर

[**कर्म और अकर्मको तत्त्वसे जाननेका फल।**]

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥ १६॥

किम्, कर्म, किम्, अकर्म, इति, कवयः, अपि, अत्र, मोहिताः,
तत्, ते, कर्म, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात्॥ १६॥

परंतु—

कर्म = कर्म
किम् = क्या है ? (और)
अकर्म = अकर्म
किम् = क्या है ?—
इति = इस प्रकार (इसका)
अत्र = निर्णय करनेमें
कवयः = बुद्धिमान् पुरुष
अपि = भी
मोहिताः = मोहित हो जाते हैं। (इसलिये)
तत् = वह
कर्म = कर्म-तत्त्व (मैं)
ते = तुझे
प्रवक्ष्यामि = भलीभाँति समझाकर कहूँगा,
यत् = जिसे
ज्ञात्वा = जानकर (तू)
अशुभात् = अशुभसे अर्थात् कर्मबन्धनसे
मोक्ष्यसे = मुक्त हो जायगा।

[**कर्म, अकर्म और विकर्मके स्वरूपको जाननेके लिये प्रेरणा।**]

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥ १७॥

कर्मणः, हि, अपि, बोद्धव्यम्, बोद्धव्यम्, च, विकर्मणः,
अकर्मणः, च, बोद्धव्यम्, गहना, कर्मणः, गतिः॥ १७॥

कर्मणः	= कर्मका (स्वरूप)		**विकर्मणः**	= विकर्मका (स्वरूप भी)
अपि	= भी		**बोद्धव्यम्**	= जानना चाहिये;
बोद्धव्यम्	= जानना चाहिये		**हि**	= क्योंकि
च	= और		**कर्मणः**	= कर्मकी
अकर्मणः	= अकर्मका (स्वरूप भी)		**गतिः**	= गति
बोद्धव्यम्	= जानना चाहिये;		**गहना**	= गहन है।
च	= तथा			

[कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्मको तत्त्वसे जाननेका फल।]

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥ १८॥

कर्मणि, अकर्म, यः, पश्येत्, अकर्मणि, च, कर्म, यः,
सः, बुद्धिमान्, मनुष्येषु, सः, युक्तः, कृत्स्नकर्मकृत्॥ १८॥

यः	= जो मनुष्य		**सः**	= वह
कर्मणि	= कर्ममें		**मनुष्येषु**	= मनुष्योंमें
अकर्म	= अकर्म		**बुद्धिमान्**	= बुद्धिमान् है (और)
पश्येत्	= देखता है		**सः**	= वह
च	= और		**युक्तः**	= योगी
यः	= जो		**कृत्स्नकर्मकृत्**	= समस्त कर्मोंको करनेवाला है।
अकर्मणि	= अकर्ममें			
कर्म	= कर्म (देखता है),			

[कामना और संकल्परहित आचरणवाले ज्ञानीकी प्रशंसा।]

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥ १९॥

यस्य, सर्वे, समारम्भाः, कामसङ्कल्पवर्जिताः,
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम्, तम्, आहुः, पण्डितम्, बुधाः ॥ १९ ॥

और हे अर्जुन!—

यस्य	= जिसके		**ज्ञानाग्निदग्ध-कर्माणम्**	= जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं,
सर्वे	= सम्पूर्ण (शास्त्रसम्मत)		**तम्**	= उस महापुरुषको
समारम्भाः	= कर्म		**बुधाः**	= ज्ञानीजन (भी)
कामसङ्कल्प-वर्जिताः	= बिना कामना और संकल्पके होते हैं (तथा)		**पण्डितम्**	= पण्डित
			आहुः	= कहते हैं।

[फलासक्तिको त्यागकर कर्म करनेवालेकी प्रशंसा।]

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥ २० ॥

त्यक्त्वा, कर्मफलासङ्गम्, नित्यतृप्तः, निराश्रयः,
कर्मणि, अभिप्रवृत्तः, अपि, न, एव, किंचित्, करोति,सः ॥ २० ॥

और जो पुरुष—

कर्मफलासङ्गम्	= समस्त कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्तिका (सर्वथा)		**नित्यतृप्तः**	= परमात्मामें नित्य तृप्त है,
त्यक्त्वा	= त्याग करके		**सः**	= वह
निराश्रयः	= संसारके आश्रयसे रहित हो गया है (और)		**कर्मणि**	= कर्मोंमें
			अभिप्रवृत्तः	= भलीभाँति बरतता हुआ
			अपि	= भी (वास्तवमें)

किंचित्	=	कुछ
एव	=	भी
न	=	नहीं
करोति	=	करता।

[केवल शरीर-सम्बन्धी कर्म करते हुए संन्यासीको पाप न लगनेका कथन।]

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥ २१॥

निराशीः, यतचित्तात्मा, त्यक्तसर्वपरिग्रहः,
शारीरम्, केवलम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम्॥ २१॥

और—

यतचित्तात्मा	=	जिसका अन्तः-करण और इन्द्रियोंके सहित शरीर जीता हुआ है (और)
त्यक्तसर्वपरिग्रहः	=	जिसने समस्त भोगोंकी सामग्रीका परित्याग कर दिया है, (ऐसा)
निराशीः	=	आशारहित पुरुष
केवलम्	=	केवल
शारीरम्	=	शरीर-सम्बन्धी
कर्म	=	कर्म
कुर्वन्	=	करता हुआ (भी)
किल्बिषम्	=	पापको
न	=	नहीं
आप्नोति	=	प्राप्त होता।

[निष्काम कर्मयोगके साधकके लक्षण और कर्मोंसे न बँधनेका कथन।]

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥ २२॥

यदृच्छालाभसन्तुष्टः, द्वन्द्वातीतः, विमत्सरः,
समः, सिद्धौ, असिद्धौ, च, कृत्वा, अपि, न, निबध्यते॥ २२॥

और—

यदृच्छालाभ-सन्तुष्टः	=	जो बिना इच्छाके अपने-आप प्राप्त हुए पदार्थमें सदा संतुष्ट रहता है,
विमत्सरः	=	जिसमें ईर्ष्याका सर्वथा अभाव हो गया है,

द्वन्द्वातीतः	=	जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत हो गया है—(ऐसा)	**समः**	=	सम रहनेवाला कर्मयोगी (कर्म)
			कृत्वा	=	करता हुआ
सिद्धौ	=	सिद्धि	**अपि**	=	भी (उनसे)
च	=	और	**न**	=	नहीं
असिद्धौ	=	असिद्धिमें	**निबध्यते**	=	बँधता।

[**यज्ञार्थ कर्म करनेवाले ज्ञानीके सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जानेका कथन।**]

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥ २३॥

गतसङ्गस्य, मुक्तस्य, ज्ञानावस्थितचेतसः,
यज्ञाय, आचरतः, कर्म, समग्रम्, प्रविलीयते॥ २३॥

क्योंकि—

गतसङ्गस्य	=	जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो गयी है,	**यज्ञाय**	=	यज्ञसम्पादनके लिये (कर्म)
मुक्तस्य	=	जो देहाभिमान और ममतासे रहित हो गया है,	**आचरतः**	=	करनेवाले मनुष्यके
ज्ञानावस्थित-चेतसः	=	जिसका चित्त निरन्तर परमात्मा-के ज्ञानमें स्थित रहता है—(ऐसे केवल)	**समग्रम्**	=	सम्पूर्ण
			कर्म	=	कर्म
			प्रविलीयते	=	भलीभाँति विलीन हो जाते हैं।

[**ब्रह्म-यज्ञका कथन।**]

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥ २४॥

ब्रह्म, अर्पणम्, ब्रह्म, हविः, ब्रह्माग्नौ, ब्रह्मणा, हुतम्,
ब्रह्म, एव, तेन, गन्तव्यम्, ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

उन यज्ञके लिये आचरण करनेवाले पुरुषोंमेंसे कोई तो इस भावसे यज्ञ करते हैं कि—

अर्पणम् = (जिस यज्ञमें) अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि (भी)
ब्रह्म = ब्रह्म है (और)
हविः = हवन किये जाने योग्य द्रव्य (भी)
ब्रह्म = ब्रह्म है (तथा)
ब्रह्मणा = ब्रह्मरूप कर्ताके द्वारा
ब्रह्माग्नौ = ब्रह्मरूप अग्निमें
हुतम् = आहुति देनारूप क्रिया (भी ब्रह्म है)–
तेन = उस
ब्रह्मकर्मसमाधिना = ब्रह्मकर्ममें स्थित रहनेवाले योगीद्वारा
गन्तव्यम् = प्राप्त किये जानेयोग्य (फल भी)
ब्रह्म = ब्रह्म
एव = ही है।

[देव-यज्ञ और ज्ञान-यज्ञका कथन।]

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

दैवम्, एव, अपरे, यज्ञम्, योगिनः, पर्युपासते,
ब्रह्माग्नौ, अपरे, यज्ञम्, यज्ञेन, एव, उपजुह्वति ॥ २५ ॥

और—

अपरे = दूसरे
योगिनः = योगीजन
दैवम् = देवताओंके पूजनरूप
यज्ञम् = यज्ञका
एव = ही
पर्युपासते = भलीभाँति अनुष्ठान किया करते हैं

और
अपरे = अन्य (योगीजन)
ब्रह्माग्नौ = परब्रह्म परमात्मारूप अग्निमें (अभेददर्शनरूप)
यज्ञेन = यज्ञके द्वारा
एव = ही
यज्ञम् = आत्मरूप यज्ञका
उपजुह्वति = हवन* किया करते हैं।

[इन्द्रियसंयमरूप यज्ञ और विषयहवनरूप यज्ञका कथन।]

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥ २६॥

श्रोत्रादीनि, इन्द्रियाणि, अन्ये, संयमाग्निषु, जुह्वति,
शब्दादीन्, विषयान्, अन्ये, इन्द्रियाग्निषु, जुह्वति॥ २६॥

अन्ये = अन्य (योगीजन)
श्रोत्रादीनि = श्रोत्र आदि
इन्द्रियाणि = समस्त इन्द्रियोंको
संयमाग्निषु = संयमरूप अग्नियोंमें
जुह्वति = हवन किया करते हैं (और)
अन्ये = दूसरे (योगीलोग)
शब्दादीन् = शब्दादि
विषयान् = समस्त विषयोंको
इन्द्रियाग्निषु = इन्द्रियरूप अग्नियोंमें
जुह्वति = हवन किया करते हैं।

[अन्तःकरण-संयमरूप यज्ञ।]

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥ २७॥

सर्वाणि, इन्द्रियकर्माणि, प्राणकर्माणि, च, अपरे,
आत्मसंयमयोगाग्नौ, जुह्वति, ज्ञानदीपिते॥ २७॥

---

* परब्रह्म परमात्मामें ज्ञानद्वारा एकीभावसे स्थित होना ही ब्रह्मरूप अग्निमें यज्ञके द्वारा ''यज्ञका हवन'' करना है।

अपरे	= दूसरे (योगीजन)	**ज्ञानदीपिते**	= ज्ञानसे प्रकाशित
सर्वाणि, इन्द्रियकर्माणि	= इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंको	**आत्मसंयम-योगाग्नौ**	= आत्मसंयम-योगरूप अग्निमें
च	= और	**जुह्वति**	= हवन किया करते हैं* ।
प्राणकर्माणि	= प्राणोंकी समस्त क्रियाओंको		

[द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ और स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञका कथन।]

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥

द्रव्ययज्ञाः, तपोयज्ञाः, योगयज्ञाः, तथा, अपरे,
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः, च, यतयः, संशितव्रताः ॥ २८ ॥

अपरे	= कई पुरुष	**योगयज्ञाः**	= योगरूप यज्ञ करनेवाले हैं
द्रव्ययज्ञाः	= द्रव्य-सम्बन्धी यज्ञ करनेवाले हैं, (कितने ही)	**च**	= और (कितने ही)
तपोयज्ञाः	= तपस्यारूप यज्ञ करनेवाले हैं	**संशितव्रताः**	= अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त
तथा	= तथा (दूसरे कितने ही)	**यतयः**	= यत्नशील पुरुष
		स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः	= स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करनेवाले हैं।

[यज्ञरूपसे चतुर्विध प्राणायामका कथन और सब प्रकारके यज्ञ करनेवालोंकी प्रशंसा।]

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

---

* सच्चिदानन्दघन परमात्माके सिवा अन्य किसीका भी न चिन्तन करना ही उन सबका "हवन करना" है।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

अपाने, जुह्वति, प्राणम्, प्राणे, अपानम्, तथा, अपरे,
प्राणापानगती, रुद्ध्वा, प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

अपरे, नियताहाराः, प्राणान्, प्राणेषु, जुह्वति,
सर्वे, अपि, एते, यज्ञविदः, यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

और—

अपरे = दूसरे (कितने ही योगीजन)
अपाने = अपानवायुमें
प्राणम् = प्राणवायुको
जुह्वति = हवन करते हैं।
तथा = वैसे ही (अन्य योगीजन)
प्राणे = प्राणवायुमें
अपानम् = अपानवायुको (हवन करते हैं तथा)
अपरे = अन्य (कितने ही)
नियताहाराः = नियमित आहार* करनेवाले
प्राणायामपरायणाः = प्राणायामपरायण पुरुष
प्राणापानगती = प्राण और अपानकी गतिको
रुद्ध्वा = रोककर
प्राणान् = प्राणोंको
प्राणेषु = प्राणोंमें (ही)
जुह्वति = हवन किया करते हैं।
एते = ये
सर्वे, अपि = सभी (साधक)
यज्ञक्षपित-कल्मषाः = यज्ञोंद्वारा पापोंका नाश कर देनेवाले (और)
यज्ञविदः = यज्ञोंको जाननेवाले हैं।

* गीता अध्याय ६ श्लोक १७ में देखना चाहिये।

[यज्ञ करनेवालोंको सनातन ब्रह्मकी प्राप्तिका कथन और न करनेवालोंकी निन्दा।]

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥ ३१ ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजः, यान्ति, ब्रह्म, सनातनम्,
न, अयम्, लोकः, अस्ति, अयज्ञस्य, कुतः, अन्यः, कुरुसत्तम॥ ३१ ॥

और—

कुरुसत्तम	= हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन!	**अयज्ञस्य**	= यज्ञ न करनेवाले पुरुषके लिये (तो)
यज्ञशिष्टामृतभुजः	= यज्ञसे बचे हुए अमृतका अनुभव करनेवाले (योगीजन)	**अयम्**	= यह
सनातनम्	= सनातन	**लोकः**	= मनुष्यलोक भी (सुखदायक)
ब्रह्म	= परब्रह्म परमात्माको	**न**	= नहीं
		अस्ति	= है, (फिर)
		अन्यः	= परलोक
यान्ति	= प्राप्त होते हैं (और)	**कुतः**	= कैसे (सुखदायक हो सकता है) ?

[सभी यज्ञ क्रियाद्वारा सम्पादित होनेयोग्य बतलाना।]

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥ ३२ ॥

एवम्, बहुविधाः, यज्ञाः, वितताः, ब्रह्मणः, मुखे,
कर्मजान्, विद्धि, तान्, सर्वान्, एवम्, ज्ञात्वा, विमोक्ष्यसे॥ ३२ ॥

एवम्	= इस प्रकार (और भी)	**बहुविधाः**	= बहुत तरहके
		यज्ञाः	= यज्ञ

ब्रह्मणः	= वेदकी	**विद्धि**	= जान,
मुखे	= वाणीमें	**एवम्**	= इस प्रकार (तत्त्वसे)
वितताः	= विस्तारसे कहे गये हैं।	**ज्ञात्वा**	= जानकर (उनके अनुष्ठान-द्वारा तू कर्मबन्धनसे सर्वथा)
तान्	= उन	**विमोक्ष्यसे**	= मुक्त हो जायगा।
सर्वान्	= सबको (तू)		
कर्मजान्	= मन, इन्द्रिय और शरीरकी क्रिया-द्वारा सम्पन्न होनेवाले		

[द्रव्ययज्ञकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञके श्रेष्ठत्वका कथन।]

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥ ३३॥

श्रेयान्, द्रव्यमयात्, यज्ञात्, ज्ञानयज्ञः, परन्तप,
सर्वम्, कर्म, अखिलम्, पार्थ, ज्ञाने, परिसमाप्यते॥ ३३॥

और—

परन्तप, पार्थ	= हे परंतप अर्जुन!	**अखिलम्**	= यावन्मात्र
द्रव्यमयात्	= द्रव्यमय	**सर्वम्**	= सम्पूर्ण
यज्ञात्	= यज्ञकी अपेक्षा	**कर्म**	= कर्म
ज्ञानयज्ञः	= ज्ञानयज्ञ	**ज्ञाने**	= ज्ञानमें
श्रेयान्	= अत्यन्त श्रेष्ठ है (तथा)	**परिसमाप्यते**	= समाप्त हो जाते हैं।

[तत्त्वज्ञान-हेतु ज्ञानवानोंकी शरण जानेका कथन।]

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ ३४॥

तत्, विद्धि, प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया,
उपदेक्ष्यन्ति, ते, ज्ञानम्, ज्ञानिनः, तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

तत्	=	उस ज्ञानको (तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर)	**परिप्रश्नेन**	=	सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे
विद्धि	=	समझ, (उनको)	**ते**	=	वे
प्रणिपातेन	=	भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करनेसे, (उनकी)	**तत्त्वदर्शिनः**	=	परमात्मतत्त्व-को भली-भाँति जाननेवाले
सेवया	=	सेवा करनेसे और कपट छोड़कर	**ज्ञानिनः**	=	ज्ञानी महात्मा (तुझे उस)
			ज्ञानम्	=	तत्त्वज्ञानका
			उपदेक्ष्यन्ति	=	उपदेश करेंगे—

[तत्त्वज्ञानका फल।]

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥ ३५ ॥

यत्, ज्ञात्वा, न, पुनः, मोहम्, एवम्, यास्यसि, पाण्डव,
येन, भूतानि, अशेषेण, द्रक्ष्यसि, आत्मनि, अथो, मयि॥ ३५ ॥

कि—

यत्	=	जिसको	**न**	=	नहीं
ज्ञात्वा	=	जानकर	**यास्यसि**	=	प्राप्त होगा (तथा)
पुनः	=	फिर (तू)	**पाण्डव**	=	हे अर्जुन!
एवम्	=	इस प्रकार	**येन**	=	जिस ज्ञानके द्वारा (तू)
मोहम्	=	मोहको			

भूतानि	= सम्पूर्ण भूतोंको	**मयि**	= मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें
अशेषेण	= निःशेष भावसे (पहले)		
आत्मनि	= अपनेमें[1] (और)		
अथो	= पीछे	**द्रक्ष्यसि**	= देखेगा[2] ।

[ज्ञानरूप नौकाद्वारा अतिशय पापीका उद्धार।]

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥ ३६ ॥

अपि, चेत्, असि, पापेभ्यः, सर्वेभ्यः, पापकृत्तमः,
सर्वम्, ज्ञानप्लवेन, एव, वृजिनम्, सन्तरिष्यसि ॥ ३६ ॥

चेत्	= यदि (तू अन्य)	**ज्ञानप्लवेन**	= ज्ञानरूप नौकाद्वारा
सर्वेभ्यः	= सब	**एव**	= निःसन्देह
पापेभ्यः	= पापियोंसे	**सर्वम्**	= सम्पूर्ण
अपि	= भी	**वृजिनम्**	= पाप–समुद्रसे
पापकृत्तमः	= अधिक पाप करनेवाला	**सन्तरिष्यसि**	= भलीभाँति तर जायगा।
असि	= है, (तो भी तू)		

[ज्ञानको अग्निकी भाँति कर्मोंको भस्म करनेवाला बतलाना।]

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

यथा, एधांसि, समिद्धः, अग्निः, भस्मसात्, कुरुते, अर्जुन,
ज्ञानाग्निः, सर्वकर्माणि, भस्मसात्, कुरुते, तथा ॥ ३७ ॥

१– गीता अध्याय ६ श्लोक २९ में देखना चाहिये।

२– गीता अध्याय ६ श्लोक ३० में देखना चाहिये।

क्योंकि—

अर्जुन	= हे अर्जुन!	**कुरुते**	= कर देता है,
यथा	= जैसे	**तथा**	= वैसे ही
समिद्धः	= प्रज्वलित	**ज्ञानाग्निः**	= ज्ञानरूप अग्नि
अग्निः	= अग्नि	**सर्वकर्माणि**	= सम्पूर्ण कर्मोंको
एधांसि	= ईंधनोंको	**भस्मसात्**	= भस्ममय
भस्मसात्	= भस्ममय	**कुरुते**	= कर देता है।

[ज्ञानकी अतिशय पवित्रता और शुद्धान्तःकरण कर्मयोगीको अपने-आप तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति।]

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥ ३८॥

न, हि, ज्ञानेन, सदृशम्, पवित्रम्, इह, विद्यते,
तत्, स्वयम्, योगसंसिद्धः, कालेन, आत्मनि, विन्दति॥ ३८॥

इसलिये—

इह	= इस संसारमें	**कालेन**	= कितने ही कालसे
ज्ञानेन	= ज्ञानके	**योगसंसिद्धः**	= कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य
सदृशम्	= समान		
पवित्रम्	= पवित्र करनेवाला		
हि	= निःसन्देह (कुछ भी)	**स्वयम्**	= अपने-आप (ही)
न	= नहीं		
विद्यते	= है।	**आत्मनि**	= आत्मामें
तत्	= उस ज्ञानको	**विन्दति**	= पा लेता है।

[ज्ञानके पात्रका और ज्ञानसे परम-शान्तिकी प्राप्तिका कथन।]

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ ३९॥

श्रद्धावान्, लभते, ज्ञानम्, तत्परः, संयतेन्द्रियः,
ज्ञानम्, लब्ध्वा, पराम्, शान्तिम्, अचिरेण, अधिगच्छति ॥ ३९ ॥

और हे अर्जुन!—

संयतेन्द्रियः = जितेन्द्रिय,		**लब्ध्वा** = प्राप्त होकर (वह)	
तत्परः = साधनपरायण (और)		**अचिरेण** = बिना विलम्बके—तत्काल ही (भगवत्प्राप्तिरूप)	
श्रद्धावान् = श्रद्धावान् मनुष्य			
ज्ञानम् = ज्ञानको			
लभते = प्राप्त होता है (तथा)		**पराम्** = परम	
		शान्तिम् = शान्तिको	
ज्ञानम् = ज्ञानको		**अधिगच्छति** = प्राप्त हो जाता है।	

[अज्ञ और संशयात्मा अश्रद्धालु पुरुषकी निन्दा।]

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥

अज्ञः, च, अश्रद्दधानः, च, संशयात्मा, विनश्यति,
न, अयम्, लोकः, अस्ति, न, परः, न, सुखम्, संशयात्मनः ॥ ४० ॥

और हे अर्जुन!—

अज्ञः = विवेकहीन	**न** = न
च = और	**अयम्** = यह
अश्रद्दधानः = श्रद्धारहित	**लोकः** = लोक
संशयात्मा = संशययुक्त मनुष्य	**अस्ति** = है,
विनश्यति = परमार्थसे अवश्य भ्रष्ट हो जाता है (ऐसे)	**न** = न
	परः = परलोक है
	च = और
संशयात्मनः = संशययुक्त मनुष्यके लिये	**न** = न
	सुखम् = सुख (ही है)।

[संशयरहित निष्काम कर्मयोगीकी कर्मबन्धनसे मुक्ति।]

योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय॥ ४१ ॥

योगसन्न्यस्तकर्माणम्, ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्,
आत्मवन्तम्, न, कर्माणि, निबध्नन्ति, धनञ्जय॥ ४१ ॥

और—

धनञ्जय	= हे धनंजय!		(ऐसे)
योगसन्न्यस्तकर्माणम्	= जिसने कर्मयोगकी विधिसे समस्त कर्मोंका परमात्मामें अर्पण कर दिया है (और)	**आत्मवन्तम्**	= वशमें किये हुए अन्तःकरणवाले पुरुषको
ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्	= जिसने विवेकद्वारा समस्त संशयोंका नाश कर दिया है,	**कर्माणि**	= कर्म
		न	= नहीं
		निबध्नन्ति	= बाँधते।

[निष्काम कर्मयोगमें स्थित होकर युद्ध करनेके लिये आज्ञा]

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥ ४२ ॥

तस्मात्, अज्ञानसम्भूतम्, हृत्स्थम्, ज्ञानासिना, आत्मनः,
छित्त्वा, एनम्, संशयम्, योगम्, आतिष्ठ, उत्तिष्ठ, भारत॥ ४२ ॥

तस्मात्	= इसलिये	**अज्ञानसम्भूतम्**	= अज्ञानजनित
भारत	= हे भरतवंशी अर्जुन! (तू)	**आत्मनः**	= अपने
हृत्स्थम्	= हृदयमें स्थित	**संशयम्**	= संशयका
एनम्	= इस	**ज्ञानासिना**	= विवेकज्ञानरूप तलवारद्वारा

छित्त्वा	= छेदन करके	**आतिष्ठ**	= स्थित हो जा (और युद्धके लिये)
योगम्	= समत्वरूप कर्मयोगमें	**उत्तिष्ठ**	= खड़ा हो जा।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

हरिः ॐ तत्सत्   **हरिः ॐ तत्सत्**   **हरिः ॐ तत्सत्**

❖❖❖

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

प्रधान-विषय—*१ से ६ तक सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोगका निर्णय, (७—१२) सांख्ययोगी और निष्काम कर्मयोगीके लक्षण और उनकी महिमा, (१३—२६) ज्ञानयोगका विषय, (२७—२९) भक्तिसहित ध्यानयोगका वर्णन।*

[सांख्ययोग और कर्मयोगकी श्रेष्ठताके सम्बन्धमें अर्जुनका प्रश्न।]

अर्जुन उवाच

सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥ १॥

सन्न्यासम्, कर्मणाम्, कृष्ण, पुनः, योगम्, च, शंससि,
यत्, श्रेयः, एतयोः, एकम्, तत्, मे, ब्रूहि, सुनिश्चितम्॥ १॥

तत्पश्चात् अर्जुन बोले—

कृष्ण = हे कृष्ण! (आप)
कर्मणाम् = कर्मोंके
सन्न्यासम् = संन्यासकी
च = और
पुनः = फिर
योगम् = कर्मयोगकी
शंससि = { प्रशंसा करते हैं। (इसलिये)
एतयोः = इन दोनोंमेंसे

यत् = जो
एकम् = एक
मे = मेरे लिये
सुनिश्चितम् = भलीभाँति निश्चित
श्रेयः = { कल्याणकारक साधन (हो),
तत् = उसको
ब्रूहि = कहिये।

[कर्मसंन्यासकी अपेक्षा निष्काम-कर्मयोगकी श्रेष्ठताका कथन।]

श्रीभगवानुवाच

सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते॥ २॥

सन्न्यासः, कर्मयोगः, च, निःश्रेयसकरौ, उभौ,
तयोः, तु, कर्मसन्न्यासात्, कर्मयोगः, विशिष्यते॥ २॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन!—

सन्न्यासः = कर्मसंन्यास[1]		**तु** = परंतु	
च = और		**तयोः** = उन दोनोंमें (भी)	
कर्मयोगः = कर्मयोग[2] (ये)		**कर्मसन्न्यासात्** = कर्मसंन्याससे	
उभौ = दोनों (ही)		**कर्मयोगः** = कर्मयोग (साधनमें सुगम होनेसे)	
निःश्रेयसकरौ = परम कल्याणके करनेवाले हैं,		**विशिष्यते** = श्रेष्ठ है।	

[कर्मयोगका महत्त्व।]

ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥ ३॥

ज्ञेयः, सः, नित्यसन्न्यासी, यः, न, द्वेष्टि, न, काङ्क्षति,
निर्द्वन्द्वः, हि, महाबाहो, सुखम्, बन्धात्, प्रमुच्यते॥ ३॥

इसलिये—

महाबाहो = हे अर्जुन!	**द्वेष्टि** = द्वेष करता है (और)
यः = जो पुरुष	**न** = न (किसीकी)
न = न (किसीसे)	

१-अर्थात् मन, इन्द्रियों और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग।

२-अर्थात् समत्वबुद्धिसे भगवदर्थ कर्मोंका करना।

काङ्क्षति	= आकांक्षा करता है,	**निर्द्वन्द्वः**	= राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित (पुरुष)
सः	= वह कर्मयोगी	**सुखम्**	= सुखपूर्वक
नित्यसन्न्यासी	= सदा संन्यासी (ही)	**बन्धात्**	= संसारबन्धनसे
ज्ञेयः	= समझनेयोग्य है;		
हि	= क्योंकि	**प्रमुच्यते**	= मुक्त हो जाता है।

[फलमें सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोगकी एकता।]

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥ ४॥

साङ्ख्ययोगौ, पृथक्, बालाः, प्रवदन्ति, न, पण्डिताः,
एकम्, अपि, आस्थितः, सम्यक्, उभयोः, विन्दते, फलम्॥ ४॥

और हे अर्जुन! उपर्युक्त—

साङ्ख्ययोगौ	= संन्यास और कर्मयोगको	**एकम्**	= एकमें
		अपि	= भी
बालाः	= मूर्खलोग	**सम्यक्** **आस्थितः**	= सम्यक् प्रकारसे स्थित (पुरुष)
पृथक्	= पृथक्-पृथक् (फल देनेवाले)		
प्रवदन्ति	= कहते हैं	**उभयोः**	= दोनोंके
न	= न (कि)	**फलम्**	= फलरूप (परमात्माको)
पण्डिताः	= पण्डितजन		
(हि)	= क्योंकि (दोनोंमेंसे)	**विन्दते**	= प्राप्त होता है।

यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥ ५॥

यत्, साङ्ख्यैः, प्राप्यते, स्थानम्, तत्, योगैः, अपि, गम्यते,
एकम्, साङ्ख्यम्, च, योगम्, च, यः, पश्यति, सः, पश्यति॥ ५॥

तथा—

साङ्ख्यैः	=	ज्ञानयोगियोंद्वारा	**यः**	=	जो पुरुष
यत्	=	जो	**साङ्ख्यम्**	=	ज्ञानयोग
स्थानम्	=	परमधाम	**च**	=	और
प्राप्यते	=	प्राप्त किया जाता है,	**योगम्**	=	कर्मयोगको (फलरूपमें)
योगैः	=	कर्मयोगियोंद्वारा			
अपि	=	भी	**एकम्**	=	एक
तत्	=	वही	**पश्यति**	=	देखता है;
गम्यते	=	प्राप्त किया जाता है। (इसलिये)	**सः, च**	=	वही (यथार्थ)
			पश्यति	=	देखता है।

[कर्मयोगके बिना सांख्ययोगके साधनमें कठिनताका कथन।]

सन्न्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति॥ ६॥

सन्न्यासः, तु, महाबाहो, दुःखम्, आप्तुम्, अयोगतः,
योगयुक्तः, मुनिः, ब्रह्म, नचिरेण, अधिगच्छति॥ ६॥

तु	=	परंतु	**आप्तुम्**	=	प्राप्त होना
महाबाहो	=	हे अर्जुन!	**दुःखम्**	=	कठिन है (और)
अयोगतः	=	कर्मयोगके बिना	**मुनिः**	=	भगवत्स्वरूपको मनन करनेवाला
सन्न्यासः	=	संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग	**योगयुक्तः**	=	कर्मयोगी
			ब्रह्म	=	परब्रह्म परमात्माको
			नचिरेण	=	शीघ्र ही
			अधिगच्छति	=	प्राप्त हो जाता है।

[कर्मयोगीकी निर्लिप्तताका प्रतिपादन।]

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥ ७॥

योगयुक्तः, विशुद्धात्मा, विजितात्मा, जितेन्द्रियः,
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्, अपि, न, लिप्यते ॥ ७ ॥

तथा—

विजितात्मा = जिसका मन अपने वशमें है,

जितेन्द्रियः = जो जितेन्द्रिय (एवम्)

विशुद्धात्मा = विशुद्ध अन्तः-करणवाला है (और)

सर्वभूतात्मभूतात्मा = सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है (ऐसा)

योगयुक्तः = कर्मयोगी (कर्म)

कुर्वन् = करता हुआ

अपि = भी

न, लिप्यते = लिप्त नहीं होता।

[सांख्ययोगीके अकर्तापनका निर्देश।]

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥ ८ ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्॥ ९ ॥

न, एव, किञ्चित्, करोमि, इति, युक्तः, मन्येत, तत्त्ववित्, पश्यन्, शृण्वन्, स्पृशन्, जिघ्रन्, अश्नन्, गच्छन्, स्वपन्, श्वसन्, प्रलपन्, विसृजन्, गृह्णन्, उन्मिषन्, निमिषन्, अपि, इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेषु, वर्तन्ते, इति, धारयन् ॥ ८-९ ॥

और हे अर्जुन!—

तत्त्ववित् = तत्त्वको जाननेवाला

युक्तः = सांख्ययोगी (तो)

पश्यन् = देखता हुआ,

शृण्वन् = सुनता हुआ,

स्पृशन् = स्पर्श करता हुआ,

जिघ्रन् = सूँघता हुआ,

अश्नन् = भोजन करता हुआ,

गच्छन्	= गमन करता हुआ,	**इन्द्रियाणि**	= सब इन्द्रियाँ
स्वपन्	= सोता हुआ,	**इन्द्रियार्थेषु**	= अपने-अपने अर्थोंमें
श्वसन्	= श्वास लेता हुआ,	**वर्तन्ते**	= बरत रही हैं—
प्रलपन्	= बोलता हुआ,	**इति**	= इस प्रकार
विसृजन्	= त्यागता हुआ,	**धारयन्**	= समझकर
गृह्णन्	= { ग्रहण करता हुआ (तथा)	**एव**	= निःसन्देह
		इति	= ऐसा
उन्मिषन्	= { आँखोंको खोलता (और)	**मन्येत**	= माने (कि मैं)
		किंचित्	= कुछ भी
निमिषन्	= मूँदता हुआ	**न**	= नहीं
अपि	= भी,	**करोमि**	= करता हूँ।

[भगवदर्पण बुद्धिसे कर्म करनेवालेकी और कर्मप्रधान कर्मयोगीकी प्रशंसा करके कर्मयोगियोंके कर्मोंको आत्मशुद्धिमें हेतु बतलाना।]

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ १०॥

ब्रह्मणि, आधाय, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, करोति, यः, लिप्यते, न, सः, पापेन, पद्मपत्रम्, इव, अम्भसा॥ १०॥

परंतु हे अर्जुन! देहाभिमानियोंद्वारा यह साधन होना कठिन है और निष्काम कर्मयोग सुगम है; क्योंकि—

यः	= जो पुरुष	**करोति**	= करता है,
कर्माणि	= सब कर्मोंको	**सः**	= वह पुरुष
ब्रह्मणि	= परमात्मामें	**अम्भसा**	= जलसे
आधाय	= { अर्पण करके (और)	**पद्मपत्रम्**	= कमलके पत्तेकी
		इव	= भाँति
सङ्गम्	= आसक्तिको	**पापेन**	= पापसे
त्यक्त्वा	= त्यागकर (कर्म)	**न, लिप्यते**	= लिप्त नहीं होता।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥ ११॥

कायेन, मनसा, बुद्ध्या, केवलैः, इन्द्रियैः, अपि,
योगिनः, कर्म, कुर्वन्ति, सङ्गम्, त्यक्त्वा, आत्मशुद्धये॥ ११॥

इसलिये—

योगिनः	= कर्मयोगी (ममत्वबुद्धिरहित)	**अपि**	= भी
		सङ्गम्	= आसक्तिको
केवलैः	= केवल	**त्यक्त्वा**	= त्यागकर
इन्द्रियैः	= इन्द्रिय,	**आत्मशुद्धये**	= अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये
मनसा	= मन,		
बुद्ध्या	= बुद्धि (और)	**कर्म**	= कर्म
कायेन	= शरीरद्वारा	**कुर्वन्ति**	= करते हैं।

[कर्मफलके त्यागसे शान्ति और कामनासे बन्धन।]

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥ १२॥

युक्तः, कर्मफलम्, त्यक्त्वा, शान्तिम्, आप्नोति, नैष्ठिकीम्,
अयुक्तः, कामकारेण, फले, सक्तः, निबध्यते॥ १२॥

इसीसे—

युक्तः	= कर्मयोगी	**अयुक्तः**	= सकामपुरुष
कर्मफलम्	= कर्मोंके फलका	**कामकारेण**	= कामनाकी प्रेरणासे
त्यक्त्वा	= त्याग करके		
नैष्ठिकीम्	= भगवत्प्राप्तिरूप		
शान्तिम्	= शान्तिको	**फले**	= फलमें
आप्नोति	= प्राप्त होता है (और)	**सक्तः**	= आसक्त होकर
		निबध्यते	= बँधता है।

[सांख्ययोगीकी स्थितिका कथन।]

सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥ १३॥

सर्वकर्माणि, मनसा, सन्न्यस्य, आस्ते, सुखम्, वशी,
नवद्वारे, पुरे, देही, न, एव, कुर्वन्, न, कारयन्॥ १३॥

और हे अर्जुन!—

वशी	= अन्तःकरण जिसके वशमें है, ऐसा सांख्य-योगका आचरण करनेवाला	**नवद्वारे**	= नवद्वारोंवाले शरीररूप
देही	= पुरुष	**पुरे**	= घरमें
न	= न	**सर्वकर्माणि**	= सब कर्मोंको
कुर्वन्	= करता हुआ (और)	**मनसा**	= मनसे
न	= न	**सन्न्यस्य**	= त्यागकर
कारयन्	= करवाता हुआ	**सुखम्**	= आनन्दपूर्वक (सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें)
एव	= ही	**आस्ते**	= स्थित रहता है।

[परमात्मामें कर्तापनके अभावका कथन।]

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥ १४॥

न, कर्तृत्वम्, न, कर्माणि, लोकस्य, सृजति, प्रभुः,
न, कर्मफलसंयोगम्, स्वभावः, तु, प्रवर्तते॥ १४॥

और—

प्रभुः	= परमेश्वर	**न**	= न (तो)
लोकस्य	= मनुष्योंके	**कर्तृत्वम्**	= कर्तापनकी,

न	= न	**सृजति**	= रचना करते हैं,
कर्माणि	= कर्मोंकी (और)	**तु**	= किंतु
न	= न		
कर्मफलसंयोगम्	= कर्मफलके संयोगकी (ही)	**स्वभावः**	= स्वभाव (ही)
		प्रवर्तते	= बरत रहा है।

[परमात्मा किसीके पाप-पुण्यको ग्रहण नहीं करता, इस विषयमें कथन।]

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥ १५॥

न, आदत्ते, कस्यचित्, पापम्, न, च, एव, सुकृतम्, विभुः, अज्ञानेन, आवृतम्, ज्ञानम्, तेन, मुह्यन्ति, जन्तवः॥ १५॥

और—

विभुः	= सर्वव्यापी परमेश्वर (भी)	**आदत्ते**	= ग्रहण करता है; (किंतु)
न	= न	**अज्ञानेन**	= अज्ञानके द्वारा
कस्यचित्	= किसीके	**ज्ञानम्**	= ज्ञान
पापम्	= पापकर्मको	**आवृतम्**	= ढका हुआ है,
च	= और	**तेन**	= उसीसे
न	= न (किसीके)	**जन्तवः**	= सब अज्ञानी मनुष्य
सुकृतम्	= शुभकर्मको		
एव	= ही	**मुह्यन्ति**	= मोहित हो रहे हैं।

[सूर्यके दृष्टान्तसे ज्ञानकी महिमा।]

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥ १६॥

ज्ञानेन, तु, तत्, अज्ञानम्, येषाम्, नाशितम्, आत्मनः, तेषाम्, आदित्यवत्, ज्ञानम्, प्रकाशयति, तत्परम्॥ १६॥

तु	= परंतु	**तेषाम्**	= उनका (वह)
येषाम्	= जिनका	**ज्ञानम्**	= ज्ञान
तत्	= वह	**आदित्यवत्**	= सूर्यके सदृश
अज्ञानम्	= अज्ञान	**तत्परम्**	= उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको
आत्मनः	= परमात्माके	**प्रकाशयति**	= प्रकाशित कर देता है*।
ज्ञानेन	= तत्त्वज्ञानद्वारा		
नाशितम्	= नष्ट कर दिया गया है,		

[ज्ञानयोगके एकान्त साधनका कथन।]

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

तद्बुद्धयः, तदात्मानः, तन्निष्ठाः, तत्परायणाः, गच्छन्ति, अपुनरावृत्तिम्, ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

और हे अर्जुन!—

तदात्मानः	= जिनका मन तद्रूप हो रहा है,	**तत्परायणाः**	= तत्परायण पुरुष
तद्बुद्धयः	= जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है (और)	**ज्ञाननिर्धूत-कल्मषाः**	= ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर
तन्निष्ठाः	= सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही जिनकी निरन्तर एकीभावसे स्थिति है, (ऐसे)	**अपुनरावृत्तिम्**	= अपुनरावृत्तिको अर्थात् परम गतिको
		गच्छन्ति	= प्राप्त होते हैं।

* अर्थात् परमात्माके स्वरूपको साक्षात् कराता है।

[ज्ञानी महापुरुषोंकी समदृष्टि और स्थितिका तथा उनको परमगति प्राप्त होनेका कथन।]

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे, गवि, हस्तिनि, शुनि, च, एव, श्वपाके, च, पण्डिताः, समदर्शिनः ॥ १८ ॥

ऐसे वे—

पण्डिताः	= ज्ञानीजन	**हस्तिनि**	= हाथी,
विद्याविनय-सम्पन्ने	= विद्या और विनययुक्त	**शुनि**	= कुत्ते
		च	= और
ब्राह्मणे	= ब्राह्मणमें	**श्वपाके**	= चाण्डालमें (भी)
च	= तथा	**समदर्शिनः**	= समदर्शी[1]
गवि	= गौ,	**एव**	= ही (होते हैं)।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ १९ ॥

इह, एव, तैः, जितः, सर्गः, येषाम्, साम्ये, स्थितम्, मनः, निर्दोषम्, हि, समम्, ब्रह्म, तस्मात्, ब्रह्मणि, ते, स्थिताः ॥ १९ ॥

इसलिये—

येषाम्	= जिनका	**इह**	= इस जीवित अवस्थामें
मनः	= मन		
साम्ये	= समभावमें	**एव**	= ही
स्थितम्	= स्थित है,	**सर्गः**	= सम्पूर्ण संसार
तैः	= उनके द्वारा	**जितः**	= जीत लिया गया है;[2]

१-इसका विस्तार गीता ६। ३२ की टिप्पणीमें देखना चाहिये।

२-अर्थात् वे जीते हुए ही संसारसे मुक्त हैं।

हि = क्योंकि
ब्रह्म = सच्चिदानन्दघन परमात्मा
निर्दोषम् = निर्दोष (और)
समम् = सम है,
तस्मात् = इससे
ते = वे
ब्रह्मणि = सच्चिदानन्दघन परमात्मामें (ही)
स्थिताः = स्थित हैं।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः॥ २०॥

न, प्रहृष्येत्, प्रियम्, प्राप्य, न, उद्विजेत्, प्राप्य, च, अप्रियम्,
स्थिरबुद्धिः, असम्मूढः, ब्रह्मवित्, ब्रह्मणि, स्थितः॥ २०॥

और जो पुरुष—

प्रियम् = प्रियको
प्राप्य = प्राप्त होकर
न प्रहृष्येत् = हर्षित नहीं हो
च = और
अप्रियम् = अप्रियको
प्राप्य = प्राप्त होकर
न, उद्विजेत् = उद्विग्न न हो, (वह)
स्थिरबुद्धिः = स्थिरबुद्धि
असम्मूढः = संशयरहित
ब्रह्मवित् = ब्रह्मवेत्ता पुरुष
ब्रह्मणि = सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मामें (एकीभावसे नित्य)
स्थितः = स्थित है।

[अक्षय आनन्दकी प्राप्तिका साधन और उसकी प्राप्ति।]

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते॥ २१॥

बाह्यस्पर्शेषु, असक्तात्मा, विन्दति, आत्मनि, यत्, सुखम्,
सः, ब्रह्मयोगयुक्तात्मा, सुखम्, अक्षयम्, अश्नुते॥ २१॥

और—

बाह्यस्पर्शेषु = बाहरके विषयोंमें
असक्तात्मा = आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला
(साधक)
आत्मनि = आत्मामें (स्थित)

यत्	= जो (ध्यानजनित सात्त्विक)	**ब्रह्मयोगयुक्तात्मा**	= सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके ध्यानरूप योगमें अभिन्नभावसे स्थित पुरुष
सुखम्	= आनन्द है;	**अक्षयम्**	= अक्षय
(तत्)	= उसको	**सुखम्**	= आनन्दका
विन्दति	= प्राप्त होता है; (तदनन्तर)	**अश्नुते**	= अनुभव करता है।
सः	= वह		

[विषय-भोगोंकी निन्दा।]

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ २२॥

ये, हि, संस्पर्शजाः, भोगाः, दुःखयोनयः, एव, ते,
आद्यन्तवन्तः, कौन्तेय, न, तेषु, रमते, बुधः॥ २२॥

और—

ये	= जो (ये) इन्द्रिय तथा	**दुःखयोनयः, एव**	= दुःखके ही हेतु हैं (और)
संस्पर्शजाः	= विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले	**आद्यन्तवन्तः**	= आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। (इसलिये)
भोगाः	= सब भोग हैं,	**कौन्तेय**	= हे अर्जुन!
ते	= वे (यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी)	**बुधः**	= बुद्धिमान् विवेकी पुरुष
		तेषु	= उनमें
		न	= नहीं
हि	= निःसन्देह	**रमते**	= रमता।

[काम-क्रोधके वेगको सहन कर सकनेवाले पुरुषको योगी और सुखी बतलाना।]

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥ २३॥

शक्नोति, इह, एव, यः, सोढुम्, प्राक्, शरीरविमोक्षणात्, कामक्रोधोद्भवम्, वेगम्, सः, युक्तः, सः, सुखी, नरः॥ २३॥

यः	=	जो साधक	**वेगम्**	=	वेगको
इह	=	इस मनुष्य-शरीरमें,	**सोढुम्**	=	सहन करनेमें
शरीरविमोक्षणात्	=	शरीरका नाश होनेसे	**शक्नोति**	=	समर्थ हो जाता है,
प्राक्	=	पहले-पहले	**सः**	=	वही
एव	=	ही	**नरः**	=	पुरुष
कामक्रोधोद्भवम्	=	काम-क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले	**युक्तः**	=	योगी है (और)
			सः	=	वही
			सुखी	=	सुखी है।

[सांख्ययोगीकी अन्तिम स्थिति और निर्वाणब्रह्मको प्राप्त ज्ञानी महापुरुषोंके लक्षण।]

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥ २४॥

यः, अन्तःसुखः, अन्तरारामः, तथा, अन्तर्ज्योतिः,एव, यः, सः, योगी, ब्रह्मनिर्वाणम्, ब्रह्मभूतः, अधिगच्छति॥ २४॥

यः	=	जो पुरुष	**तथा**	=	तथा
एव	=	निश्चय करके	**यः**	=	जो
अन्तःसुखः	=	अन्तरात्मामें ही सुखवाला है,	**अन्तर्ज्योतिः**	=	आत्मामें ही ज्ञानवाला है,
अन्तरारामः	=	आत्मामें ही रमण करनेवाला है	**सः**	=	वह

ब्रह्मभूतः = सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभाव-को प्राप्त | **योगी** = सांख्ययोगी
ब्रह्मनिर्वाणम् = शान्त ब्रह्मको
अधिगच्छति = प्राप्त होता है।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥ २५॥

लभन्ते, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋषयः, क्षीणकल्मषाः,
छिन्नद्वैधाः, यतात्मानः, सर्वभूतहिते, रताः॥ २५॥

और—

क्षीणकल्मषाः = जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं,
छिन्नद्वैधाः = जिनके सब संशय ज्ञानके द्वारा निवृत्त हो गये हैं,
सर्वभूतहिते = जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें
रताः = रत हैं (और)
यतात्मानः = जिनका जीता हुआ मन निश्चलभावसे परमात्मामें स्थित है, (वे)
ऋषयः = ब्रह्मवेत्ता पुरुष
ब्रह्मनिर्वाणम् = शान्त ब्रह्मको
लभन्ते = प्राप्त होते हैं।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥ २६॥

कामक्रोधवियुक्तानाम्, यतीनाम्, यतचेतसाम्,
अभितः, ब्रह्मनिर्वाणम्, वर्तते, विदितात्मनाम्॥ २६॥

और—

कामक्रोध-वियुक्तानाम् = काम-क्रोधसे रहित,
यतचेतसाम् = जीते हुए चित्तवाले,

विदितात्मनाम् = परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार किये हुए
यतीनाम् = ज्ञानी पुरुषोंके लिये
अभितः = सब ओरसे
ब्रह्मनिर्वाणम् = शान्त परब्रह्म परमात्मा (ही)
वर्तते = परिपूर्ण हैं।

[फलसहित ध्यानयोगका संक्षिप्त वर्णन।]

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७ ॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

स्पर्शान्, कृत्वा, बहिः, बाह्यान्, चक्षुः, च, एव, अन्तरे, भ्रुवोः,
प्राणापानौ, समौ, कृत्वा, नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७ ॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिः, मुनिः, मोक्षपरायणः,
विगतेच्छाभयक्रोधः, यः, सदा, मुक्तः, एव, सः ॥ २८ ॥

और हे अर्जुन!—

बाह्यान् = बाहरके
स्पर्शान् = विषयभोगोंको (न चिन्तन करता हुआ)
बहिः = बाहर
एव = ही
कृत्वा = निकालकर
च = और
चक्षुः = नेत्रोंकी दृष्टिको
भ्रुवोः = भृकुटीके
अन्तरे = बीचमें (स्थित करके तथा)
नासाभ्यन्तरचारिणौ = नासिकामें विचरनेवाले
प्राणापानौ = प्राण और अपानवायुको
समौ = सम
कृत्वा = करके

यतेन्द्रियमनोबुद्धिः	=	जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं, (ऐसा)	**विगतेच्छाभयक्रोधः**	=	इच्छा, भय और क्रोधसे रहित हो गया है,
यः	=	जो	**सः**	=	वह
मोक्षपरायणः	=	मोक्षपरायण	**सदा**	=	सदा
मुनिः	=	मुनि*	**मुक्तः**	=	मुक्त
			एव	=	ही है।

[प्रभावसहित परमेश्वरको जाननेसे शान्तिकी प्राप्ति।]

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥ २९॥

भोक्तारम्, यज्ञतपसाम्, सर्वलोकमहेश्वरम्,
सुहृदम्, सर्वभूतानाम्, ज्ञात्वा, माम्, शान्तिम्, ऋच्छति॥ २९॥

और हे अर्जुन! मेरा भक्त—

माम्	=	मुझको	**सर्वभूतानाम्**	=	सम्पूर्ण भूतप्राणियोंका
यज्ञतपसाम्	=	सब यज्ञ और तपोंका	**सुहृदम्**	=	सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, (ऐसा)
भोक्तारम्	=	भोगनेवाला,	**ज्ञात्वा**	=	तत्त्वसे जानकर
सर्वलोकमहेश्वरम्	=	सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर (तथा)	**शान्तिम्**	=	शान्तिको
			ऋच्छति	=	प्राप्त होता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसन्यासयोगो
नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

* परमेश्वरके स्वरूपका निरन्तर मनन करनेवाला।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ षष्ठोऽध्यायः

__प्रधान-विषय__—१ से ४ तक निष्काम कर्मयोगका विषय और योगारूढ़ पुरुषके लक्षण, (५—१०) आत्मोद्धारके लिये प्रेरणा और भगवत्प्राप्तिवाले पुरुषके लक्षण, (११—३२) विस्तारसे ध्यानयोगका विषय, (३३—३६) मनके निग्रहका विषय, (३७—४७) योगभ्रष्ट पुरुषकी गतिका विषय और ध्यानयोगीकी महिमा।

[निष्काम कर्मयोगीकी प्रशंसा।]

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥ १॥

अनाश्रितः, कर्मफलम्, कार्यम्, कर्म, करोति, यः,
सः, सन्न्यासी, च, योगी, च, न, निरग्निः, न, च, अक्रियः॥ १॥

उसके पश्चात् श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन!—

यः	= जो पुरुष	**च**	= और (केवल)
कर्मफलम्	= कर्मफलका	**निरग्निः**	= अग्निका त्याग करनेवाला (संन्यासी)
अनाश्रितः	= आश्रय न लेकर		
कार्यम्	= करनेयोग्य		
कर्म	= कर्म	**न**	= नहीं है
करोति	= करता है,	**च**	= तथा (केवल)
सः	= वह	**अक्रियः**	= क्रियाओंका त्याग करनेवाला (योगी)
सन्न्यासी	= संन्यासी		
च	= तथा		
योगी	= योगी है;	**न**	= नहीं है।

[संन्यास और कर्मयोगकी एकताका प्रतिपादन।]

यं सन्न्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसन्न्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन॥ २ ॥

यम्, सन्न्यासम्, इति, प्राहुः, योगम्, तम्, विद्धि, पाण्डव,
न, हि, असन्न्यस्तसंकल्पः, योगी, भवति, कश्चन॥ २ ॥

इसलिये—

पाण्डव	= हे अर्जुन!	**हि**	= क्योंकि
यम्	= जिसको	**असन्न्यस्त-सङ्कल्पः**	= संकल्पोंका त्याग न करनेवाला
सन्न्यासम्	= संन्यास[1]		
इति	= ऐसा		
प्राहुः	= कहते हैं,	**कश्चन**	= कोई भी पुरुष
तम्	= उसीको (तू)	**योगी**	= योगी
योगम्	= योग[2]	**न**	= नहीं
विद्धि	= जान।	**भवति**	= होता।

[कर्मयोगके साधनका वर्णन।]

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥ ३ ॥

आरुरुक्षोः, मुनेः, योगम्, कर्म, कारणम्, उच्यते,
योगारूढस्य, तस्य, एव, शमः, कारणम्, उच्यते॥ ३ ॥

और—

योगम्	= योगमें	**मुनेः**	= मननशील पुरुषके लिये (योगकी प्राप्तिमें)
आरुरुक्षोः	= आरूढ़ होनेकी इच्छावाले		

१-२-गीता अध्याय ३ श्लोक ३ की टिप्पणीमें इसका खुलासा अर्थ लिखा है।

कर्म = निष्कामभावसे कर्म करना ही
कारणम् = हेतु
उच्यते = कहा जाता है (और योगारूढ़ हो जानेपर)
तस्य = उस
योगारूढस्य = योगारूढ़ पुरुषका
शमः = जो सर्वसंकल्पों–का अभाव है,
(सः), एव = वही (कल्याणमें)
कारणम् = हेतु
उच्यते = कहा जाता है।

[योगारूढ़ पुरुषके लक्षण।]

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥ ४॥

यदा, हि, न, इन्द्रियार्थेषु, न, कर्मसु, अनुषज्जते,
सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी, योगारूढः, तदा, उच्यते॥ ४॥

यदा = जिस कालमें
न = न (तो)
इन्द्रियार्थेषु = इन्द्रियोंके भोगोंमें (और)
न = न
कर्मसु = कर्मोंमें
हि = ही
अनुषज्जते = आसक्त होता है,
तदा = उस कालमें
सर्वसङ्कल्प–सन्न्यासी = सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष
योगारूढः = योगारूढ़
उच्यते = कहा जाता है।

[मनुष्यको योगारूढ़ावस्था प्राप्त करनेके लिये उत्साहित करना और कर्तव्यनिरूपण।]

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ ५॥

उद्धरेत्, आत्मना, आत्मानम्, न, आत्मानम्, अवसादयेत्,
आत्मा, एव, हि, आत्मनः, बन्धुः, आत्मा, एव, रिपुः, आत्मनः॥ ५॥

और यह योगारूढ़ता कल्याणमें हेतु कही है, इसलिये मनुष्यको चाहिये कि—

आत्मना = अपने द्वारा
आत्मानम् = अपना (संसार-समुद्रसे)
उद्धरेत् = उद्धार करे (और)
आत्मानम् = अपनेको (अधोगतिमें)
न = न
अवसादयेत् = डाले;
हि = क्योंकि (यह मनुष्य)
आत्मा = आप
एव = ही तो
आत्मनः = अपना
बन्धुः = मित्र है (और)
आत्मा = आप
एव = ही
आत्मनः = अपना
रिपुः = शत्रु है।

[आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है, इस पूर्वोक्त रहस्यका प्रतिपादन।]

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥ ६॥

बन्धुः, आत्मा, आत्मनः, तस्य, येन, आत्मा, एव, आत्मना, जितः, अनात्मनः, तु, शत्रुत्वे, वर्तेत, आत्मा, एव, शत्रुवत्॥ ६॥

येन = जिस
आत्मना = जीवात्माद्वारा
आत्मा = मनऔर इन्द्रियों-सहित शरीर
जितः = जीता हुआ है,
तस्य = उस
आत्मनः = जीवात्माका (तो वह)
आत्मा = आप
एव = ही
बन्धुः = मित्र है;
तु = और
अनात्मनः = जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों-सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये (वह)
आत्मा = आप

एव	= ही	**शत्रुत्वे**	= शत्रुतामें
शत्रुवत्	= शत्रुके सदृश	**वर्तेत**	= बरतता है।

[शरीर, मन, इन्द्रियादिको जीतनेका फल।]

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥ ७॥

जितात्मनः, प्रशान्तस्य, परमात्मा, समाहितः,
शीतोष्णसुखदुःखेषु, तथा, मानापमानयोः॥ ७॥

और हे अर्जुन!—

शीतोष्ण-सुखदुःखेषु	= सरदी-गरमी और सुख-दुःखादिमें	**जितात्मनः**	= स्वाधीन आत्मावाले पुरुषके (ज्ञानमें)
तथा	= तथा	**परमात्मा**	= सच्चिदानन्दघन परमात्मा
मानापमानयोः	= मान और अपमानमें	**समाहितः**	= सम्यक् प्रकारसे स्थित हैं अर्थात् उसके ज्ञानमें परमात्माके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं।
प्रशान्तस्य	= जिसके अन्तः-करणकी वृत्तियाँ भलीभाँति शान्त हैं, (ऐसे)		

[परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषोंके लक्षण और महत्त्वका वर्णन।]

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥ ८॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थः, विजितेन्द्रियः,
युक्तः, इति, उच्यते, योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥ ८॥

और—

ज्ञानविज्ञान-तृप्तात्मा	= जिसका अन्तः-करण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है,	**समलोष्टाश्म-काञ्चनः**	= जिसके लिये मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान हैं, (वह)
कूटस्थः	= जिसकी स्थिति विकाररहित है,	**योगी**	= योगी
		युक्तः	= युक्त अर्थात् भगवत्प्राप्त है,
विजितेन्द्रियः	= जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं (और)	**इति**	= ऐसे
		उच्यते	= कहा जाता है।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु,
साधुषु, अपि, च, पापेषु, समबुद्धिः, विशिष्यते ॥ ९ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीन-मध्यस्थ-द्वेष्यबन्धुषु	= सुहृद्[1] मित्र, वैरी, उदासीन[2], मध्यस्थ[3], द्वेष्य और बन्धुगणोंमें,	**पापेषु**	= पापियोंमें
		अपि	= भी
		समबुद्धिः	= समान भाव रखनेवाला
साधुषु	= धर्मात्माओंमें		
च	= और	**विशिष्यते**	= अत्यन्त श्रेष्ठ है।

१-स्वार्थरहित सबका हित करनेवाला।

२-पक्षपातरहित।

३-दोनों ओरकी भलाई चाहनेवाला।

[ध्यानयोगका साधन करनेके लिये प्रेरणा।]

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥ १०॥

योगी, युञ्जीत, सततम्, आत्मानम्, रहसि, स्थितः,
एकाकी, यतचित्तात्मा, निराशीः, अपरिग्रहः॥ १०॥

इसलिये उचित है कि—

यतचित्तात्मा	= मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें रखनेवाला,	**एकाकी**	= अकेला ही
		रहसि	= एकान्त स्थानमें
		स्थितः	= स्थित होकर
		आत्मानम्	= आत्माको
निराशीः	= आशारहित (और)	**सततम्**	= निरन्तर (परमात्मामें)
अपरिग्रहः	= संग्रहरहित		
योगी	= योगी	**युञ्जीत**	= लगावे।

[ध्यानयोगके लिये आसन-स्थापनकी विधि।]

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥ ११॥

शुचौ, देशे, प्रतिष्ठाप्य, स्थिरम्, आसनम्, आत्मनः,
न, अत्युच्छ्रितम्, न, अतिनीचम्, चैलाजिनकुशोत्तरम्॥ ११॥

कैसे कि—

शुचौ	= शुद्ध	**न**	= न
देशे	= भूमिमें, (जिसके ऊपर क्रमशः)	**अत्युच्छ्रितम्**	= बहुत ऊँचा है (और)
चैलाजिन-कुशोत्तरम्	= कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, (जो)	**न**	= न
		अतिनीचम्	= बहुत नीचा, (ऐसे)

आत्मनः	= अपने	**स्थिरम्**	= स्थिर
आसनम्	= आसनको	**प्रतिष्ठाप्य**	= स्थापन करके—

[आसनपर बैठकर योगका साधन करनेके लिये कथन।]

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥ १२॥

तत्र, एकाग्रम्, मनः, कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः,
उपविश्य, आसने, युञ्ज्यात्, योगम्, आत्मविशुद्धये॥ १२॥

और—

तत्र	= उस	**मनः**	= मनको
आसने	= आसनपर	**एकाग्रम्**	= एकाग्र
उपविश्य	= बैठकर	**कृत्वा**	= करके
यतचित्तेन्द्रियक्रियः	= चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें रखते हुए	**आत्मविशुद्धये**	= अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये
		योगम्	= योगका
		युञ्ज्यात्	= अभ्यास करे।

[ध्यानयोगकी विधि।]

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ १३॥

समम्, कायशिरोग्रीवम्, धारयन्, अचलम्, स्थिरः,
सम्प्रेक्ष्य, नासिकाग्रम्, स्वम्, दिशः, च, अनवलोकयन्॥ १३॥

उसकी विधि इस प्रकार है कि—

कायशिरोग्रीवम्	= काया, सिर और गलेको	**धारयन्**	= धारण करके
		च	= और
समम्	= समान (एवम्)	**स्थिरः**	= स्थिर होकर,
अचलम्	= अचल	**स्वम्**	= अपनी

नासिकाग्रम्	=	नासिकाके अग्रभागपर	**दिशः**	=	दिशाओंको
सम्प्रेक्ष्य	=	दृष्टि जमाकर, (अन्य)	**अनवलोकयन्**	=	न देखता हुआ—

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥

प्रशान्तात्मा, विगतभीः, ब्रह्मचारिव्रते, स्थितः,
मनः, संयम्य, मच्चित्तः, युक्तः, आसीत, मत्परः ॥ १४ ॥

ब्रह्मचारिव्रते	=	ब्रह्मचारीके व्रतमें	**मनः**	=	मनको
स्थितः	=	स्थित	**संयम्य**	=	रोककर
विगतभीः	=	भयरहित (तथा)	**मच्चित्तः**	=	मुझमें चित्तवाला (और)
प्रशान्तात्मा	=	भलीभाँति शान्त अन्तःकरणवाला	**मत्परः**	=	मेरे परायण होकर
युक्तः	=	सावधान योगी	**आसीत**	=	स्थित होवे।

[ध्यानयोगका फल।]

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

युञ्जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, नियतमानसः,
शान्तिम्, निर्वाणपरमाम्, मत्संस्थाम्, अधिगच्छति ॥ १५ ॥

नियतमानसः	=	वशमें किये हुए मनवाला	**सदा**	=	निरन्तर (मुझ परमेश्वरके स्वरूपमें)
योगी	=	योगी			
एवम्	=	इस प्रकार	**युञ्जन्**	=	लगाता हुआ
आत्मानम्	=	आत्माको	**मत्संस्थाम्**	=	मुझमें रहनेवाली

निर्वाणपरमाम्	=	परमानन्दकी पराकाष्ठारूप	**शान्तिम्**	=	शान्तिको
			अधिगच्छति	=	प्राप्त होता है।

[ध्यानयोगके लिये उपयुक्त आहार-विहार तथा शयनादि नियम और उनके फलका प्रतिपादन।]

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥ १६॥

न, अति, अश्नतः, तु, योगः, अस्ति, न, च, एकान्तम्, अनश्नतः, न, च, अति, स्वप्नशीलस्य, जाग्रतः, न, एव, च, अर्जुन॥ १६॥

परंतु—

अर्जुन	=	हे अर्जुन! (यह)	**च**	=	तथा
योगः	=	योग	**न**	=	न
न	=	न	**अति**	=	बहुत
तु	=	तो	**स्वप्नशीलस्य**	=	शयन करनेके स्वभाववालेका
अति	=	बहुत			
अश्नतः	=	खानेवालेका	**च**	=	और
च	=	और	**न**	=	न (सदा)
न	=	न	**जाग्रतः**	=	जागनेवालेका
एकान्तम्	=	बिलकुल	**एव**	=	ही
अनश्नतः	=	न खानेवालेका	**अस्ति**	=	सिद्ध होता है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ १७॥

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य, कर्मसु, युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगः, भवति, दुःखहा॥ १७॥

यह—

दुःखहा	=	दुःखोंका नाश करनेवाला	**योगः**	=	योग (तो)

युक्ताहार-विहारस्य	=	यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका,			(और)
कर्मसु	=	कर्मोंमें	**युक्तस्वप्नाव-बोधस्य**	=	यथायोग्य सोने तथा जागने-वालेका (ही सिद्ध)
युक्तचेष्टस्य	=	यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका	**भवति**	=	होता है।

[ध्यानयोगके अन्तिम स्थितिको प्राप्त हुए पुरुषोंके लक्षण।]

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा॥ १८॥

यदा, विनियतम्, चित्तम्, आत्मनि, एव, अवतिष्ठते,
निःस्पृहः, सर्वकामेभ्यः, युक्तः, इति, उच्यते, तदा॥ १८॥

इस प्रकार योगके अभ्याससे—

विनियतम्	=	अत्यन्त वशमें किया हुआ	**तदा**	=	उस कालमें
चित्तम्	=	चित्त	**सर्वकामेभ्यः**	=	सम्पूर्ण भोगोंसे
यदा	=	जिस कालमें	**निःस्पृहः**	=	स्पृहारहित पुरुष
आत्मनि	=	परमात्मामें			
एव	=	ही	**युक्तः**	=	योगयुक्त है,
अवतिष्ठते	=	भलीभाँति स्थित हो जाता है,	**इति**	=	ऐसा
			उच्यते	=	कहा जाता है।

[दीपके दृष्टान्तसे योगीके चित्तकी स्थितिका वर्णन।]

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥ १९॥

यथा, दीपः, निवातस्थः, न, इङ्गते, सा, उपमा, स्मृता,
योगिनः, यतचित्तस्य, युञ्जतः, योगम्, आत्मनः॥ १९॥

यथा	= जिस प्रकार	**उपमा**	= उपमा
निवातस्थः	= वायुरहित स्थानमें स्थित	**आत्मनः**	= परमात्माके
		योगम्	= ध्यानमें
दीपः	= दीपक	**युञ्जतः**	= लगे हुए
न, इङ्गते	= चलायमान नहीं होता,	**योगिनः**	= योगीके
		यतचित्तस्य	= जीते हुए चित्तकी
सा	= वैसी ही	**स्मृता**	= कही गयी है।

[ध्यानयोगके द्वारा परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण।]

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥ २०॥

यत्र, उपरमते, चित्तम्, निरुद्धम्, योगसेवया,
यत्र, च, एव, आत्मना, आत्मानम्, पश्यन्, आत्मनि, तुष्यति॥ २०॥

और हे अर्जुन!—

योगसेवया	= योगके अभ्याससे	**आत्मना**	= सूक्ष्म बुद्धिद्वारा
निरुद्धम्	= निरुद्ध	**आत्मानम्**	= परमात्माको
चित्तम्	= चित्त		
यत्र	= जिस अवस्थामें	**पश्यन्**	= साक्षात् करता हुआ
उपरमते	= उपराम हो जाता है		
च	= और	**आत्मनि**	= सच्चिदानन्दघन परमात्मामें
यत्र	= जिस अवस्थामें (परमात्माके ध्यानसे शुद्ध हुई)	**एव**	= ही
		तुष्यति	= संतुष्ट रहता है—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥ २१॥

सुखम्, आत्यन्तिकम्, यत्, तत्, बुद्धिग्राह्यम्, अतीन्द्रियम्,
वेत्ति, यत्र, न, च, एव, अयम्, स्थितः, चलति, तत्त्वतः ॥ २१ ॥

तथा—

अतीन्द्रियम्	= इन्द्रियोंसे अतीत
बुद्धिग्राह्यम्	= केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करनेयोग्य
यत्	= जो
आत्यन्तिकम्	= अनन्त
सुखम्	= आनन्द है;
तत्	= उसको
यत्र	= जिस अवस्थामें
वेत्ति	= अनुभव करता है
च	= और
(यत्र)	= जिस अवस्थामें
स्थितः	= स्थित
अयम्	= यह (योगी)
तत्त्वतः	= परमात्माके स्वरूपसे
न, एव, चलति	= विचलित होता ही नहीं—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ २२ ॥

यम्, लब्ध्वा, च, अपरम्, लाभम्, मन्यते, न, अधिकम्, ततः,
यस्मिन्, स्थितः, न, दुःखेन, गुरुणा, अपि, विचाल्यते ॥ २२ ॥

और परमात्माकी प्राप्तिरूप—

यम्	= जिस
लाभम्	= लाभको
लब्ध्वा	= प्राप्त होकर
ततः	= उससे
अधिकम्	= अधिक
अपरम्	= दूसरा (कुछ भी लाभ)
न, मन्यते	= नहीं मानता
च	= और (परमात्म-प्राप्तिरूप)
यस्मिन्	= जिस अवस्थामें
स्थितः	= स्थित (योगी)
गुरुणा	= बड़े भारी
दुःखेन	= दुःखसे
अपि	= भी
न, विचाल्यते	= चलायमान नहीं होता—

[तत्परतापूर्वक ध्यानयोगके अनुष्ठानका कथन।]

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥ २३॥

तम्, विद्यात्, दुःखसंयोगवियोगम्, योगसञ्ज्ञितम्,
सः, निश्चयेन, योक्तव्यः, योगः, अनिर्विण्णचेतसा॥ २३॥

और जो—

दुःखसंयोग-वियोगम् = दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है (तथा)
योगसञ्ज्ञितम् = जिसका नाम योग है,
तम् = उसको
विद्यात् = जानना चाहिये।
सः = वह
योगः = योग
अनिर्विण्णचेतसा = न उकताये हुए अर्थात् धैर्य और उत्साहयुक्त चित्तसे
निश्चयेन = निश्चयपूर्वक
योक्तव्यः = करना कर्तव्य है।

[अभेदरूपसे परमात्माके ध्यानकी विधि।]

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥ २४॥

सङ्कल्पप्रभवान्, कामान्, त्यक्त्वा, सर्वान्, अशेषतः,
मनसा, एव, इन्द्रियग्रामम्, विनियम्य, समन्ततः॥ २४॥

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि—

सङ्कल्पप्रभवान् = संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली
सर्वान् = सम्पूर्ण
कामान् = कामनाओंको
अशेषतः = निःशेषरूपसे
त्यक्त्वा = त्यागकर (और)
मनसा = मनके द्वारा
इन्द्रियग्रामम् = इन्द्रियोंके समुदायको
समन्ततः, एव = सभी ओरसे
विनियम्य = भलीभाँति रोककर—

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥ २५॥

शनैः, शनैः, उपरमेत्, बुद्ध्या, धृतिगृहीतया,
आत्मसंस्थम्, मनः, कृत्वा, न, किंचित्, अपि, चिन्तयेत्॥ २५॥

शनैः, शनैः = क्रम-क्रमसे (अभ्यास करता हुआ)
उपरमेत् = उपरतिको प्राप्त हो (तथा)
धृतिगृहीतया = धैर्ययुक्त
बुद्ध्या = बुद्धिके द्वारा
मनः = मनको
आत्मसंस्थम् = परमात्मामें स्थित
कृत्वा = करके (परमात्माके सिवा और)
किञ्चित् = कुछ
अपि = भी
न, चिन्तयेत् = चिन्तन न करे।

[मनको परमात्माकी तरफ लगानेकी प्रेरणा।]

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥ २६॥

यतः, यतः, निश्चरति, मनः, चञ्चलम्, अस्थिरम्,
ततः, ततः, नियम्य, एतत्, आत्मनि, एव, वशम्, नयेत्॥ २६॥

परंतु जिसका मन वशमें नहीं हुआ हो, उसको चाहिये कि—

एतत् = यह
अस्थिरम् = स्थिर न रहनेवाला (और)
चञ्चलम् = चंचल
मनः = मन
यतः, यतः = जिस-जिस (शब्दादि विषयके निमित्तसे संसारमें)
निश्चरति = विचरता है,

ततः, ततः	= उस-उस (विषयसे)	**आत्मनि**	= परमात्मामें
		एव	= ही
नियम्य	= रोककर यानी हटाकर इसे बार-बार	**वशम्**	= निरुद्ध
		नयेत्	= करे।

[ध्यानयोगसे उत्तम और अत्यन्त सुखकी प्राप्ति।]

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥ २७॥

प्रशान्तमनसम्, हि, एनम्, योगिनम्, सुखम्, उत्तमम्, उपैति, शान्तरजसम्, ब्रह्मभूतम्, अकल्मषम्॥ २७॥

हि	= क्योंकि	**एनम्**	= इस
प्रशान्तमनसम्	= जिसका मन भली प्रकार शान्त है,	**ब्रह्मभूतम्**	= सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके साथ एकीभाव हुए
अकल्मषम्	= जो पापसे रहित है (और)	**योगिनम्**	= योगीको
शान्तरजसम्	= जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, (ऐसे)	**उत्तमम्**	= उत्तम
		सुखम्	= आनन्द
		उपैति	= प्राप्त होता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥ २८॥

युञ्जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, विगतकल्मषः, सुखेन, ब्रह्मसंस्पर्शम्, अत्यन्तम्, सुखम्, अश्नुते॥ २८॥

और वह—

विगतकल्मषः	= पापरहित	**एवम्**	= इस प्रकार
योगी	= योगी	**सदा**	= निरन्तर

आत्मानम्	= आत्माको (परमात्मामें)	**ब्रह्मसंस्पर्शम्**	= परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप
		अत्यन्तम्	= अनन्त
युञ्जन्	= लगाता हुआ	**सुखम्**	= आनन्दका
सुखेन	= सुखपूर्वक	**अश्नुते**	= अनुभव करता है।

[सांख्ययोगीके व्यवहारकालकी स्थितिका कथन।]

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ २९॥

सर्वभूतस्थम्, आत्मानम्, सर्वभूतानि, च, आत्मनि,
ईक्षते, योगयुक्तात्मा, सर्वत्र, समदर्शनः॥ २९॥

और हे अर्जुन!—

योगयुक्तात्मा	= सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त आत्मावाला (तथा)	**आत्मानम्**	= आत्माको
		सर्वभूतस्थम्	= सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित
		च	= और
		सर्वभूतानि	= सम्पूर्ण भूतोंको
सर्वत्र	= सबमें	**आत्मनि**	= आत्मामें (कल्पित)
समदर्शनः	= समभावसे देखनेवाला योगी	**ईक्षते**	= देखता है।

[सर्वत्र भगवद्दर्शनका फल।]

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ ३०॥

यः, माम्, पश्यति, सर्वत्र, सर्वम्, च, मयि, पश्यति,
तस्य, अहम्, न, प्रणश्यामि, सः, च, मे, न, प्रणश्यति॥ ३०॥

और—

यः	= जो पुरुष	**पश्यति**	= देखता है,
सर्वत्र	= सम्पूर्ण भूतोंमें	**तस्य**	= उसके लिये
माम्	= सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही (व्यापक)	**अहम्**	= मैं
		न, प्रणश्यामि	= अदृश्य नहीं होता
पश्यति	= देखता है	**च**	= और
च	= और	**सः**	= वह
सर्वम्	= सम्पूर्ण भूतोंको	**मे**	= मेरे लिये
मयि	= मुझ वासुदेवके अन्तर्गत *	**न, प्रणश्यति**	= अदृश्य नहीं होता।

[भक्तिद्वारा भगवान्‌को प्राप्त हुए तथा सांख्ययोगद्वारा परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषोंके लक्षण और महत्त्वका निरूपण।]

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥ ३१॥

सर्वभूतस्थितम्, यः, माम्, भजति, एकत्वम्, आस्थितः,
सर्वथा, वर्तमानः, अपि, सः, योगी, मयि, वर्तते॥ ३१॥

इस प्रकार—

यः	= जो पुरुष	**माम्**	= मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको
एकत्वम्	= एकीभावमें		
आस्थितः	= स्थित होकर	**भजति**	= भजता है,
सर्वभूतस्थितम्	= सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित	**सः**	= वह
		योगी	= योगी

* गीता अध्याय ९ श्लोक ६ देखना चाहिये।

सर्वथा	= सब प्रकारसे	**मयि**	= मुझमें (ही)
वर्तमानः	= बरतता हुआ		
अपि	= भी	**वर्तते**	= बरतता है।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ ३२॥

आत्मौपम्येन, सर्वत्र, समम्, पश्यति, यः, अर्जुन,
सुखम्, वा, यदि, वा, दुःखम्, सः, योगी, परमः, मतः॥ ३२॥

और—

अर्जुन	= हे अर्जुन!	**यदि, वा**	= अथवा
यः	= जो योगी	**दुःखम्**	= दुःखको (भी सबमें सम देखता है),
आत्मौपम्येन	= अपनी भाँति *		
सर्वत्र	= सम्पूर्ण भूतोंमें		
समम्	= सम	**सः**	= वह
पश्यति	= देखता है	**योगी**	= योगी
वा	= और	**परमः**	= परम श्रेष्ठ
सुखम्	= सुख	**मतः**	= माना गया है।

[मनकी चंचलताके कारण अर्जुनका समत्वयोगकी स्थिरताको और मनके निग्रहको अत्यन्त कठिन मानना।]

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्॥ ३३॥

* जैसे मनुष्य अपने मस्तक, हाथ, पैर और गुदादिकोंके साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और म्लेच्छादिकोंका-सा बर्ताव करता हुआ भी उनमें आत्मभाव अर्थात् अपनापन समान होनेसे, सुख और दुःखको समान ही देखता है, वैसे ही सब भूतोंमें देखना ''अपनी भाँति'' सम देखना है।

यः, अयम्, योगः, त्वया, प्रोक्तः, साम्येन, मधुसूदन,
एतस्य, अहम्, न, पश्यामि, चञ्चलत्वात्, स्थितिम्,स्थिराम्॥ ३३ ॥

इस प्रकार भगवान्‌के वाक्योंको सुनकर अर्जुन बोले—

मधुसूदन	= हे मधुसूदन!	**चञ्चलत्वात्**	= चंचल होनेसे
यः	= जो	**अहम्**	= मैं
अयम्	= यह	**एतस्य**	= इसकी
योगः	= योग	**स्थिराम्**	= नित्य
त्वया	= आपने	**स्थितिम्**	= स्थितिको
साम्येन	= समभावसे	**न**	= नहीं
प्रोक्तः	= कहा है, (मनके)	**पश्यामि**	= देखता हूँ।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ ३४॥

चञ्चलम्, हि, मनः, कृष्ण, प्रमाथि, बलवत्, दृढम्,
तस्य, अहम्, निग्रहम्, मन्ये, वायोः, इव, सुदुष्करम्॥ ३४॥

हि	= क्योंकि	**(अतः)**	= इसलिये
कृष्ण	= हे श्रीकृष्ण! (यह)	**तस्य**	= उसका
		निग्रहम्	= वशमें करना
मनः	= मन	**अहम्**	= मैं
चञ्चलम्	= बड़ा चंचल,		
प्रमाथि	= प्रमथन स्वभाववाला,	**वायोः**	= वायुको रोकनेकी
		इव	= भाँति
दृढम्	= बड़ा दृढ़ (और)	**सुदुष्करम्**	= अत्यन्त दुष्कर
बलवत्	= बलवान् है।	**मन्ये**	= मानता हूँ।

[अभ्यास और वैराग्यसे मन वशमें होनेका कथन।]

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ ३५॥

असंशयम्, महाबाहो, मनः, दुर्निग्रहम्, चलम्,
अभ्यासेन, तु, कौन्तेय, वैराग्येण, च, गृह्यते॥ ३५॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् बोले—

महाबाहो	= हे महाबाहो!	**तु**	= परंतु
असंशयम्	= निःसन्देह	**कौन्तेय**	= हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! (यह)
मनः	= मन		
चलम्	= चंचल (और)	**अभ्यासेन**	= अभ्यास*
		च	= और
दुर्निग्रहम्	= कठिनतासे वशमें होनेवाला है;	**वैराग्येण**	= वैराग्यसे
		गृह्यते	= वशमें होता है।

[मनके वशमें न करनेपर योगकी दुष्प्राप्यताका और वशमें होनेपर प्राप्त होनेका कथन।]

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥ ३६॥

असंयतात्मना, योगः, दुष्प्रापः, इति, मे, मतिः,
वश्यात्मना, तु, यतता, शक्यः, अवाप्तुम्, उपायतः॥ ३६॥

क्योंकि—

असंयतात्मना	= जिसका मन वशमें किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुषद्वारा	**योगः**	= योग
		दुष्प्रापः	= दुष्प्राप्य है
		तु	= और

* गीता अध्याय १२ श्लोक ९ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये।

वश्यात्मना	= वशमें किये हुए मनवाले	**अवाप्तुम्**	= प्राप्त होना
यतता	= प्रयत्नशील पुरुषद्वारा	**शक्यः**	= सहज है—
		इति	= यह
उपायतः	= साधनसे (उसका)	**मे**	= मेरा
		मतिः	= मत है।

[योगभ्रष्ट पुरुषकी गतिके सम्बन्धमें अर्जुनका प्रश्न और उसके उभयभ्रष्ट होनेकी शंका।]

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥ ३७॥

अयतिः, श्रद्धया, उपेतः, योगात्, चलितमानसः, अप्राप्य, योगसंसिद्धिम्, काम्, गतिम्, कृष्ण, गच्छति॥ ३७॥

इसपर अर्जुन बोले—

कृष्ण	= हे श्रीकृष्ण!	**योगसंसिद्धिम्**	= योगकी सिद्धिको अर्थात् भगवत्-साक्षात्कारको
श्रद्धया, उपेतः	= जो योगमें श्रद्धा रखनेवाला है; किंतु		
अयतिः	= संयमी नहीं है, (इस कारण अन्तकालमें)	**अप्राप्य**	= न प्राप्त होकर
		काम्	= किस
योगात्-चलितमानसः	= जिसका मन योगसे विचलित हो गया है, (ऐसा साधक योगी)	**गतिम्**	= गतिको
		गच्छति	= प्राप्त होता है।

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि॥ ३८॥

कच्चित्, न, उभयविभ्रष्टः, छिन्नाभ्रम्, इव, नश्यति,
अप्रतिष्ठः, महाबाहो, विमूढः, ब्रह्मणः, पथि ॥ ३८ ॥

और—

महाबाहो	= हे महाबाहो!	**छिन्नाभ्रम्**	= छिन्न-भिन्न बादलकी
कच्चित्	= क्या (वह)	**इव**	= भाँति
ब्रह्मणः	= भगवत्प्राप्तिके	**उभयविभ्रष्टः**	= दोनों ओरसे भ्रष्ट होकर
पथि	= मार्गमें	**न, नश्यति**	= नष्ट तो नहीं हो जाता?
विमूढः	= मोहित (और)		
अप्रतिष्ठः	= आश्रयरहित पुरुष		

[संशयनिवारण करनेके लिये अर्जुनकी भगवान्से प्रार्थना ।]

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

एतत्, मे, संशयम्, कृष्ण, छेत्तुम्, अर्हसि, अशेषतः,
त्वदन्यः, संशयस्य, अस्य, छेत्ता, न, हि, उपपद्यते ॥ ३९ ॥

कृष्ण	= हे श्रीकृष्ण!	**हि**	= क्योंकि
मे	= मेरे	**त्वदन्यः**	= आपके सिवा दूसरा
एतत्	= इस	**अस्य**	= इस
संशयम्	= संशयको	**संशयस्य**	= संशयका
अशेषतः	= सम्पूर्णरूपसे	**छेत्ता**	= छेदन करनेवाला
छेत्तुम्	= छेदन करनेके लिये (आप ही)	**न, उपपद्यते**	= मिलना सम्भव नहीं है।
अर्हसि	= योग्य हैं;		

[अर्जुनकी शंकाके उत्तरमें योगभ्रष्ट पुरुषकी दुर्गतिका निषेध ।]

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥

पार्थ, न, एव, इह, न, अमुत्र, विनाशः, तस्य, विद्यते,
न, हि, कल्याणकृत्, कश्चित्, दुर्गतिम्, तात, गच्छति॥ ४०॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् बोले—

पार्थ	= हे पार्थ!	**तात**	= हे प्यारे!
तस्य	= उस पुरुषका	**कल्याणकृत्**	= आत्मोद्धारके लिये अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करनेवाला
न	= न (तो)		
इह	= इस लोकमें		
विनाशः	= विनाश		
विद्यते	= होता है (और)		
न	= न		
अमुत्र	= परलोकमें	**कश्चित्**	= कोई भी मनुष्य
एव	= ही;	**दुर्गतिम्**	= दुर्गतिको
हि	= क्योंकि	**न, गच्छति**	= प्राप्त नहीं होता।

[योगभ्रष्ट पुरुषोंको स्वर्गलोक और पवित्र धनवान्के घरमें जन्म प्राप्त होनेका कथन।]

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥ ४१॥

प्राप्य, पुण्यकृताम्, लोकान्, उषित्वा, शाश्वतीः, समाः,
शुचीनाम्, श्रीमताम्, गेहे, योगभ्रष्टः, अभिजायते॥ ४१॥

किंतु वह—

योगभ्रष्टः	= योगभ्रष्ट पुरुष	**प्राप्य**	= प्राप्त होकर, (उनमें)
पुण्यकृताम्	= पुण्यवानोंके	**शाश्वतीः**	= बहुत
लोकान्	= लोकोंको अर्थात् स्वर्गादि उत्तम लोकोंको	**समाः**	= वर्षोंतक
		उषित्वा	= निवास करके (फिर)

शुचीनाम्	= शुद्ध आचरणवाले		**गेहे**	= घरमें
श्रीमताम्	= श्रीमान् पुरुषोंके		**अभिजायते**	= जन्म लेता है।

[वैराग्यवान् योगभ्रष्टोंका ज्ञानवान् योगियोंके घरोंमें जन्म और पूर्वदेहके बुद्धियोगको अनायास ही प्राप्त होनेका कथन।]

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥ ४२॥

अथवा, योगिनाम्, एव, कुले, भवति, धीमताम्,
एतत्, हि, दुर्लभतरम्, लोके, जन्म, यत्, ईदृशम्॥ ४२॥

अथवा	= अथवा (वैराग्यवान् पुरुष उन लोकोंमें न जाकर)		**भवति**	= जन्म लेता है। (परंतु)
			ईदृशम्	= इस प्रकारका
			यत्	= जो
			एतत्	= यह
धीमताम्	= ज्ञानवान्		**जन्म**	= जन्म है, (सो)
योगिनाम्	= योगियोंके		**लोके**	= संसारमें
एव	= ही		**हि**	= निःसन्देह
कुले	= कुलमें		**दुर्लभतरम्**	= अत्यन्त दुर्लभ है।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥ ४३॥

तत्र, तम्, बुद्धिसंयोगम्, लभते, पौर्वदेहिकम्,
यतते, च, ततः, भूयः, संसिद्धौ, कुरुनन्दन॥ ४३॥

और वह पुरुष—

तत्र	= वहाँ		**पौर्वदेहिकम्**	= पहले शरीरमें संग्रह किये हुए
तम्	= उस			

बुद्धिसंयोगम्	= बुद्धिके संयोगको अर्थात् समबुद्धि-रूप योगके संस्कारोंको (अनायास ही)	**ततः**	= उसके प्रभावसे (वह)
लभते	= प्राप्त हो जाता है	**भूयः**	= फिर
च	= और	**संसिद्धौ**	= परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धिके लिये (पहलेसे भी बढ़कर)
कुरुनन्दन	= हे कुरुनन्दन!	**यतते**	= प्रयत्न करता है।

[पवित्र धनियोंके घरमें जन्म लेनेवाले योगभ्रष्टोंका भी पूर्वाभ्यासके बलसे भगवान्‌की ओर आकर्षित किये जानेका तथा योगकी जिज्ञासाके महत्त्वका कथन।]

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥ ४४॥

पूर्वाभ्यासेन, तेन, एव, ह्रियते, हि, अवशः, अपि, सः, जिज्ञासुः, अपि, योगस्य, शब्दब्रह्म, अतिवर्तते॥ ४४॥

और—

सः	= वह (श्रीमानोंके घरमें जन्म लेनेवाला योगभ्रष्ट)	**ह्रियते**	= आकर्षित किया जाता है, (तथा)
अवशः	= पराधीन हुआ	**योगस्य**	= समबुद्धिरूप योगका
अपि	= भी	**जिज्ञासुः**	= जिज्ञासु
तेन	= उस	**अपि**	= भी
पूर्वाभ्यासेन	= पहलेके अभ्याससे	**शब्दब्रह्म**	= वेदमें कहे हुए सकाम कर्मोंके फलको
एव	= ही		
हि	= निःसन्देह (भगवान्‌की ओर)	**अतिवर्तते**	= उल्लंघन कर जाता है।

[योगियोंके कुलमें जन्म लेनेवाले योगभ्रष्टको परमगति प्राप्त होनेका कथन।]

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥ ४५ ॥

प्रयत्नात्, यतमानः, तु, योगी, संशुद्धकिल्बिषः,
अनेकजन्मसंसिद्धः, ततः, याति, पराम्, गतिम्॥ ४५ ॥

तु = परंतु
प्रयत्नात् = प्रयत्नपूर्वक
यतमानः = अभ्यास करनेवाला
योगी = योगी (तो)
अनेकजन्मसंसिद्धः = पिछले अनेक जन्मोंके संस्कार-बलसे इसी जन्ममें संसिद्ध होकर
संशुद्धकिल्बिषः = सम्पूर्ण पापोंसे रहित हो
ततः = फिर तत्काल ही
पराम्, गतिम् = परमगतिको
याति = प्राप्त हो जाता है।

[योगीकी महिमाका कथन और योगी बननेके लिये आज्ञा।]

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥ ४६ ॥

तपस्विभ्यः, अधिकः, योगी, ज्ञानिभ्यः, अपि, मतः, अधिकः,
कर्मिभ्यः, च, अधिकः, योगी, तस्मात्, योगी, भव, अर्जुन॥ ४६ ॥

क्योंकि—

योगी = योगी
तपस्विभ्यः = तपस्वियोंसे
अधिकः = श्रेष्ठ है,
ज्ञानिभ्यः = शास्त्रज्ञानियोंसे
अपि = भी
अधिकः = श्रेष्ठ
मतः = माना गया है
च = और
कर्मिभ्यः = सकाम कर्म करनेवालोंसे भी
योगी = योगी
अधिकः = श्रेष्ठ है;

तस्मात्	= इससे	**योगी**	= योगी
अर्जुन	= हे अर्जुन! (तू)	**भव**	= हो।

[सब योगियोंमेंसे अनन्य प्रेमसे श्रद्धापूर्वक भगवान्‌का भजन करनेवाले योगीकी प्रशंसा।]

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥ ४७॥

योगिनाम्, अपि, सर्वेषाम्, मद्गतेन, अन्तरात्मना,
श्रद्धावान्, भजते, यः, माम्, सः, मे, युक्ततमः, मतः॥ ४७॥

और हे प्यारे!—

सर्वेषाम्	= सम्पूर्ण	**माम्**	= मुझको (निरन्तर)
योगिनाम्	= योगियोंमें	**भजते**	= भजता है,
अपि	= भी	**सः**	= वह योगी
यः	= जो	**मे**	= मुझे
श्रद्धावान्	= श्रद्धावान् योगी		
मद्गतेन	= मुझमें लगे हुए	**युक्ततमः**	= परमश्रेष्ठ
अन्तरात्मना	= अन्तरात्मासे	**मतः**	= मान्य है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो
नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ सप्तमोऽध्यायः

प्रधान-विषय—*१ से ७ तक विज्ञानसहित ज्ञानका विषय, (८—१२) सम्पूर्ण पदार्थोंमें कारणरूपसे भगवान्‌की व्यापकताका कथन, (१३—१९) आसुरी स्वभाववालोंकी निन्दा और भगवद्भक्तोंकी प्रशंसा, (२०—२३) अन्य देवताओंकी उपासनाका विषय, (२४—३०) भगवान्‌के प्रभाव और स्वरूपको न जाननेवालोंकी निन्दा और जाननेवालोंकी महिमा।*

[समग्ररूपका वर्णन सुननेके लिये अर्जुनके प्रति भगवान्‌की आज्ञा।]

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥ १॥

मयि, आसक्तमनाः, पार्थ, योगम्, युञ्जन्, मदाश्रयः,
असंशयम्, समग्रम्, माम्, यथा, ज्ञास्यसि, तत्, शृणु॥ १॥

इसके पश्चात् श्रीकृष्णभगवान् बोले—

पार्थ	= हे पार्थ!	**समग्रम्**	= सम्पूर्ण विभूति, बल, ऐश्वर्यादि गुणोंसे युक्त, सबके आत्मरूप
मयि, आसक्तमनाः	= अनन्य प्रेमसे मुझमें आसक्तचित्त (तथा अनन्य भावसे)	**माम्**	= मुझको
मदाश्रयः	= मेरे परायण होकर	**असंशयम्**	= संशयरहित
योगम्	= योगमें	**ज्ञास्यसि**	= जानेगा,
युञ्जन्	= लगा हुआ (तू)	**तत्**	= उसको
यथा	= जिस प्रकारसे	**शृणु**	= सुन।

[विज्ञानसहित ज्ञानका वर्णन करनेके लिये भगवान्‌की प्रतिज्ञा और उसकी प्रशंसा।]

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते॥ २॥

ज्ञानम्, ते, अहम्, सविज्ञानम्, इदम्, वक्ष्यामि, अशेषतः,
यत्, ज्ञात्वा, न, इह, भूयः, अन्यत्, ज्ञातव्यम्, अवशिष्यते॥ २॥

अहम् = मैं
ते = तेरे लिये
इदम् = इस
सविज्ञानम् = विज्ञानसहित
ज्ञानम् = तत्त्वज्ञानको
अशेषतः = सम्पूर्णतया
वक्ष्यामि = कहूँगा,
यत् = जिसको
ज्ञात्वा = जानकर
इह = संसारमें
भूयः = फिर
अन्यत् = और कुछ भी
ज्ञातव्यम् = जाननेयोग्य
न, अवशिष्यते = शेष नहीं रह जाता।

[भगवत्स्वरूपको तत्त्वसे जाननेवालेकी दुर्लभताका प्रतिपादन।]

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ ३॥

मनुष्याणाम्, सहस्रेषु, कश्चित्, यतति, सिद्धये,
यतताम्, अपि, सिद्धानाम्, कश्चित्, माम्, वेत्ति, तत्त्वतः॥ ३॥

परंतु—

सहस्रेषु = हजारों
मनुष्याणाम् = मनुष्योंमें
कश्चित् = कोई एक
सिद्धये = मेरी प्राप्तिके लिये
यतति = यत्न करता है (और उन)
यतताम् = यत्न करनेवाले
सिद्धानाम् = योगियोंमें
अपि = भी
कश्चित् = कोई एक (मेरे परायण होकर)
माम् = मुझको

तत्त्वतः	= तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे	**वेत्ति**	= जानता है।

[अपरा और परा प्रकृतिके स्वरूपका वर्णन।]

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥ ४॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥ ५॥

भूमिः, आपः, अनलः, वायुः, खम्, मनः, बुद्धिः, एव, च,
अहङ्कारः, इति, इयम्, मे, भिन्ना, प्रकृतिः, अष्टधा॥ ४॥
अपरा, इयम्, इतः, तु, अन्याम्, प्रकृतिम्, विद्धि, मे, पराम्,
जीवभूताम्, महाबाहो, यया, इदम्, धार्यते, जगत्॥ ५॥

परंतु हे अर्जुन!—

भूमिः	= पृथ्वी,	**मे**	= मेरी
आपः	= जल,	**प्रकृतिः**	= प्रकृति है।
अनलः	= अग्नि,	**इयम्**	= यह (आठ प्रकारके भेदोंवाली)
वायुः	= वायु,		
खम्	= आकाश,		
मनः	= मन,	**तु**	= तो
बुद्धिः	= बुद्धि	**अपरा**	= अपरा अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है (और)
च	= और		
अहङ्कारः	= अहंकार		
एव	= भी—	**महाबाहो**	= हे महाबाहो!
इति	= इस प्रकार	**इतः**	= इससे
इयम्	= यह	**अन्याम्**	= दूसरीको,
अष्टधा	= आठ प्रकारसे	**यया**	= जिससे
भिन्ना	= विभाजित	**इदम्**	= यह (सम्पूर्ण)

जगत्	= जगत्	**जीवभूताम्**	= जीवरूपा
धार्यते	= धारण किया जाता है,	**पराम्**	= परा अर्थात् चेतन
		प्रकृतिम्	= प्रकृति
मे	= मेरी	**विद्धि**	= जान।

[उक्त दोनों प्रकृतियोंको सम्पूर्ण भूतोंका कारण और अपनेको महाकारण बतलाना।]

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥ ६॥

एतद्योनीनि, भूतानि, सर्वाणि, इति, उपधारय,
अहम्, कृत्स्नस्य, जगतः, प्रभवः, प्रलयः, तथा॥ ६॥

और हे अर्जुन! तू—

इति	= ऐसा	**कृत्स्नस्य**	= सम्पूर्ण
उपधारय	= समझ (कि)	**जगतः**	= जगत्‌का
सर्वाणि	= सम्पूर्ण	**प्रभवः**	= प्रभव
भूतानि	= भूत	**तथा**	= तथा
एतद्योनीनि	= इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पन्न होनेवाले हैं (और)	**प्रलयः**	= प्रलय हूँ (अर्थात् सम्पूर्ण जगत्‌का मूल कारण हूँ।)
अहम्	= मैं		

[अपने स्वरूपकी व्यापकताका वर्णन।]

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ ७॥

मत्तः, परतरम्, न, अन्यत्, किञ्चित्, अस्ति, धनञ्जय,
मयि, सर्वम्, इदम्, प्रोतम्, सूत्रे, मणिगणाः, इव॥ ७॥

इसलिये—

धनञ्जय	=	हे धनंजय!	**इदम्**	=	यह
मत्तः	=	मुझसे	**सर्वम्**	=	सम्पूर्ण (जगत्)
अन्यत्	=	भिन्न दूसरा	**सूत्रे**	=	सूत्रमें (सूत्रके)
किञ्चित्	=	कोई भी	**मणिगणाः**	=	मणियोंके
परतरम्	=	परम (कारण)	**इव**	=	सदृश
न	=	नहीं	**मयि**	=	मुझमें
अस्ति	=	है।	**प्रोतम्**	=	गुँथा हुआ है।

[रसादिरूपसे जलादिमें अपनी व्यापकताका कथन।]

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥ ८॥

रसः, अहम्, अप्सु, कौन्तेय, प्रभा, अस्मि, शशिसूर्ययोः,
प्रणवः, सर्ववेदेषु, शब्दः, खे, पौरुषम्, नृषु॥ ८॥

कैसे कि—

कौन्तेय	=	हे अर्जुन!	**अस्मि**	=	हूँ,
अहम्	=	मैं	**सर्ववेदेषु**	=	सम्पूर्ण वेदोंमें
अप्सु	=	जलमें	**प्रणवः**	=	ओंकार (हूँ),
रसः	=	रस (हूँ),	**खे**	=	आकाशमें
शशिसूर्ययोः	=	चन्द्रमा और सूर्यमें	**शब्दः**	=	शब्द (और)
			नृषु	=	पुरुषोंमें
प्रभा	=	प्रकाश	**पौरुषम्**	=	पुरुषत्व (हूँ)।

[गन्धादिरूपसे पृथ्वी आदिमें अपनी व्यापकताका कथन।]

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु॥ ९॥

पुण्यः, गन्धः, पृथिव्याम्, च, तेजः, च, अस्मि, विभावसौ,
जीवनम्, सर्वभूतेषु, तपः, च, अस्मि, तपस्विषु॥ ९ ॥

तथा मैं—

पृथिव्याम् = पृथ्वीमें		**सर्वभूतेषु** = सम्पूर्ण भूतोंमें (उनका)	
पुण्यः = पवित्र			
गन्धः = गन्ध*			
च = और		**जीवनम्** = जीवन (हूँ)	
विभावसौ = अग्निमें		**च** = और	
तेजः = तेज		**तपस्विषु** = तपस्वियोंमें	
अस्मि = हूँ		**तपः** = तप	
च = तथा		**अस्मि** = हूँ।	

[बीजादिरूपसे सम्पूर्ण भूतोंमें अपनी व्यापकताका कथन।]

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्॥ १० ॥

बीजम्, माम्, सर्वभूतानाम्, विद्धि, पार्थ, सनातनम्,
बुद्धिः, बुद्धिमताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम्॥ १० ॥

तथा—

पार्थ = हे अर्जुन! (तू)	**अहम्** = मैं
सर्वभूतानाम् = सम्पूर्ण भूतोंका	**बुद्धिमताम्** = बुद्धिमानोंकी
सनातनम् = सनातन	**बुद्धिः** = बुद्धि (और)
बीजम् = बीज	**तेजस्विनाम्** = तेजस्वियोंका
माम् = मुझको (ही)	**तेजः** = तेज
विद्धि = जान।	**अस्मि** = हूँ।

* शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसे इस प्रसंगमें इनके कारणरूप तन्मात्राओंका ग्रहण है, इस बातको स्पष्ट करनेके लिये उनके साथ पवित्र शब्द जोड़ा गया है।

[बलादिरूपसे अपनी व्यापकताका कथन।]

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥ ११ ॥

बलम्, बलवताम्, च, अहम्, कामरागविवर्जितम्,
धर्माविरुद्धः, भूतेषु, कामः, अस्मि, भरतर्षभ॥ ११ ॥

और—

भरतर्षभ	= हे भरतश्रेष्ठ!	**च**	= और
अहम्	= मैं	**भूतेषु**	= सब भूतोंमें
बलवताम्	= बलवानोंका	**धर्माविरुद्धः**	= धर्मके अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल
कामराग-विवर्जितम्	= आसक्ति और कामनाओंसे रहित		
बलम्	= बल अर्थात् सामर्थ्य हूँ	**कामः**	= काम
		अस्मि	= हूँ।

[परमात्म-सत्तासे त्रिगुणमय सम्पूर्ण पदार्थोंके सत्तावान् होनेका कथन।]

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥ १२ ॥

ये, च, एव, सात्त्विकाः, भावाः, राजसाः, तामसाः, च, ये,
मत्तः, एव, इति, तान्, विद्धि, न, तु, अहम्, तेषु, ते, मयि॥ १२ ॥

तथा—

च	= और	**ये**	= जो
एव	= भी	**राजसाः**	= रजोगुणसे
ये	= जो	**च**	= तथा
सात्त्विकाः	= सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले	**तामसाः**	= तमोगुणसे होनेवाले भाव हैं,
भावाः	= भाव हैं (और)		

तान्	= उन सबको (तू)	**तु**	= परंतु (वास्तवमें)[१]
		तेषु	= उनमें
मत्तः, एव	= मुझसे ही (होनेवाले हैं)	**अहम्**	= मैं (और)
		ते	= वे
इति	= ऐसा	**मयि**	= मुझमें
विद्धि	= जान	**न**	= नहीं हैं।

[अपनेको (भगवान्‌को) तत्त्वसे न जाननेके कारणका कथन।]

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥ १३ ॥

त्रिभिः, गुणमयैः, भावैः, एभिः, सर्वम्, इदम्, जगत्,
मोहितम्, न, अभिजानाति, माम्, एभ्यः, परम्, अव्ययम्॥ १३ ॥

किंतु—

गुणमयैः	= गुणोंके कार्यरूप सात्त्विक, राजस और तामस—	**मोहितम्**	= मोहित हो रहा है, (इसीलिये)
एभिः	= इन	**एभ्यः**	= इन तीनों गुणोंसे
त्रिभिः	= तीनों प्रकारके	**परम्**	= परे
भावैः	= भावोंसे[२]	**माम्**	= मुझ
इदम्	= यह	**अव्ययम्**	= अविनाशीको
सर्वम्	= सारा		
जगत्	= संसार— प्राणिसमुदाय	**न**	= नहीं
		अभिजानाति	= जानता।

१-गीता अध्याय ९ श्लोक ४-५ में देखना चाहिये।

२-अर्थात् राग-द्वेषादि विकारोंसे और सम्पूर्ण विषयोंसे।

[अपनी दुस्तर मायासे तरनेके लिये सहज उपायका कथन।]

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ १४॥

दैवी, हि, एषा, गुणमयी, मम, माया, दुरत्यया,
माम्, एव, ये, प्रपद्यन्ते, मायाम्, एताम्, तरन्ति, ते॥ १४॥

हि = क्योंकि		**माम्** = मुझको	
एषा = यह		**एव** = ही (निरन्तर)	
दैवी = अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत		**प्रपद्यन्ते** = भजते हैं,	
गुणमयी = त्रिगुणमयी		**ते** = वे	
मम = मेरी		**एताम्** = इस	
माया = माया		**मायाम्** = मायाको	
दुरत्यया = बड़ी दुस्तर है; (परंतु)		**तरन्ति** = उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।	
ये = जो पुरुष (केवल)			

[पापात्मा मूढ़ मनुष्योंकी भजनमें प्रवृत्ति न होनेके कारणका कथन।]

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥ १५॥

न, माम्, दुष्कृतिनः, मूढाः, प्रपद्यन्ते, नराधमाः,
मायया, अपहृतज्ञानाः, आसुरम्, भावम्, आश्रिताः॥ १५॥

ऐसा सुगम उपाय होनेपर भी—

मायया = मायाके द्वारा	**आसुरम्, भावम्** = आसुर स्वभावको
अपहृतज्ञानाः = जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, (ऐसे)	**आश्रिताः** = धारण किये हुए,
	नराधमाः = मनुष्योंमें नीच,

दुष्कृतिनः	= दूषित कर्म करनेवाले	**माम्**	= मुझको
		न	= नहीं
मूढाः	= मूढ़लोग	**प्रपद्यन्ते**	= भजते

[चार प्रकारके पुण्यात्मा भक्तोंका कथन।]

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ १६॥

चतुर्विधाः, भजन्ते, माम्, जनाः, सुकृतिनः, अर्जुन,
आर्तः, जिज्ञासुः, अर्थार्थी, ज्ञानी, च, भरतर्षभ॥ १६॥

और—

भरतर्षभ अर्जुन	= हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन!	**च**	= और
		ज्ञानी	= ज्ञानी—(ऐसे)
सुकृतिनः	= उत्तम कर्म करनेवाले	**चतुर्विधाः**	= चार प्रकारके
अर्थार्थी	= अर्थार्थी,[1]	**जनाः**	= भक्तजन
आर्तः	= आर्त,[2]	**माम्**	= मुझको
जिज्ञासुः	= जिज्ञासु[3]	**भजन्ते**	= भजते हैं।

[ज्ञानी भक्तकी श्रेष्ठताका कथन।]

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥ १७॥

तेषाम्, ज्ञानी, नित्ययुक्तः, एकभक्तिः, विशिष्यते,
प्रियः, हि, ज्ञानिनः, अत्यर्थम्, अहम्, सः, च, मम, प्रियः॥ १७॥

तेषाम्	= उनमें	**एकभक्तिः**	= अनन्य प्रेमभक्तिवाला
नित्ययुक्तः	= नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित	**ज्ञानी**	= ज्ञानी भक्त

१–सांसारिक पदार्थोंके लिये भजनेवाला।

२–संकट-निवारणके लिये भजनेवाला।

३–मुझको यथार्थरूपसे जाननेकी इच्छासे भजनेवाला।

विशिष्यते	= अति उत्तम है;	**अत्यर्थम्**	= अत्यन्त
हि	= क्योंकि (मुझको तत्त्वसे जाननेवाले)	**प्रियः**	= प्रिय हूँ
		च	= और
		सः	= वह ज्ञानी
ज्ञानिनः	= ज्ञानीको	**मम**	= मुझे (अत्यन्त)
अहम्	= मैं	**प्रियः**	= प्रिय है।

[सभी भक्तोंको उदार और ज्ञानीको अपना आत्मा बतलाना।]

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥ १८ ॥

उदाराः, सर्वे, एव, एते, ज्ञानी, तु, आत्मा, एव, मे, मतम्,
आस्थितः, सः, हि, युक्तात्मा, माम्, एव, अनुत्तमाम्, गतिम्॥ १८ ॥

यद्यपि—

एते	= ये	**सः**	= वह
सर्वे, एव	= सभी	**युक्तात्मा**	= मद्गत मनबुद्धिवाला (ज्ञानी भक्त)
उदाराः	= उदार हैं,		
तु	= परंतु		
ज्ञानी	= ज्ञानी (तो साक्षात्)	**अनुत्तमाम्**	= अति उत्तम
		गतिम्	= गतिस्वरूप
आत्मा	= मेरा स्वरूप	**माम्**	= मुझमें
एव	= ही है—(ऐसा)	**एव**	= ही
मे	= मेरा		
मतम्	= मत है;	**आस्थितः**	= अच्छी प्रकार स्थित है।
हि	= क्योंकि		

[ज्ञानी भक्तकी दुर्लभताका कथन।]

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ १९ ॥

बहूनाम्, जन्मनाम्, अन्ते, ज्ञानवान्, माम्, प्रपद्यते,
वासुदेवः, सर्वम्, इति, सः, महात्मा, सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

और जो—

बहूनाम् = बहुत		**इति** = इस प्रकार	
जन्मनाम् = जन्मोंके		**माम्** = मुझको	
अन्ते = अन्तके जन्ममें		**प्रपद्यते** = भजता है,	
ज्ञानवान् = तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष,		**सः** = वह	
सर्वम् = सब कुछ		**महात्मा** = महात्मा	
वासुदेवः = वासुदेव ही है[1]		**सुदुर्लभः** = अत्यन्त दुर्लभ है।	

[अन्य देवताओंके भजनके हेतुका कथन।]

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥ २०॥

कामैः, तैः, तैः, हृतज्ञानाः, प्रपद्यन्ते, अन्यदेवताः,
तम्, तम्, नियमम्, आस्थाय, प्रकृत्या, नियताः, स्वया॥ २०॥

और हे अर्जुन!—

तैः, तैः = उन-उन	**नियताः** = प्रेरित होकर
कामैः = भोगोंकी कामनाद्वारा	**तम्, तम्** = उस-उस
हृतज्ञानाः = जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, (वे लोग)	**नियमम्** = नियमको
	आस्थाय = धारण करके[2]
	अन्यदेवताः = अन्य देवताओंको
स्वया = अपने	**प्रपद्यन्ते** = भजते हैं अर्थात् पूजते हैं।
प्रकृत्या = स्वभावसे	

१-अर्थात् वासुदेवके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं।

२-अर्थात् जिस देवताकी पूजाके लिये जो-जो नियम लोकमें प्रसिद्ध है, उस-उस नियमको धारण करके।

[अन्य देवताओंमें श्रद्धा स्थिर करनेका कथन।]

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥ २१ ॥

यः, यः, याम्, याम्, तनुम्, भक्तः, श्रद्धया, अर्चितुम्, इच्छति,
तस्य, तस्य, अचलाम्, श्रद्धाम्, ताम्, एव, विदधामि, अहम्॥ २१ ॥

यः, यः	=	जो-जो	**तस्य**	=	उस-
भक्तः	=	सकाम भक्त	**तस्य**	=	उस भक्तकी
याम्, याम्	=	जिस-जिस	**श्रद्धाम्**	=	श्रद्धाको
तनुम्	=	देवताके स्वरूपको	**अहम्**	=	मैं
श्रद्धया	=	श्रद्धासे	**ताम्, एव**	=	उसी देवताके प्रति
अर्चितुम्	=	पूजना	**अचलाम्**	=	स्थिर
इच्छति	=	चाहता है;	**विदधामि**	=	करता हूँ।

[अन्य देवताओंकी उपासनाका फल।]

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्॥ २२ ॥

सः, तया, श्रद्धया, युक्तः, तस्य, आराधनम्, ईहते,
लभते, च, ततः, कामान्, मया, एव, विहितान्, हि, तान्॥ २२ ॥

तथा—

सः	=	वह पुरुष	**ततः**	=	उस देवतासे
तया	=	उस	**मया**	=	मेरे द्वारा
श्रद्धया	=	श्रद्धासे	**एव**	=	ही
युक्तः	=	युक्त होकर	**विहितान्**	=	विधान किये हुए
तस्य	=	उस देवताका	**तान्**	=	उन
आराधनम्	=	पूजन	**कामान्**	=	इच्छित भोगोंको
ईहते	=	करता है	**हि**	=	निःसन्देह
च	=	और	**लभते**	=	प्राप्त करता है।

[अन्य देवताओंकी उपासनाके फलको नाशवान् बतलाकर अपनी (उपासनाका फल अपनी) प्राप्ति बतलाना।]

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥ २३ ॥

अन्तवत्, तु, फलम्, तेषाम्, तत्, भवति, अल्पमेधसाम्, देवान्, देवयजः, यान्ति, मद्भक्ताः, यान्ति, माम्, अपि॥ २३ ॥

तु	=	परंतु	**देवान्**	=	देवताओंको
तेषाम्	=	उन	**यान्ति**	=	प्राप्त होते हैं (और)
अल्पमेधसाम्	=	अल्प बुद्धिवालोंका	**मद्भक्ताः**	=	मेरे भक्त (चाहे जैसे ही भजें, अन्तमें वे)
तत्	=	वह	**माम्**	=	मुझको
फलम्	=	फल	**अपि**	=	ही
अन्तवत्	=	नाशवान्	**यान्ति**	=	प्राप्त होते हैं।
भवति	=	है (तथा वे)			
देवयजः	=	देवताओंको पूजनेवाले			

[अपने गुण, प्रभाव और स्वरूपको न जाननेके हेतुका कथन।]

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥ २४ ॥

अव्यक्तम्, व्यक्तिम्, आपन्नम्, मन्यन्ते, माम्, अबुद्धयः, परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, अव्ययम्, अनुत्तमम्॥ २४ ॥

ऐसा होनेपर भी सब मनुष्य मेरा भजन नहीं करते, इसका कारण यह है कि—

अबुद्धयः	=	बुद्धिहीन पुरुष	**अव्ययम्**	=	अविनाशी
मम	=	मेरे	**परम्**	=	परम
अनुत्तमम्	=	अनुत्तम	**भावम्**	=	भावको

अजानन्तः = न जानते हुए
अव्यक्तम् = मन-इन्द्रियोंसे परे
माम् = मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्माको
(मनुष्यकी भाँति जन्मकर)
व्यक्तिम् = व्यक्ति-भावको
आपन्नम् = प्राप्त हुआ
मन्यन्ते = मानते हैं।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥ २५ ॥

न, अहम्, प्रकाशः, सर्वस्य, योगमायासमावृतः,
मूढः, अयम्, न, अभिजानाति, लोकः, माम्, अजम्, अव्ययम्॥ २५॥

तथा—

योगमाया-समावृतः = अपनी योगमायासे छिपा हुआ
अहम् = मैं
सर्वस्य = सबके
प्रकाशः = प्रत्यक्ष
न = नहीं होता, (इसलिये)
अयम् = यह
मूढः = अज्ञानी
लोकः = जनसमुदाय
माम् = मुझ
अजम् = जन्मरहित
अव्ययम् = अविनाशी परमेश्वरको
न = नहीं
अभिजानाति = जानता अर्थात् मुझको जन्मने-मरनेवाला समझता है।

[अपनी सर्वज्ञताका कथन।]

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥ २६ ॥

वेद, अहम्, समतीतानि, वर्तमानानि, च, अर्जुन,
भविष्याणि, च, भूतानि, माम्, तु, वेद, न, कश्चन॥ २६ ॥

और—

अर्जुन	=	हे अर्जुन!	**वेद**	=	जानता हूँ,
समतीतानि	=	पूर्वमें व्यतीत हुए	**तु**	=	परंतु
च	=	और	**माम्**	=	मुझको
वर्तमानानि	=	वर्तमानमें स्थित	**कश्चन**	=	कोई भी (श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष)
च	=	तथा	**न**	=	नहीं
भविष्याणि	=	आगे होनेवाले	**वेद**	=	जानता।
भूतानि	=	सब भूतोंको			
अहम्	=	मैं			

[अपनेको न जाननेके हेतुका कथन।]

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप॥ २७॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन, द्वन्द्वमोहेन, भारत,
सर्वभूतानि, सम्मोहम्, सर्गे, यान्ति, परन्तप॥ २७॥

क्योंकि—

भारत	=	हे भरतवंशी	**द्वन्द्वमोहेन**	=	सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे
परन्तप	=	अर्जुन!	**सर्वभूतानि**	=	सम्पूर्ण प्राणी
सर्गे	=	संसारमें	**सम्मोहम्**	=	अत्यन्त अज्ञताको
इच्छाद्वेष-समुत्थेन	=	इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न	**यान्ति**	=	प्राप्त हो रहे हैं।

[अपनेको भजनेवाले भक्तोंके लक्षण।]

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥ २८॥

येषाम्, तु, अन्तगतम्, पापम्, जनानाम्, पुण्यकर्मणाम्,
ते, द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः, भजन्ते, माम्, दृढव्रताः॥ २८॥

तु	=	परंतु (निष्कामभावसे)	**अन्तगतम्**	=	नष्ट हो गया है,
			ते	=	वे
पुण्यकर्मणाम्	=	श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले	**द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः**	=	राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त
येषाम्	=	जिन	**दृढव्रताः**	=	दृढ़निश्चयी भक्त
जनानाम्	=	पुरुषोंका	**माम्**	=	मुझको (सब प्रकारसे)
पापम्	=	पाप	**भजन्ते**	=	भजते हैं।

[भगवान्का आश्रय लेकर यत्न करनेवालोंको ब्रह्मप्राप्ति।]

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥ २९॥

जरामरणमोक्षाय, माम्, आश्रित्य, यतन्ति, ये,
ते, ब्रह्म, तत्, विदुः, कृत्स्नम्, अध्यात्मम्, कर्म, च, अखिलम्॥ २९॥

और—

ये	=	जो	**ब्रह्म**	=	ब्रह्मको,
माम्	=	मेरे	**कृत्स्नम्**	=	सम्पूर्ण
आश्रित्य	=	शरण होकर			
जरामरणमोक्षाय	=	जरा और मरणसे छूटनेके लिये	**अध्यात्मम्**	=	अध्यात्मको
			च	=	तथा
यतन्ति	=	यत्न करते हैं,	**अखिलम्**	=	सम्पूर्ण
ते	=	वे (पुरुष)	**कर्म**	=	कर्मको
तत्	=	उस	**विदुः**	=	जानते हैं।

[अपने समग्र स्वरूपको जाननेकी महिमाका कथन।]

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥ ३०॥

साधिभूताधिदैवम्, माम्, साधियज्ञम्, च, ये, विदुः,
प्रयाणकाले, अपि, च, माम्, ते, विदुः, युक्तचेतसः॥ ३०॥

और—

ये	= जो पुरुष	**अपि**	= भी
साधि-भूताधिदैवम्	= अधिभूत और अधिदैवके सहित	**विदुः**	= जानते हैं*
च	= तथा	**ते**	= वे
साधियज्ञम्	= अधियज्ञके सहित (सबका आत्मरूप)	**युक्तचेतसः**	= युक्तचित्तवाले पुरुष
माम्	= मुझे	**माम्**	= मुझे
प्रयाणकाले	= अन्तकालमें	**च**	= ही
		विदुः	= जानते हैं अर्थात् प्राप्त हो जाते हैं।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

हरिः ॐ तत्सत्   हरिः ॐ तत्सत्   हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

* अर्थात् जैसे भाप, बादल, धूप, पानी और बर्फ यह सभी जलस्वरूप हैं, वैसे ही अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ आदि सब कुछ वासुदेवस्वरूप हैं, ऐसे जो जानते हैं।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथाष्टमोऽध्यायः

__प्रधान-विषय__—१ से ७ तक ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादिके विषयमें अर्जुनके सात प्रश्न और उनका उत्तर, (८—२२) भक्तियोगका विषय, (२३—२८) शुक्ल और कृष्णमार्गका विषय।

[ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादि-विषयक अर्जुनके सात प्रश्न।]

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते॥ १॥

किम्, तत्, ब्रह्म, किम्, अध्यात्मम्, किम्, कर्म, पुरुषोत्तम,
अधिभूतम्, च, किम्, प्रोक्तम्, अधिदैवम्, किम्, उच्यते॥ १॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको न समझकर अर्जुन बोले—

पुरुषोत्तम	=	हे पुरुषोत्तम!	**अधिभूतम्**	=	अधिभूत (नामसे)
तत्	=	वह			
ब्रह्म	=	ब्रह्म	**किम्**	=	क्या
किम्	=	क्या है?	**प्रोक्तम्**	=	कहा गया है
अध्यात्मम्	=	अध्यात्म	**च**	=	और
किम्	=	क्या है?	**अधिदैवम्**	=	अधिदैव
कर्म	=	कर्म	**किम्**	=	किसको
किम्	=	क्या है?	**उच्यते**	=	कहते हैं?

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः॥ २॥

अधियज्ञः, कथम्, कः, अत्र, देहे, अस्मिन्, मधुसूदन, प्रयाणकाले, च, कथम्, ज्ञेयः, असि, नियतात्मभिः ॥ २ ॥

और—

मधुसूदन	=	हे मधुसूदन!	**च**	=	तथा
अत्र	=	यहाँ	**नियतात्मभिः**	=	युक्त चित्तवाले पुरुषोंद्वारा
अधियज्ञः	=	अधियज्ञ	**प्रयाणकाले**	=	अन्त समयमें (आप)
कः	=	कौन है? (और वह)	**कथम्**	=	किस प्रकार
अस्मिन्	=	इस	**ज्ञेयः**	=	जाननेमें आते
देहे	=	शरीरमें	**असि**	=	हैं?
कथम्	=	कैसे है?			

[ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मके विषयमें अर्जुनके तीन प्रश्नोंका उत्तर।]

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसञ्ज्ञितः ॥ ३ ॥

अक्षरम्, ब्रह्म, परमम्, स्वभावः, अध्यात्मम्, उच्यते, भूतभावोद्भवकरः, विसर्गः, कर्मसञ्ज्ञितः ॥ ३ ॥

इस प्रकार अर्जुनके प्रश्न करनेपर श्रीभगवान् बोले, अर्जुन!—

परमम्	=	परम	**उच्यते**	=	कहा जाता है (तथा)
अक्षरम्	=	अक्षर	**भूतभावोद्भवकरः**	=	भूतोंके भावको उत्पन्न करनेवाला (जो)
ब्रह्म	=	'ब्रह्म' है,	**विसर्गः**	=	त्याग है, (वह)
स्वभावः	=	अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा	**कर्मसञ्ज्ञितः**	=	'कर्म' नामसे कहा गया है।
अध्यात्मम्	=	'अध्यात्म' (नामसे)			

[अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञके विषयमें अर्जुनके तीन प्रश्नोंका उत्तर।]

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर॥ ४॥

अधिभूतम्, क्षरः, भावः, पुरुषः, च, अधिदैवतम्,
अधियज्ञः, अहम्, एव, अत्र, देहे, देहभृताम्, वर॥ ४॥

तथा—

क्षरः, भावः	=	उत्पत्ति-विनाश धर्मवाले सब पदार्थ
अधिभूतम्	=	अधिभूत हैं,
पुरुषः	=	हिरण्यमय पुरुष*
अधिदैवतम्	=	अधिदैव है
च	=	और
देहभृताम्, वर	=	हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन!
अत्र	=	इस
देहे	=	शरीरमें
अहम्	=	मैं वासुदेव
एव	=	ही (अन्तर्यामीरूपसे)
अधियज्ञः	=	अधियज्ञ हूँ।

[अन्तकालमें भगवत्स्मरणका फल (अर्जुनके सातवें प्रश्नका उत्तर)।]

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ ५॥

अन्तकाले, च, माम्, एव, स्मरन्, मुक्त्वा, कलेवरम्,
यः, प्रयाति, सः, मद्भावम्, याति, न, अस्ति, अत्र, संशयः॥ ५॥

और

यः	=	जो पुरुष
अन्तकाले, च	=	अन्तकालमें भी
माम्	=	मुझको
एव	=	ही
स्मरन्	=	स्मरण करता हुआ
कलेवरम्	=	शरीरको
मुक्त्वा	=	त्यागकर
प्रयाति	=	जाता है,

* जिसको शास्त्रोंमें "सूत्रात्मा", "हिरण्यगर्भ", "प्रजापति", "ब्रह्मा" इत्यादि नामोंसे कहा है।

सः = वह

मद्भावम् = मेरे साक्षात् स्वरूपको

याति = प्राप्त होता है—

अत्र = इसमें (कुछ भी)

संशयः = संशय

न = नहीं

अस्ति = है।

[अन्तकालके भावनानुसार गति होनेका कथन।]

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ ६॥

यम्, यम्, वा, अपि, स्मरन्, भावम्, त्यजति, अन्ते, कलेवरम्,
तम्, तम्, एव, एति, कौन्तेय, सदा, तद्भावभावितः॥ ६॥

कारण कि—

कौन्तेय = हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! (यह मनुष्य)

अन्ते = अन्तकालमें

यम्, यम् = जिस-जिस

वा, अपि = भी

भावम् = भावको

स्मरन् = स्मरण करता हुआ

कलेवरम् = शरीरका

त्यजति = त्याग करता है,

तम्, तम् = उस-उसको

एव = ही

एति = प्राप्त होता है; (क्योंकि वह)

सदा = सदा

तद्भावभावितः = उसी भावसे भावित रहा है।

[निरन्तर भगवच्चिन्तन करते हुए युद्ध करनेकी आज्ञा एवं उसका फल]

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥ ७॥

तस्मात्, सर्वेषु, कालेषु, माम्, अनुस्मर, युध्य, च,
मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, माम्, एव, एष्यसि, असंशयम्॥ ७॥

तस्मात् = इसलिये (हे अर्जुन! तू)

सर्वेषु = सब

कालेषु = समयमें (निरन्तर)

माम्	=	मेरा	**अर्पितमनोबुद्धिः**	=	अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर (तू)
अनुस्मर	=	स्मरण कर	**असंशयम्**	=	निःसन्देह
च	=	और	**माम्**	=	मुझको
युध्य	=	युद्ध भी कर। (इस प्रकार)	**एव**	=	ही
मयि	=	मुझमें	**एष्यसि**	=	प्राप्त होगा।

[निरन्तर चिन्तनसे परम दिव्य पुरुषकी प्राप्ति]

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥ ८॥

अभ्यासयोगयुक्तेन, चेतसा, नान्यगामिना,
परमम्, पुरुषम्, दिव्यम्, याति, पार्थ, अनुचिन्तयन्॥ ८॥

और—

पार्थ	=	हे पार्थ! (यह नियम है कि)	**अनुचिन्तयन्**	=	निरन्तर चिन्तन करता हुआ (मनुष्य)
अभ्यासयोगयुक्तेन	=	परमेश्वरके ध्यानके अभ्यासरूप योगसे युक्त	**परमम्**	=	परम (प्रकाशस्वरूप)
			दिव्यम्	=	दिव्य
नान्यगामिना	=	दूसरी ओर न जानेवाले	**पुरुषम्**	=	पुरुषको अर्थात् परमेश्वरको (ही)
चेतसा	=	चित्तसे	**याति**	=	प्राप्त होता है।

[परमदिव्य पुरुषके स्वरूपका वर्णन और उसके चिन्तनकी विधि।]

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ ९॥

कविम्, पुराणम्, अनुशासितारम्, अणोः, अणीयांसम्, अनुस्मरेत्, यः, ,सर्वस्य, धातारम्, अचिन्त्यरूपम्, आदित्यवर्णम्, तमसः, परस्तात् ॥ ९ ॥

इससे—

यः	=	जो पुरुष
कविम्	=	सर्वज्ञ,
पुराणम्	=	अनादि,
अनुशासितारम्	=	सबके नियन्ता, *
अणोः, अणीयांसम्	=	सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म,
सर्वस्य	=	सबके
धातारम्	=	धारण-पोषण करनेवाले,
अचिन्त्यरूपम्	=	अचिन्त्यस्वरूप
आदित्यवर्णम्	=	सूर्यके सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप (और)
तमसः	=	अविद्यासे
परस्तात्	=	अति परे शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका
अनुस्मरेत्	=	स्मरण करता है—

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १० ॥

प्रयाणकाले, मनसा, अचलेन, भक्त्या, युक्तः, योगबलेन, च, एव, भ्रुवोः, मध्ये, प्राणम्, आवेश्य, सम्यक्, सः, तम्, परम्, पुरुषम्, उपैति, दिव्यम् ॥ १० ॥

सः	=	वह
भक्त्या, युक्तः	=	भक्तियुक्त पुरुष
प्रयाणकाले	=	अन्तकालमें (भी)
योगबलेन	=	योगबलसे
भ्रुवोः	=	भृकुटीके
मध्ये	=	मध्यमें
प्राणम्	=	प्राणको
सम्यक्	=	अच्छी प्रकार

* अन्तर्यामीरूपसे सब प्राणियोंके शुभ और अशुभ कर्मके अनुसार शासन करनेवाला।

आवेश्य	=	स्थापित करके	**दिव्यम्**	=	दिव्यरूप
च	=	फिर	**परम्**	=	परम
अचलेन	=	निश्चल			
मनसा	=	मनसे	**पुरुषम्**	=	पुरुष परमात्माको
(स्मरन्)	=	स्मरण करता हुआ	**एव**	=	ही
तम्	=	उस	**उपैति**	=	प्राप्त होता है—

[परमात्माके निर्गुणस्वरूपकी प्रशंसा।]

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये॥ ११॥

यत्, अक्षरम्, वेदविदः, वदन्ति, विशन्ति, यत्, यतयः, वीतरागाः,यत्, इच्छन्तः, ब्रह्मचर्यम्, चरन्ति, तत्, ते, पदम्, सङ्ग्रहेण, प्रवक्ष्ये॥ ११॥

और हे अर्जुन!—

वेदविदः	=	वेदके जाननेवाले विद्वान्			(और)
			यत्	=	जिस परमपदको
यत्	=	जिस सच्चिदानन्द-घनरूप परमपदको	**इच्छन्तः**	=	चाहनेवाले (ब्रह्मचारी लोग)
अक्षरम्	=	अविनाशी	**ब्रह्मचर्यम्**	=	ब्रह्मचर्यका
वदन्ति	=	कहते हैं,	**चरन्ति**	=	आचरण करते हैं,
वीतरागाः	=	आसक्तिरहित	**तत्**	=	उस
यतयः	=	यत्नशील संन्यासी महात्माजन	**पदम्**	=	परमपदको (मैं)
			ते	=	तेरे लिये
यत्	=	जिसमें	**सङ्ग्रहेण**	=	संक्षेपसे
विशन्ति	=	प्रवेश करते हैं	**प्रवक्ष्ये**	=	कहूँगा।

[अन्तकालमें योग-धारणाकी विधिसे निर्गुण ब्रह्मके जपध्यानका प्रकार एवं उसके फलका वर्णन।]

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥ १२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ १३॥

सर्वद्वाराणि, संयम्य, मनः, हृदि, निरुध्य, च, मूर्ध्नि, आधाय, आत्मनः, प्राणम्, आस्थितः, योगधारणाम्॥ १२॥

ओम्, इति, एकाक्षरम्, ब्रह्म, व्याहरन्, माम्, अनुस्मरन्, यः, प्रयाति, त्यजन्, देहम्, सः, याति, परमाम्, गतिम्॥ १३॥

हे अर्जुन!—

सर्वद्वाराणि	= सब इन्द्रियोंके द्वारोंको	**यः**	= जो पुरुष
संयम्य	= रोककर	**ओम्**	= 'ॐ'
च	= तथा	**इति**	= इस
मनः	= मनको	**एकाक्षरम्**	= एक अक्षररूप
हृदि	= हृद्देशमें	**ब्रह्म**	= ब्रह्मको
निरुध्य	= स्थिर करके, (फिर उस जीते हुए मनके द्वारा)	**व्याहरन्**	= उच्चारण करता हुआ (और उसके अर्थस्वरूप)
प्राणम्	= प्राणको	**माम्**	= मुझ निर्गुण ब्रह्मका
मूर्ध्नि	= मस्तकमें	**अनुस्मरन्**	= चिन्तन करता हुआ
आधाय	= स्थापित करके	**देहम्**	= शरीरको
आत्मनः	= परमात्मसम्बन्धी	**त्यजन्**	= त्यागकर
योगधारणाम्	= योगधारणामें	**प्रयाति**	= जाता है,
आस्थितः	= स्थित होकर	**सः**	= वह पुरुष

परमाम्, गतिम्	= परमगतिको	**याति**	=	प्राप्त होता है।

[भगवान्‌द्वारा अपनी प्राप्तिका सुगम उपाय—अनन्यप्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन बतलाया जाना।]

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ १४॥

अनन्यचेताः, सततम्, यः, माम्, स्मरति, नित्यशः,
तस्य, अहम्, सुलभः, पार्थ, नित्ययुक्तस्य, योगिनः॥ १४॥

और—

पार्थ	= हे अर्जुन!	**तस्य**	=	उस
यः	= जो पुरुष	**नित्ययुक्तस्य**	=	नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए
(मयि)	= मुझमें			
अनन्यचेताः	= अनन्यचित्त होकर	**योगिनः**	=	योगीके लिये
नित्यशः	= सदा ही	**अहम्**	=	मैं
सततम्	= निरन्तर	**सुलभः**	=	सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।
माम्	= मुझ पुरुषोत्तमको			
स्मरति	= स्मरण करता है,			

[भगवत्प्राप्तिसे पुनर्जन्मका अभाव और अन्य समस्त लोकोंको पुनरावृत्तिशील बतलाना।]

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥ १५॥

माम्, उपेत्य, पुनर्जन्म, दुःखालयम्, अशाश्वतम्,
न, आप्नुवन्ति, महात्मानः, संसिद्धिम्, परमाम्, गताः॥ १५॥

और वे—

परमाम्	= परम	**गताः**	=	प्राप्त
संसिद्धिम्	= सिद्धिको	**महात्मानः**	=	महात्माजन

माम्	= मुझको	**अशाश्वतम्**	= क्षणभंगुर
उपेत्य	= प्राप्त होकर	**पुनर्जन्म**	= पुनर्जन्मको
		न	= नहीं
दुःखालयम्	= दुःखोंके घर (एवं)	**आप्नुवन्ति**	= प्राप्त होते।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥ १६॥

आब्रह्मभुवनात्, लोकाः, पुनरावर्तिनः, अर्जुन,
माम्, उपेत्य, तु, कौन्तेय, पुनर्जन्म, न, विद्यते॥ १६॥

क्योंकि—

अर्जुन	= हे अर्जुन!	**माम्**	= मुझको
आब्रह्मभुवनात्	= ब्रह्मलोकपर्यन्त	**उपेत्य**	= प्राप्त होकर
लोकाः	= सब लोक		
पुनरावर्तिनः	= पुनरावर्ती* हैं,	**पुनर्जन्म**	= पुनर्जन्म
तु	= परंतु	**न**	= नहीं
कौन्तेय	= हे कुन्तीपुत्र!	**विद्यते**	= होता;

क्योंकि मैं कालातीत हूँ और ये सब ब्रह्मादिके लोक कालके द्वारा सीमित होनेसे अनित्य हैं।

[ब्रह्माके रात-दिनका परिमाण।]

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥ १७॥

सहस्रयुगपर्यन्तम्, अहः, यत्, ब्रह्मणः, विदुः,
रात्रिम्, युगसहस्रान्ताम्, ते, अहोरात्रविदः, जनाः॥ १७॥

हे अर्जुन!—

ब्रह्मणः	= ब्रह्माका	**अहः**	= { एक दिन है, (उसको)
यत्	= जो		

* अर्थात् जिनको प्राप्त होकर पीछे संसारमें आना पड़े ऐसे।

सहस्रयुगपर्यन्तम् = एक हजार चतुर्युगीतककी अवधिवाला (और)
रात्रिम् = रात्रिको (भी)
युगसहस्रान्ताम् = एक हजार चतुर्युगीतककी अवधिवाली
(ये) = जो पुरुष
विदुः = तत्त्वसे जानते हैं,*
ते = वे
जनाः = योगीजन
अहोरात्रविदः = कालके तत्त्वको जाननेवाले हैं।

[समस्त प्राणियोंकी बार-बार उत्पत्ति और प्रलयका वर्णन।]

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसञ्ज्ञके॥ १८॥

अव्यक्तात्, व्यक्तयः, सर्वाः, प्रभवन्ति, अहरागमे,
रात्र्यागमे, प्रलीयन्ते, तत्र, एव, अव्यक्तसञ्ज्ञके॥ १८॥

इसलिये वे यह भी जानते हैं कि—

सर्वाः = सम्पूर्ण
व्यक्तयः = चराचर भूतगण
अहरागमे = ब्रह्माके दिनके प्रवेशकालमें
अव्यक्तात् = अव्यक्तसे अर्थात् ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरसे
प्रभवन्ति = उत्पन्न होते हैं (और)
रात्र्यागमे = ब्रह्माकी रात्रिके प्रवेशकालमें
तत्र = उस
अव्यक्तसंज्ञके = अव्यक्त नामक ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरमें
एव = ही
प्रलीयन्ते = लीन हो जाते हैं।

* अर्थात् काल करके अवधिवाला होनेसे ब्रह्मलोकको भी अनित्य जानते हैं।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥ १९॥

भूतग्रामः, सः, एव, अयम्, भूत्वा, भूत्वा, प्रलीयते,
रात्र्यागमे, अवशः, पार्थ, प्रभवति, अहरागमे॥ १९॥

और—

पार्थ = हे पार्थ!		**रात्र्यागमे** = रात्रिके प्रवेशकालमें	
सः, एव = वही		**प्रलीयते** = लीन होता है (और)	
अयम् = यह		**अहरागमे** = दिनके प्रवेश-कालमें (फिर)	
भूतग्रामः = भूतसमुदाय		**प्रभवति** = उत्पन्न होता है।	
भूत्वा, भूत्वा = उत्पन्न हो-होकर			
अवशः = प्रकृतिके वशमें हुआ			

[एक अव्यक्तके परे दूसरे सनातन अव्यक्तका प्रतिपादन।]

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥ २०॥

परः, तस्मात्, तु, भावः, अन्यः, अव्यक्तः, अव्यक्तात्, सनातनः,
यः, सः, सर्वेषु, भूतेषु, नश्यत्सु, न, विनश्यति॥ २०॥

तु = परंतु	**सनातनः** = सनातन
तस्मात् = उस	**अव्यक्तः** = अव्यक्त
अव्यक्तात् = अव्यक्तसे (भी अति)	**भावः** = भाव है;
परः = परे	**सः** = वह परम दिव्य पुरुष
अन्यः = दूसरा अर्थात् विलक्षण	**सर्वेषु** = सब
यः = जो	**भूतेषु** = भूतोंके
	नश्यत्सु = नष्ट होनेपर (भी)
	न, विनश्यति = नष्ट नहीं होता।

[उसीको 'अक्षर', 'परमगति', 'परमधाम' एवं 'परमपुरुष' इन नामोंसे अभिहित करते हुए अनन्य भक्तिको इस परम पुरुषकी प्राप्तिका उपाय बतलाना।]

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ २१॥

अव्यक्तः, अक्षरः, इति, उक्तः, तम्, आहुः, परमाम्, गतिम्,
यम्, प्राप्य, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम॥ २१॥

और जो—

अव्यक्तः	= अव्यक्त	**यम्**	= { जिस सनातन अव्यक्तभावको
अक्षरः	= 'अक्षर'	**प्राप्य**	= प्राप्त होकर (मनुष्य)
इति	= इस (नामसे)	**न, निवर्तन्ते**	= वापस नहीं आते,
उक्तः	= कहा गया है,	**तत्**	= वह
तम्	= { उसी अक्षर नामक अव्यक्तभावको	**मम**	= मेरा
परमाम्, गतिम्	= परमगति	**परमम्**	= परम
आहुः	= कहते हैं, (तथा)	**धाम**	= धाम है।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥ २२॥

पुरुषः, सः, परः, पार्थ, भक्त्या, लभ्यः, तु, अनन्यया,
यस्य, अन्तःस्थानि, भूतानि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्॥ २२॥

पार्थ	= हे पार्थ!	**इदम्**	= यह
यस्य	= जिस परमात्माके	**सर्वम्**	= समस्त जगत्
अन्तःस्थानि	= अन्तर्गत	**ततम्**	= परिपूर्ण * है,
भूतानि	= सर्वभूत हैं (और)	**सः**	= वह सनातन अव्यक्त
येन	= { जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे	**परः**	= परम
		पुरुषः	= पुरुष

* गीता अध्याय ९ श्लोक ४ में देखना चाहिये।

तु	=	तो	**भक्त्या**	=	भक्तिसे (ही)
अनन्यया	=	अनन्य[1]	**लभ्यः**	=	प्राप्त होनेयोग्य है।

[शुक्ल-कृष्णमार्गका विषय कहनेके लिये भगवान्‌की प्रतिज्ञा।]

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ॥ २३॥

यत्र, काले, तु, अनावृत्तिम्, आवृत्तिम्, च, एव, योगिनः,
प्रयाताः, यान्ति, तम्, कालम्, वक्ष्यामि, भरतर्षभ ॥ २३ ॥

भरतर्षभ	=	हे अर्जुन!	**च**	=	और (जिस कालमें गये हुए)
यत्र	=	जिस	**आवृत्तिम्**	=	वापस लौटनेवाली गतिको
काले	=	कालमें[2]	**एव**	=	ही
प्रयाताः	=	शरीर त्यागकर गये हुए	**यान्ति**	=	प्राप्त होते हैं,
योगिनः	=	योगीजन	**तम्**	=	उस
तु	=	तो	**कालम्**	=	कालको अर्थात् दोनों मार्गोंको
अनावृत्तिम्	=	वापस न लौटनेवाली गतिको	**वक्ष्यामि**	=	कहूँगा।

[फलसहित शुक्लमार्गका कथन।]

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥ २४॥

अग्निः, ज्योतिः, अहः, शुक्लः, षण्मासाः, उत्तरायणम्,
तत्र, प्रयाताः, गच्छन्ति, ब्रह्म, ब्रह्मविदः, जनाः ॥ २४ ॥

१-गीता अध्याय ११ श्लोक ५५में इसका विस्तार देखना चाहिये।

२-यहाँ ''काल'' शब्दसे मार्ग समझना चाहिये, क्योंकि आगेके श्लोकोंमें भगवान्‌ने इसका नाम ''सृति'', ''गति'' ऐसा कहा है।

उन दो प्रकारके मार्गोंमेंसे जिस मार्गमें—

ज्योतिः = ज्योतिर्मय
अग्निः = अग्नि–अभिमानी देवता है,
अहः = दिनका अभिमानी देवता है,
शुक्लः = शुक्लपक्षका अभिमानी देवता है (और)
उत्तरायणम् = उत्तरायणके
षण्मासाः = छः महीनोंका अभिमानी देवता है,
तत्र = उस मार्गमें
प्रयाताः = मरकर गये हुए
ब्रह्मविदः = ब्रह्मवेत्ता*
जनाः = योगीजन (उपर्युक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले जाये जाकर)
ब्रह्म = ब्रह्मको
गच्छन्ति = प्राप्त होते हैं।

[फलसहित कृष्णमार्गका कथन।]

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते॥ २५॥

धूमः, रात्रिः, तथा, कृष्णः, षण्मासाः, दक्षिणायनम्,
तत्र, चान्द्रमसम्, ज्योतिः, योगी, प्राप्य, निवर्तते॥ २५॥

तथा जिस मार्गमें—

धूमः = धूमाभिमानी देवता है,
रात्रिः = रात्रि–अभिमानी देवता है
तथा = तथा
कृष्णः = कृष्णपक्षका अभिमानी देवता है (और)
दक्षिणायनम् = दक्षिणायनके
षण्मासाः = छः महीनोंका अभिमानी देवता है,
तत्र = उस मार्गमें (मरकर गया हुआ)

* अर्थात् परमेश्वरकी उपासनासे परमेश्वरको परोक्षभावसे जाननेवाले।

योगी	= सकाम कर्म करनेवाला योगी (उपर्युक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले गया हुआ)	**ज्योतिः**	= ज्योतिको
		प्राप्य	= प्राप्त होकर (स्वर्गमें अपने शुभ कर्मोंका फल भोगकर)
चान्द्रमसम्	= चन्द्रमाकी	**निवर्तते**	= वापस आता है।

[शुक्ल-कृष्ण गतिकी अनादिताका कथन।]

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः॥ २६॥

शुक्लकृष्णे, गती, हि, एते, जगतः, शाश्वते, मते,
एकया, याति, अनावृत्तिम्, अन्यया, आवर्तते पुनः॥ २६॥

हि	= क्योंकि	**अनावृत्तिम्**	= जिससे वापस नहीं लौटना पड़ता, उस परमगतिको
जगतः	= जगत्के		
एते	= ये दो प्रकारके—		
शुक्लकृष्णे	= शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान	**याति**	= प्राप्त होता है (और)
गती	= मार्ग	**अन्यया**	= दूसरेके द्वारा (गया हुआ[2])
शाश्वते	= सनातन	**पुनः**	= फिर
मते	= माने गये हैं (इनमें)	**आवर्तते**	= वापस आता है अर्थात् जन्म-मृत्युको प्राप्त होता है।
एकया	= एकके द्वारा (गया हुआ[1])		

१-अर्थात् इसी अध्यायके श्लोक २४ के अनुसार अर्चिमार्गसे गया हुआ योगी।
२-अर्थात् इसी अध्यायके श्लोक २५ के अनुसार धूममार्गसे गया हुआ सकाम कर्मी।

[दोनों गतियोंको जाननेवाले योगीकी प्रशंसा एवं अर्जुनको योगी बननेके लिये आज्ञा।]

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन॥ २७॥

न, एते, सृती, पार्थ, जानन्, योगी, मुह्यति, कश्चन, तस्मात्, सर्वेषु, कालेषु, योगयुक्तः, भव, अर्जुन॥ २७॥

और—

पार्थ	=	हे पार्थ! (इस प्रकार)
एते	=	इन दोनों
सृती	=	मार्गोंको
जानन्	=	तत्त्वसे जानकर
कश्चन	=	कोई भी
योगी	=	योगी
न, मुह्यति	=	मोहित नहीं होता*
तस्मात्	=	इस कारण
अर्जुन	=	हे अर्जुन! (तू)
सर्वेषु	=	सब
कालेषु	=	कालमें
योगयुक्तः	=	समबुद्धिरूप योगसे युक्त
भव	=	हो अर्थात् निरन्तर मेरी प्राप्तिके लिये साधन करनेवाला हो।

[अध्यायमें वर्णित तत्त्वको जाननेका फल।]

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥ २८॥

वेदेषु, यज्ञेषु, तपःसु, च, एव, दानेषु, यत्, पुण्यफलम्, प्रदिष्टम्, अत्येति, तत्, सर्वम्, इदम्, विदित्वा, योगी, परम्, स्थानम्, उपैति, च, आद्यम्॥ २८॥

---

* अर्थात् फिर वह निष्कामभावसे ही साधन करता है, कामनाओंमें नहीं फँसता।

क्योंकि—

योगी	=	योगी पुरुष	**प्रदिष्टम्**	=	कहा है,
इदम्	=	इस रहस्यको	**तत्**	=	उस
विदित्वा	=	तत्त्वसे जानकर	**सर्वम्**	=	सबको
वेदेषु	=	वेदोंके पढ़नेमें	**एव**	=	निःसन्देह
च	=	तथा	**अत्येति**	=	उल्लंघन कर जाता है
यज्ञेषु	=	यज्ञ,			
तपःसु	=	तप (और)	**च**	=	और
दानेषु	=	दानादिके करनेमें	**आद्यम्**	=	सनातन
यत्	=	जो	**परम्, स्थानम्**	=	परमपदको
पुण्यफलम्	=	पुण्यफल	**उपैति**	=	प्राप्त होता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ नवमोऽध्यायः

प्रधान-विषय—१ से ६ तक प्रभावसहित ज्ञानका विषय, (७—१०) जगत्‌की उत्पत्तिका विषय, (११—१५) भगवान्‌का तिरस्कार करनेवाले आसुरी प्रकृतिवालोंकी निन्दा और दैवी प्रकृतिवालोंके भगवद्भजनका प्रकार, (१६—१९) सर्वात्मरूपसे प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन, (२०—२५) सकाम और निष्काम उपासनाका फल, (२६—३४) निष्काम भगवद्भक्तिकी महिमा।

[विज्ञानसहित ज्ञानके कथनकी प्रतिज्ञा।]

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥ १॥

इदम्, तु, ते, गुह्यतमम्, प्रवक्ष्यामि, अनसूयवे,
ज्ञानम्, विज्ञानसहितम्, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात्॥ १॥

उसके पश्चात् श्रीकृष्णभगवान् बोले, हे अर्जुन!—

ते	= तुझ	**प्रवक्ष्यामि**	= भलीभाँति कहूँगा
अनसूयवे	= दोष-दृष्टिरहित भक्तके लिये	**तु**	= कि
इदम्	= इस	**यत्**	= जिसको
गुह्यतमम्	= परम गोपनीय	**ज्ञात्वा**	= जानकर (तू)
विज्ञानसहितम्	= विज्ञानसहित	**अशुभात्**	= दुःखरूप संसारसे
ज्ञानम्	= ज्ञानको (पुनः)	**मोक्ष्यसे**	= मुक्त हो जायगा।

[विज्ञानसहित ज्ञानकी महिमा।]

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥ २॥

राजविद्या, राजगुह्यम्, पवित्रम्, इदम्, उत्तमम्,
प्रत्यक्षावगमम्, धर्म्यम्, सुसुखम्, कर्तुम्, अव्ययम्॥ २॥

इदम् = यह विज्ञानसहित ज्ञान
राजविद्या = सब विद्याओंका राजा,
राजगुह्यम् = सब गोपनीयोंका राजा,
पवित्रम् = अति पवित्र,
उत्तमम् = अति उत्तम,
प्रत्यक्षावगमम् = प्रत्यक्ष फलवाला।
धर्म्यम् = धर्मयुक्त
कर्तुम् = साधन करनेमें
सुसुखम् = बड़ा सुगम (और)
अव्ययम् = अविनाशी है।

[उस ज्ञानमें श्रद्धा न रखनेवालोंके लिये जन्म-मरणरूप संसार-चक्रकी प्राप्ति।]

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥ ३॥

अश्रद्दधानाः, पुरुषाः, धर्मस्य, अस्य, परन्तप,
अप्राप्य, माम्, निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि॥ ३॥

और—

परन्तप = हे परंतप!
अस्य = इस (उपर्युक्त)
धर्मस्य = धर्ममें
अश्रद्दधानाः = श्रद्धारहित
पुरुषाः = पुरुष
माम् = मुझको
अप्राप्य = न प्राप्त होकर
मृत्युसंसार-वर्त्मनि = मृत्युरूप संसारचक्रमें
निवर्तन्ते = भ्रमण करते रहते हैं।

[प्रभावसहित भगवान्के सर्वव्यापी स्वरूपका कथन।]

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥ ४॥

मया, ततम्, इदम्, सर्वम्, जगत्, अव्यक्तमूर्तिना,
मत्स्थानि, सर्वभूतानि, न, च, अहम्, तेषु, अवस्थितः॥ ४॥

और हे अर्जुन!—

मया = मुझ
अव्यक्तमूर्तिना = निराकार परमात्मासे
इदम् = यह
सर्वम् = सब
जगत् = जगत् (जलसे बर्फके सदृश)
ततम् = परिपूर्ण है
च = और
सर्वभूतानि = सब भूत
मत्स्थानि = मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधार स्थित हैं, (किन्तु वास्तवमें)
अहम् = मैं
तेषु = उनमें
न,अवस्थितः = स्थित नहीं हूँ।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥ ५ ॥

न, च, मत्स्थानि, भूतानि, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्,
भूतभृत्, न, च, भूतस्थः, मम, आत्मा, भूतभावनः॥ ५ ॥

भूतानि = वे सब भूत
मत्स्थानि = मुझमें स्थित
न = नहीं हैं; (किंतु)
मे = मेरी
ऐश्वरम् = ईश्वरीय
योगम् = योगशक्तिको
पश्य = देख (कि)
भूतभृत् = भूतोंका धारण-पोषण करनेवाला
च = और
भूतभावनः = भूतोंको उत्पन्न करनेवाला
च = भी
मम = मेरा
आत्मा = आत्मा (वास्तवमें)
भूतस्थः = भूतोंमें स्थित
न = नहीं है।

[आकाशके दृष्टान्तसे भगवान्के सर्वव्यापी स्वरूपका कथन।]

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥ ६ ॥

यथा, आकाशस्थितः, नित्यम्, वायुः, सर्वत्रगः, महान्,
तथा, सर्वाणि, भूतानि, मत्स्थानि, इति, उपधारय॥ ६ ॥

क्योंकि—

यथा = { जैसे (आकाशसे उत्पन्न)
सर्वत्रगः = सर्वत्र विचरनेवाला
महान् = महान्
वायुः = वायु
नित्यम् = सदा
आकाशस्थितः = { आकाशमें ही स्थित है,
तथा = { वैसे ही (मेरे संकल्पद्वारा उत्पन्न होनेसे)
सर्वाणि = सम्पूर्ण
भूतानि = भूत
मत्स्थानि = मुझमें स्थित हैं,
इति = ऐसा
उपधारय = जान।

[सर्वभूतोंकी उत्पत्ति और प्रलयका कथन।]

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥ ७॥

सर्वभूतानि, कौन्तेय, प्रकृतिम्, यान्ति, मामिकाम्,
कल्पक्षये, पुनः, तानि, कल्पादौ, विसृजामि, अहम्॥ ७॥

और—

कौन्तेय = हे अर्जुन!
कल्पक्षये = कल्पोंके अन्तमें
सर्वभूतानि = सब भूत
मामिकाम् = मेरी
प्रकृतिम् = प्रकृतिको
यान्ति = { प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृतिमें लीन होते हैं (और)
कल्पादौ = { कल्पोंके आदिमें
तानि = उनको
अहम् = मैं
पुनः = फिर
विसृजामि = रचता हूँ।

[सर्वभूतोंकी पुनः-पुनः उत्पत्तिका कथन।]

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्॥ ८॥

प्रकृतिम्, स्वाम्, अवष्टभ्य, विसृजामि, पुनः, पुनः,
भूतग्रामम्, इमम्, कृत्स्नम्, अवशम्, प्रकृतेः, वशात्॥ ८॥

कैसे कि—

स्वाम्	= अपनी	**इमम्**	= इस
प्रकृतिम्	= प्रकृतिको	**कृत्स्नम्**	= सम्पूर्ण
अवष्टभ्य	= अंगीकार करके	**भूतग्रामम्**	= भूतसमुदायको
प्रकृतेः	= स्वभावके	**पुनः, पुनः**	= बार-बार (उनके कर्मोंके अनुसार)
वशात्	= बलसे		
अवशम्	= परतन्त्र हुए	**विसृजामि**	= रचता हूँ।

[भगवान्‌को कर्म नहीं बाँधते, इसके हेतुका कथन।]

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु॥ ९ ॥

न, च, माम्, तानि, कर्माणि, निबध्नन्ति, धनञ्जय,
उदासीनवत्, आसीनम्, असक्तम्, तेषु, कर्मसु॥ ९ ॥

धनञ्जय	= हे अर्जुन!	**आसीनम्**	= स्थित
तेषु	= उन	**माम्**	= मुझ परमात्माको
कर्मसु	= कर्मोंमें	**तानि**	= वे
असक्तम्	= आसक्तिरहित	**कर्माणि**	= कर्म
च	= और	**न**	= नहीं
उदासीनवत्	= उदासीनके सदृश*	**निबध्नन्ति**	= बाँधते।

[भगवान्‌के सकाशसे प्रकृतिद्वारा चराचर जगत्‌की उत्पत्ति।]

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥ १० ॥

मया, अध्यक्षेण, प्रकृतिः, सूयते, सचराचरम्,
हेतुना, अनेन, कौन्तेय, जगत्, विपरिवर्तते॥ १० ॥

और—

कौन्तेय	= हे अर्जुन!	**मया**	= मुझ

* जिसके सम्पूर्ण कार्य कर्तृत्वभावके बिना अपने-आप सत्तामात्रसे ही होते हैं, उसका नाम ''उदासीनके सदृश'' है।

अध्यक्षेण	=	अधिष्ठाताके सकाशसे	**सूयते**	=	रचती है (और)
प्रकृतिः	=	प्रकृति	**अनेन**	=	इस
सचराचरम्	=	चराचरसहित सर्वजगत्को	**हेतुना**	=	हेतुसे ही
			जगत्	=	यह संसार-चक्र
			विपरिवर्तते	=	घूम रहा है।

[भगवान्‌के प्रभावको न जाननेके कारण उनका तिरस्कार करनेवालोंकी निन्दा।]

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥ ११॥

अवजानन्ति, माम्, मूढाः, मानुषीम्, तनुम्, आश्रितम्,
परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, भूतमहेश्वरम्॥ ११॥

ऐसा होनेपर भी—

मम	=	मेरे	**भूतमहेश्वरम्**	=	सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वरको
परम्	=	परम	**अवजानन्ति**	=	तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपने योगमायासे संसारके उद्धारके लिये मनुष्यरूपमें विचरते हुए मुझ परमेश्वरको साधारण मनुष्य मानते हैं।
भावम्	=	भावको *			
अजानन्तः	=	न जाननेवाले			
मूढाः	=	मूढ़लोग			
मानुषीम्	=	मनुष्यका			
तनुम्	=	शरीर			
आश्रितम्	=	धारण करनेवाले			
माम्	=	मुझ			

[राक्षसी और आसुरी प्रकृतिवालोंके लक्षण।]

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥ १२॥

मोघाशाः, मोघकर्माणः, मोघज्ञानाः, विचेतसः,
राक्षसीम्, आसुरीम्, च, एव, प्रकृतिम्, मोहिनीम्, श्रिताः॥ १२॥

* गीता अध्याय ७ श्लोक २४ में देखना चाहिये।

वे—

मोघाशाः = व्यर्थ आशा,
मोघकर्माणः = व्यर्थ कर्म (और)
मोघज्ञानाः = व्यर्थ ज्ञानवाले
विचेतसः = विक्षिप्त चित्त अज्ञानीजन
राक्षसीम् = राक्षसी,
आसुरीम् = आसुरी
च = और
मोहिनीम् = मोहिनी
प्रकृतिम् = प्रकृतिको[1]
एव = ही
श्रिताः = धारण किये रहते हैं।

[भगवान्‌के प्रभावको जाननेवाले अनन्य भक्तोंके भजनका प्रकार।]

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥ १३॥

महात्मानः, तु, माम्, पार्थ, दैवीम्, प्रकृतिम्, आश्रिताः,
भजन्ति, अनन्यमनसः, ज्ञात्वा, भूतादिम्, अव्ययम्॥ १३॥

तु = परंतु
पार्थ = हे कुन्तीपुत्र!
दैवीम् = दैवी
प्रकृतिम् = प्रकृतिके[2]
आश्रिताः = आश्रित
महात्मानः = महात्माजन
माम् = मुझको
भूतादिम् = सब भूतोंका सनातन कारण (और)
अव्ययम् = नाशरहित अक्षरस्वरूप
ज्ञात्वा = जानकर
अनन्यमनसः = अनन्य मनसे युक्त (होकर)
भजन्ति = निरन्तर भजते हैं।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥ १४॥

सततम्, कीर्तयन्तः, माम्, यतन्तः, च, दृढव्रताः,
नमस्यन्तः, च, माम्, भक्त्या, नित्ययुक्ताः, उपासते॥ १४॥

१-जिसको आसुरी सम्पदाके नामसे विस्तारपूर्वक भगवान्‌ने गीता अध्याय १६ श्लोक ४ तथा श्लोक ७ से २१ तक कहा है।

२-इसका विस्तारपूर्वक वर्णन गीता अध्याय १६ श्लोक १—३ में देखना चाहिये।

और वे—

दृढव्रताः	= दृढ़ निश्चयवाले भक्तजन		**च**	= और
			माम्	= मुझको (बार-बार)
सततम्	= निरन्तर		**नमस्यन्तः**	= प्रणाम करते हुए
कीर्तयन्तः	= मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए		**नित्ययुक्ताः**	= सदा मेरे ध्यानमें युक्त होकर
च	= तथा (मेरी प्राप्तिके लिये)		**भक्त्या**	= अनन्य प्रेमसे
			माम्	= मेरी
यतन्तः	= यत्न करते हुए		**उपासते**	= उपासना करते हैं।

[एकत्वभावसे ज्ञानयज्ञके द्वारा ब्रह्मकी उपासना करनेवाले ज्ञानयोगियोंका और विश्वरूप परमेश्वरकी उपासना करनेवालोंका वर्णन।]

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥ १५॥

ज्ञानयज्ञेन, च, अपि, अन्ये, यजन्तः, माम्, उपासते,
एकत्वेन, पृथक्त्वेन, बहुधा, विश्वतोमुखम्॥ १५॥

अन्ये	= दूसरे ज्ञानयोगी		
माम्	= मुझ (निर्गुण-निराकार ब्रह्मका)	**च**	= और (दूसरे मनुष्य)
		बहुधा	= बहुत प्रकारसे स्थित
ज्ञानयज्ञेन	= ज्ञानयज्ञके द्वारा	**विश्वतोमुखम्**	= मुझ विराट्स्वरूप परमेश्वरकी
एकत्वेन	= अभिन्न-भावसे		
यजन्तः	= पूजन करते हुए	**पृथक्त्वेन**	= पृथक्-भावसे
अपि	= भी (मेरी उपासना करते हैं)	**उपासते**	= उपासना करते हैं।

[भगवान्‌का अपने गुण, प्रभाव और विभूतिसहित स्वरूपका वर्णन करते हुए कारणरूप समस्त जगत्‌को भी अपना स्वरूप बतलाना।]

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥ १६॥

अहम्, क्रतुः, अहम्, यज्ञः, स्वधा, अहम्, अहम्, औषधम्,
मन्त्रः, अहम्, अहम्, एव, आज्यम्, अहम्, अग्निः, अहम्, हुतम्॥ १६॥

क्योंकि—

क्रतुः = क्रतु		**अहम्** = मैं हूँ,	
अहम् = मैं हूँ,		**आज्यम्** = घृत	
यज्ञः = यज्ञ		**अहम्** = मैं हूँ,	
अहम् = मैं हूँ,		**अग्निः** = अग्नि	
स्वधा = स्वधा		**अहम्** = मैं हूँ (और)	
अहम् = मैं हूँ,		**हुतम्** = हवनरूप क्रिया (भी)	
औषधम् = ओषधि			
अहम् = मैं हूँ,		**अहम्** = मैं	
मन्त्रः = मन्त्र		**एव** = ही हूँ।	

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च॥ १७॥

पिता, अहम्, अस्य, जगतः, माता, धाता, पितामहः,
वेद्यम्, पवित्रम्, ओङ्कारः, ऋक्, साम, यजुः, एव, च॥ १७॥

और हे अर्जुन! मैं ही—

अस्य = इस	**वेद्यम्** = जाननेयोग्य*
जगतः = सम्पूर्ण जगत्का	**पवित्रम्** = पवित्र
धाता = धाता अर्थात् धारण करनेवाला एवं कर्मोंके फलको देनेवाला	**ओङ्कारः** = ॐकार (तथा)
	ऋक् = ऋग्वेद
	साम = सामवेद
	च = और
पिता = पिता,	**यजुः** = यजुर्वेद (भी)
माता = माता,	**अहम्** = मैं
पितामहः = पितामह,	**एव** = ही हूँ।

* गीता अध्याय १३ श्लोक १२ से लेकर १७ तक देखना चाहिये।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥ १८॥

गतिः, भर्ता, प्रभुः, साक्षी, निवासः, शरणम्, सुहृत्,
प्रभवः, प्रलयः, स्थानम्, निधानम्, बीजम्, अव्ययम्॥ १८॥

और हे अर्जुन!—

गतिः	=	प्राप्त होनेयोग्य परमधाम,	**सुहृत्**	=	प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला
भर्ता	=	भरण-पोषण करनेवाला,	**प्रभवः प्रलयः**	=	सबकी उत्पत्ति-प्रलयका हेतु,
प्रभुः	=	सबका स्वामी,	**स्थानम्**	=	स्थितिका आधार,
साक्षी	=	शुभाशुभका देखनेवाला,	**निधानम्**	=	निधान* (और)
			अव्ययम्	=	अविनाशी
			बीजम्	=	कारण (भी)
निवासः	=	सबका वासस्थान,	**(अहम्)**	=	मैं
शरणम्	=	शरण लेनेयोग्य,	**(एव)**	=	ही हूँ।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥ १९॥

तपामि, अहम्, अहम्, वर्षम्, निगृह्णामि, उत्सृजामि, च,
अमृतम्, च, एव, मृत्युः, च, सत्, असत्, च, अहम्, अर्जुन॥ १९॥

और—

अहम्	=	मैं (ही)	**उत्सृजामि**	=	बरसाता हूँ।
तपामि	=	सूर्यरूपसे तपता हूँ,	**अर्जुन**	=	हे अर्जुन!
वर्षम्	=	वर्षाका	**अहम्**	=	मैं
निगृह्णामि	=	आकर्षण करता हूँ	**एव**	=	ही
च	=	और (उसे)	**अमृतम्**	=	अमृत

* प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूत सूक्ष्मरूपसे जिसमें लय होते हैं उसका नाम ''निधान'' है।

च	=	और	**सत्, असत्**	=	सत्-असत्
मृत्युः	=	मृत्यु (हूँ)	**च**	=	भी
च	=	और	**अहम्**	=	मैं ही (हूँ)।

[स्वर्गभोग-हेतु यज्ञादि कर्म करनेवालोंके आवागमनका वर्णन।]

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा-
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥ २०॥

त्रैविद्याः, माम्, सोमपाः, पूतपापाः, यज्ञैः, इष्ट्वा, स्वर्गतिम्, प्रार्थयन्ते, ते, पुण्यम्, आसाद्य, सुरेन्द्रलोकम्, अश्नन्ति, दिव्यान्, दिवि, देवभोगान्॥ २०॥

परंतु जो—

त्रैविद्याः	=	तीनों वेदोंमें विधान किये हुए सकाम कर्मोंको करनेवाले,	**प्रार्थयन्ते**	=	चाहते हैं;
			ते	=	वे पुरुष
सोमपाः	=	सोमरसको पीनेवाले,	**पुण्यम्**	=	अपने पुण्योंके फलरूप
पूतपापाः	=	पापरहित पुरुष*	**सुरेन्द्रलोकम्**	=	स्वर्गलोकको
माम्	=	मुझको	**आसाद्य**	=	प्राप्त होकर
यज्ञैः	=	यज्ञोंके द्वारा	**दिवि**	=	स्वर्गमें
इष्ट्वा	=	पूजकर	**दिव्यान्**	=	दिव्य
स्वर्गतिम्	=	स्वर्गकी प्राप्ति	**देवभोगान्**	=	देवताओंके भोगोंको
			अश्नन्ति	=	भोगते हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं-
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना-
गतागतं कामकामा लभन्ते॥ २१॥

* यहाँ स्वर्गप्राप्तिके प्रतिबन्धक देव-ऋणरूप पापसे पवित्र होना समझना चाहिये।

ते, तम्, भुक्त्वा, स्वर्गलोकम्, विशालम्, क्षीणे, पुण्ये, मर्त्यलोकम्, विशन्ति, एवम्, त्रयीधर्मम्, अनुप्रपन्नाः, गतागतम्, कामकामाः, लभन्ते ॥ २१ ॥

और—

ते = वे
तम् = उस
विशालम् = विशाल
स्वर्गलोकम् = स्वर्गलोकको
भुक्त्वा = भोगकर
पुण्ये = पुण्य
क्षीणे = क्षीण होनेपर
मर्त्यलोकम् = मृत्युलोकको
विशन्ति = प्राप्त होते हैं।
एवम् = इस प्रकार (स्वर्गके साधनरूप)
त्रयीधर्मम् = तीनों वेदोंमें कहे हुए सकाम कर्मका
अनुप्रपन्नाः = आश्रय लेनेवाले (और)
कामकामाः = भोगोंकी कामनावाले पुरुष
गतागतम् = बार-बार आवागमनको
लभन्ते = प्राप्त होते हैं अर्थात् पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें जाते हैं और पुण्य क्षीण होनेपर मृत्युलोकमें आते हैं।

[निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर चिन्तन करनेवाले अपने भक्तोंका योगक्षेम स्वयं वहन करनेकी प्रतिज्ञा।]

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ २२ ॥

अनन्याः, चिन्तयन्तः, माम्, ये, जनाः, पर्युपासते, तेषाम्, नित्याभियुक्तानाम्, योगक्षेमम्, वहामि, अहम्॥ २२ ॥

और—

ये = जो
अनन्याः = अनन्य प्रेमी
जनाः = भक्तजन
माम् = मुझ परमेश्वरको
चिन्तयन्तः = निरन्तर चिन्तन करते हुए
पर्युपासते = निष्कामभावसे भजते हैं,
तेषाम् = उन
नित्याभियुक्तानाम् = नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका

योगक्षेमम् = योगक्षेम*				
अहम् = मैं स्वयं		**वहामि** = प्राप्त कर देता हूँ।		

[अन्य देवताओंकी उपासनाको भी प्रकारान्तरसे अविधिपूर्वक अपनी उपासना बतलाना।]

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥ २३॥

ये, अपि, अन्यदेवताः, भक्ताः, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः,
ते, अपि, माम्, एव, कौन्तेय, यजन्ति, अविधिपूर्वकम्॥ २३॥

और—

कौन्तेय = हे अर्जुन!
अपि = यद्यपि
श्रद्धया = श्रद्धासे
अन्विताः = युक्त
ये = जो सकाम
भक्ताः = भक्त
अन्यदेवताः = दूसरे देवताओंको
यजन्ते = पूजते हैं,
ते = वे
अपि = भी
माम् = मुझको
एव = ही
यजन्ति = पूजते हैं, (किंतु उनका वह पूजन)
अविधिपूर्वकम् = अविधिपूर्वक अर्थात् अज्ञानपूर्वक है।

[भगवान्‌को तत्त्वसे न जाननेवालोंका पतन।]

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥ २४॥

अहम्, हि, सर्वयज्ञानाम्, भोक्ता, च, प्रभुः, एव, च,
न, तु, माम्, अभिजानन्ति, तत्त्वेन, अतः, च्यवन्ति, ते॥ २४॥

हि = क्योंकि
सर्वयज्ञानाम् = सम्पूर्ण यज्ञोंका
भोक्ता = भोक्ता
च = और

---

* भगवत्स्वरूपकी प्राप्तिका नाम 'योग' है और भगवत्प्राप्तिके निमित्त किये हुए साधनकी रक्षाका नाम 'क्षेम' है।

प्रभुः	=	स्वामी	**तत्त्वेन**	=	तत्त्वसे
च	=	भी	**न**	=	नहीं
अहम्	=	मैं	**अभिजानन्ति**	=	जानते,
एव	=	ही हूँ;	**अतः**	=	इसीसे
तु	=	परंतु	**च्यवन्ति**	=	गिरते हैं अर्थात् पुनर्जन्मको प्राप्त होते हैं।
ते	=	वे			
माम्	=	मुझ परमेश्वरको			

[उपासनाके अनुसार फलप्राप्तिका कथन।]

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥ २५ ॥

यान्ति, देवव्रताः, देवान्, पितॄन्, यान्ति, पितृव्रताः,
भूतानि, यान्ति, भूतेज्याः, यान्ति, मद्याजिनः, अपि, माम्॥ २५ ॥

कारण यह नियम है कि—

देवव्रताः	=	देवताओंको पूजनेवाले	**यान्ति**	=	प्राप्त होते हैं (और)
देवान्	=	देवताओंको	**मद्याजिनः**	=	मेरा पूजन करनेवाले भक्त
यान्ति	=	प्राप्त होते हैं,			
पितृव्रताः	=	पितरोंको पूजनेवाले	**माम्**	=	मुझको
			अपि	=	ही
पितॄन्	=	पितरोंको	**यान्ति**	=	प्राप्त होते हैं। (इसीलिये मेरे भक्तोंका पुनर्जन्म नहीं होता।*)
यान्ति	=	प्राप्त होते हैं,			
भूतेज्याः	=	भूतोंको पूजनेवाले			
भूतानि	=	भूतोंको			

[भक्तिपूर्वक अर्पण किये हुए पत्र-पुष्पादिको खानेके लिये भगवान्‌की प्रतिज्ञा।]

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ २६ ॥

* गीता अध्याय ८ श्लोक १६ में देखना चाहिये।

पत्रम्, पुष्पम्, फलम्, तोयम्, यः, मे, भक्त्या, प्रयच्छति,
तत्, अहम्, भक्त्युपहृतम्, अश्नामि, प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

तथा हे अर्जुन! मेरे पूजनमें सुगमता भी है कि—

यः	=	जो (कोई भक्त)			निष्काम प्रेमी भक्तका
मे	=	मेरे लिये	**भक्त्युपहृतम्**	=	प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ
भक्त्या	=	प्रेमसे	**तत्**	=	वह (पत्र-पुष्पादि)
पत्रम्	=	पत्र,	**अहम्**	=	मैं (सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित)
पुष्पम्,	=	पुष्प,	**अश्नामि**	=	खाता हूँ।
फलम्	=	फल,			
तोयम्	=	जल आदि			
प्रयच्छति	=	अर्पण करता है,			
प्रयतात्मनः	=	(उस) शुद्ध बुद्धि			

[सर्वकर्म भगवदर्पण करनेकी आज्ञा एवं उसका फल अपनी प्राप्ति बतलाना।]

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥

यत्, करोषि, यत्, अश्नासि, यत्, जुहोषि, ददासि, यत्,
यत्, तपस्यसि, कौन्तेय, तत्, कुरुष्व, मदर्पणम् ॥ २७ ॥

इसलिये—

कौन्तेय	=	हे अर्जुन! (तू)	**यत्**	=	जो
यत्	=	जो (कर्म)	**ददासि**	=	दान देता है, (और)
करोषि	=	करता है,	**यत्**	=	जो
यत्	=	जो	**तपस्यसि**	=	तप करता है,
अश्नासि	=	खाता है,	**तत्**	=	वह सब
यत्	=	जो	**मदर्पणम्**	=	मेरे अर्पण
जुहोषि	=	हवन करता है,	**कुरुष्व**	=	कर।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥ २८॥

शुभाशुभफलैः, एवम्, मोक्ष्यसे, कर्मबन्धनैः,
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा, विमुक्तः, माम्, उपैष्यसि॥ २८॥

एवम्	=	इस प्रकार	**कर्मबन्धनैः**	=	कर्मबन्धनसे
सन्न्यासयोग-युक्तात्मा	=	जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान्‌के अर्पण होते हैं ऐसे संन्यासयोगसे युक्त चित्तवाला (तू)	**मोक्ष्यसे**	=	मुक्त हो जायगा (और उनसे)
			विमुक्तः	=	मुक्त होकर
शुभाशुभफलैः	=	शुभाशुभ फलरूप	**माम्**	=	मुझको ही
			उपैष्यसि	=	प्राप्त होगा।

[अपने समत्वभावका वर्णन एवं भजनेवालोंकी महिमा।]

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ २९॥

समः, अहम्, सर्वभूतेषु, न, मे, द्वेष्यः, अस्ति, न, प्रियः,
ये, भजन्ति, तु, माम्, भक्त्या, मयि, ते, तेषु, च, अपि, अहम्॥ २९॥

यद्यपि—

अहम्	=	मैं	**अस्ति**	=	है;
सर्वभूतेषु	=	सब भूतोंमें	**तु**	=	परंतु
समः	=	समभावसे व्यापक हूँ,	**ये**	=	जो भक्त
			माम्	=	मुझको
न	=	न (कोई)	**भक्त्या**	=	प्रेमसे
मे	=	मेरा	**भजन्ति**	=	भजते हैं,
द्वेष्यः	=	अप्रिय है (और)	**ते**	=	वे
न	=	न	**मयि**	=	मुझमें हैं
प्रियः	=	प्रिय	**च**	=	और

अहम्	=	मैं	**तेषु**	=	उनमें
अपि	=	भी			(प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।)*

[दुराचारी होनेपर भी दृढ़निश्चय एवं अनन्यभावयुक्त भगवद्भजनका महत्त्व।]

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ ३०॥

अपि, चेत्, सुदुराचारः, भजते, माम्, अनन्यभाक्,
साधुः, एव, सः, मन्तव्यः, सम्यक्, व्यवसितः, हि, सः॥ ३०॥

तथा और भी मेरी भक्तिका प्रभाव सुन—

चेत्	=	यदि (कोई)	**हि**	=	क्योंकि
सुदुराचारः	=	अतिशय दुराचारी	**सः**	=	वह
अपि	=	भी	**सम्यक्**	=	यथार्थ
अनन्यभाक्	=	अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर	**व्यवसितः**	=	निश्चयवाला है अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।
माम्	=	मुझको			
भजते	=	भजता है (तो)			
सः	=	वह			
साधुः	=	साधु			
एव	=	ही			
मन्तव्यः	=	माननेयोग्य है;			

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥ ३१॥

क्षिप्रम्, भवति, धर्मात्मा, शश्वत्, शान्तिम्, निगच्छति,
कौन्तेय, प्रति, जानीहि, न, मे, भक्तः, प्रणश्यति॥ ३१॥

* जैसे सूक्ष्मरूपसे सब जगह व्यापक हुआ भी अग्नि साधनोंद्वारा प्रकट करनेसे ही प्रत्यक्ष होता है, वैसे ही सब जगह स्थित हुआ भी परमेश्वर भक्तिसे भजनेवालोंके ही अन्त:करणमें प्रत्यक्षरूपसे प्रकट होता है।

इसलिये वह—

क्षिप्रम्	=	शीघ्र ही	**कौन्तेय**	=	हे अर्जुन! (तू)
धर्मात्मा	=	धर्मात्मा	**प्रति**	=	निश्चयपूर्वक सत्य
भवति	=	हो जाता है (और)	**जानीहि**	=	जान (कि)
शश्वत्	=	सदा रहनेवाली	**मे**	=	मेरा
शान्तिम्	=	परमशान्तिको	**भक्तः**	=	भक्त
निगच्छति	=	प्राप्त होता है।	**न, प्रणश्यति**	=	नष्ट नहीं होता।

[अपनी शरणागतिसे स्त्री, वैश्य, शूद्र और चाण्डालादिको भी परमगतिरूप फलकी प्राप्ति।]

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ ३२॥

माम्, हि, पार्थ, व्यपाश्रित्य, ये, अपि, स्युः, पापयोनयः,
स्त्रियः, वैश्याः, तथा, शूद्राः, ते, अपि, यान्ति, पराम्, गतिम्॥ ३२॥

हि	=	क्योंकि	**अपि**	=	भी
पार्थ	=	हे अर्जुन!	**स्युः**	=	हों,
स्त्रियः	=	स्त्री,	**ते**	=	वे
वैश्याः	=	वैश्य,	**अपि**	=	भी
शूद्राः	=	शूद्र	**माम्**	=	मेरी
तथा	=	तथा	**व्यपाश्रित्य**	=	शरण होकर
पापयोनयः	=	पापयोनि— चाण्डालादि	**पराम्**	=	परम
			गतिम्	=	गतिको (ही)
ये	=	जो (कोई)	**यान्ति**	=	प्राप्त होते हैं।

[पुण्यशील ब्राह्मण और राजर्षि भक्तजनोंकी प्रशंसा एवं भगवद्भजनके लिये आज्ञा।]

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥ ३३॥

किम्, पुनः, ब्राह्मणाः, पुण्याः, भक्ताः, राजर्षयः, तथा,
अनित्यम्, असुखम्, लोकम्, इमम्, प्राप्य, भजस्व, माम्॥ ३३॥

पुनः = फिर (इसमें तो कहना ही)
किम् = क्या है, (जो)
पुण्याः = पुण्यशील
ब्राह्मणाः = ब्राह्मण
तथा = तथा
राजर्षयः = राजर्षि
भक्ताः = भक्तजन (मेरी शरण होकर परमगतिको प्राप्त होते हैं। इसलिये तू)
असुखम् = सुखरहित (और)
अनित्यम् = क्षणभंगुर
इमम् = इस
लोकम् = मनुष्य-शरीरको
प्राप्य = प्राप्त होकर (निरन्तर)
माम् = मेरा (ही)
भजस्व = भजन कर।

[अर्जुनको अपनी शरण होनेके लिये कहकर अंगसहित शरणागतिके स्वरूपका निरूपण।]

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ ३४॥

मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु,
माम्, एव, एष्यसि, युक्त्वा, एवम्, आत्मानम्, मत्परायणः॥ ३४॥

मन्मनाः = मुझमें मनवाला
भव = हो,
मद्भक्तः = मेरा भक्त
(भव) = बन,
मद्याजी = मेरा पूजन करनेवाला
(भव) = हो,
माम् = मुझको
नमस्कुरु = प्रणाम कर।
एवम् = इस प्रकार
आत्मानम् = आत्माको (मुझमें)
युक्त्वा = नियुक्त करके
मत्परायणः = मेरे परायण होकर (तू)
माम् = मुझको
एव = ही
एष्यसि = प्राप्त होगा।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो

नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ दशमोऽध्यायः

प्रधान-विषय—१ से ७ तक भगवान्‌की विभूति और योगशक्तिका कथन तथा उनके जाननेका फल, (८—११) फल और प्रभावसहित भक्तियोगका कथन, (१२—१८) अर्जुनद्वारा भगवान्‌की स्तुति एवं विभूति और योगशक्तिको कहनेके लिये प्रार्थना, (१९—४२) भगवान्‌द्वारा अपनी विभूतियोंका और योगशक्तिका कथन।

[भगवान्‌की पुनः श्रेष्ठ उपदेश प्रदान करनेकी प्रतिज्ञा एवं उसे सुननेके लिये अर्जुनसे अनुरोध।]

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया॥ १॥

भूयः, एव, महाबाहो, शृणु, मे, परमम्, वचः,
यत्, ते, अहम्, प्रीयमाणाय, वक्ष्यामि, हितकाम्यया॥ १॥

श्रीभगवान् बोले—

महाबाहो	= हे महाबाहो!	**यत्**	= जिसे
भूयः	= फिर	**अहम्**	= मैं
एव	= भी	**ते**	= तुझ
मे	= मेरे	**प्रीयमाणाय**	= अतिशय प्रेम रखनेवालेके लिये
परमम्	= परम (रहस्य और प्रभावयुक्त)		
वचः	= वचनको	**हितकाम्यया**	= हितकी इच्छासे
शृणु	= सुन,	**वक्ष्यामि**	= कहूँगा।

['योग' शब्दवाच्य अपने प्रभावका वर्णन करके उसके जाननेका फल बतलाना।]

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥ २॥

न, मे, विदुः, सुरगणाः, प्रभवम्, न, महर्षयः,
अहम्, आदिः, हि, देवानाम्, महर्षीणाम्, च, सर्वशः ॥ २ ॥

हे अर्जुन!—

मे	= मेरी	**विदुः**	= जानते हैं;
प्रभवम्	= { उत्पत्तिको अर्थात् लीलासे प्रकट होनेको	**हि**	= क्योंकि
		अहम्	= मैं
न	= न	**सर्वशः**	= सब प्रकारसे
सुरगणाः	= { देवतालोग (जानते हैं और)	**देवानाम्**	= देवताओंका
		च	= और
न	= न	**महर्षीणाम्**	= महर्षियोंका (भी)
महर्षयः	= महर्षिजन (ही)	**आदिः**	= आदि कारण हूँ।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३ ॥

यः, माम्, अजम्, अनादिम्, च, वेत्ति, लोकमहेश्वरम्,
असम्मूढः, सः, मर्त्येषु, सर्वपापैः, प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

और—

यः	= जो		ईश्वर
माम्	= मुझको	**वेत्ति**	= तत्त्वसे जानता है,
अजम्	= { अजन्मा अर्थात् वास्तवमें जन्मरहित	**सः**	= वह
		मर्त्येषु	= मनुष्योंमें
अनादिम्	= अनादि*	**असम्मूढः**	= ज्ञानवान् पुरुष
च	= और	**सर्वपापैः**	= सम्पूर्ण पापोंसे
लोकमहेश्वरम्	= लोकोंका महान्	**प्रमुच्यते**	= मुक्त हो जाता है।

[भगवान्से बुद्धि आदि भावोंकी उत्पत्तिका कथन।]

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च॥ ४॥

* अनादि उसको कहते हैं कि जो आदिरहित होवे और सबका कारण होवे।

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः॥ ५॥

बुद्धिः, ज्ञानम्, असम्मोहः, क्षमा, सत्यम्, दमः, शमः, सुखम्, दुःखम्, भवः, अभावः, भयम्, च, अभयम्, एव, च॥ ४॥
अहिंसा, समता, तुष्टिः, तपः, दानम्, यशः, अयशः, भवन्ति, भावाः, भूतानाम्, मत्तः, एव, पृथग्विधाः॥ ५॥

और हे अर्जुन!—

बुद्धिः = निश्चय करनेकी शक्ति,
ज्ञानम् = यथार्थ ज्ञान,
असम्मोहः = असंमूढता,
क्षमा = क्षमा,
सत्यम् = सत्य,
दमः = इन्द्रियोंका वशमें करना,
शमः = मनका निग्रह
एव = तथा
सुखम्, दुःखम् = सुख-दुःख,
भवः, अभावः = उत्पत्ति-प्रलय
च = और
भयम्, अभयम् = भय-अभय
च = तथा
अहिंसा = अहिंसा,
समता = समता,
तुष्टिः = संतोष,
तपः = तप,*
दानम् = दान,
यशः = कीर्ति (और)
अयशः = अपकीर्ति—
(एवम्) = ऐसे ये
भूतानाम् = प्राणियोंके
पृथग्विधाः = नाना प्रकारके
भावाः = भाव
मत्तः = मुझसे
एव = ही
भवन्ति = होते हैं।

[भगवान्के संकल्पसे सप्तर्षि और सनकादिकोंकी उत्पत्तिका कथन।]

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥ ६॥

महर्षयः, सप्त, पूर्वे, चत्वारः, मनवः, तथा, मद्भावाः, मानसाः, जाताः, येषाम्, लोके, इमाः, प्रजाः॥ ६॥

* स्वधर्मके आचरणसे इन्द्रियादिको तपाकर शुद्ध करनेका नाम "तप" है।

और हे अर्जुन!—

सप्त	= सात	**मद्भावाः**	= मुझमें भाववाले (सब–के–सब)
महर्षयः	= महर्षिजन,	**मानसाः**	= मेरे संकल्पसे
चत्वारः	= चार (उनसे भी)	**जाताः**	= उत्पन्न हुए हैं,
पूर्वे	= पूर्व होनेवाले (सनकादि)	**येषाम्**	= जिनकी
तथा	= तथा	**लोके**	= संसारमें
मनवः	= स्वायम्भुव आदि चौदह मनु—ये	**इमाः**	= यह
		प्रजाः	= सम्पूर्ण प्रजा है।

[भगवान्‌की विभूति और योगको तत्त्वसे जाननेका फल।]

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः॥ ७॥

एताम्, विभूतिम्, योगम्, च, मम, यः, वेत्ति, तत्त्वतः,
सः, अविकम्पेन, योगेन, युज्यते, न, अत्र, संशयः॥ ७॥

और—

यः	= जो पुरुष	**वेत्ति**	= जानता है, *
मम	= मेरी	**सः**	= वह
एताम्	= इस	**अविकम्पेन**	= निश्चल
विभूतिम्	= परमैश्वर्यरूप विभूतिको	**योगेन**	= भक्तियोगसे
		युज्यते	= युक्त हो जाता है—
च	= और	**अत्र**	= इसमें (कुछ भी)
योगम्	= योगशक्तिको	**संशयः**	= संशय
तत्त्वतः	= तत्त्वसे	**न**	= नहीं है।

[अपने बुद्धिमान् अनन्य प्रेमी भक्तोंके भजनका प्रकार।]

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥ ८॥

---

* जो कुछ दृश्यमात्र संसार है वह सब भगवान्‌की माया है और एक वासुदेव भगवान् ही सर्वत्र परिपूर्ण है, यह जानना ही ''तत्त्वसे जानना है''।

अहम्, सर्वस्य, प्रभवः, मत्तः, सर्वम्, प्रवर्तते,
इति, मत्वा, भजन्ते, माम्, बुधाः, भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

अहम् = मैं वासुदेव ही
सर्वस्य = सम्पूर्ण जगत्की
प्रभवः = उत्पत्तिका कारण हूँ (और)
मत्तः = मुझसे ही
सर्वम् = सब जगत्
प्रवर्तते = चेष्टा करता है,
इति = इस प्रकार
मत्वा = समझकर
भावसमन्विताः = श्रद्धा और भक्तिसे युक्त
बुधाः = बुद्धिमान् भक्तजन
माम् = मुझ परमेश्वरको (ही)
भजन्ते = निरन्तर भजते हैं।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ ९ ॥

मच्चित्ताः, मद्गतप्राणाः, बोधयन्तः, परस्परम्,
कथयन्तः, च, माम्, नित्यम्, तुष्यन्ति, च, रमन्ति, च॥ ९ ॥

और वे—

मच्चित्ताः = निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले (और)
मद्गतप्राणाः = मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन* (मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा)
परस्परम् = आपसमें (मेरे प्रभावको)
बोधयन्तः = जनाते हुए
च = तथा (गुण और प्रभावसहित मेरा)
कथयन्तः = कथन करते हुए
च = ही
नित्यम् = निरन्तर
तुष्यन्ति = संतुष्ट होते हैं
च = और
माम् = मुझ वासुदेवमें (ही निरन्तर)
रमन्ति = रमण करते हैं।

* मुझ वासुदेवके लिये ही जिन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया है, उनका नाम है ''मद्गतप्राणाः''।

[प्रीतिपूर्वक निरन्तर भजनेका फल।]

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ १०॥

तेषाम्, सततयुक्तानाम्, भजताम्, प्रीतिपूर्वकम्,
ददामि, बुद्धियोगम्, तम्, येन, माम्, उपयान्ति, ते॥ १०॥

तेषाम् = उन
सततयुक्तानाम् = निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए (और)
प्रीतिपूर्वकम् = प्रेमपूर्वक
भजताम् = भजनेवाले भक्तोंको (मैं)
तम् = वह
बुद्धियोगम् = तत्त्वज्ञानरूप योग
ददामि = देता हूँ,
येन = जिससे
ते = वे
माम् = मुझको (ही)
उपयान्ति = प्राप्त होते हैं।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ ११॥

तेषाम्, एव, अनुकम्पार्थम्, अहम्, अज्ञानजम्, तमः,
नाशयामि, आत्मभावस्थः, ज्ञानदीपेन, भास्वता॥ ११॥

और हे अर्जुन!—

तेषाम् = उनके (ऊपर)
अनुकम्पार्थम् = अनुग्रह करनेके लिये
आत्मभावस्थः = उनके अन्तः- करणमें स्थित हुआ
अहम् = मैं स्वयं
एव = ही (उनके)
अज्ञानजम् = अज्ञानजनित
तमः = अन्धकारको
भास्वता = प्रकाशमय
ज्ञानदीपेन = तत्त्वज्ञानरूप दीपकके द्वारा
नाशयामि = नष्ट कर देता हूँ।

[अर्जुनद्वारा भगवान्‌की स्तुति।]

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥ १२॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे॥ १३॥

परम्, ब्रह्म, परम्, धाम, पवित्रम्, परमम्, भवान्,
पुरुषम्, शाश्वतम्, दिव्यम्, आदिदेवम्, अजम्, विभुम्,
आहुः, त्वाम्, ऋषयः, सर्वे, देवर्षिः, नारदः, तथा,
असितः, देवलः, व्यासः, स्वयम्, च, एव, ब्रवीषि, मे॥ १२-१३॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुन बोले, हे भगवन्!—

भवान् = आप
परम् = परम
ब्रह्म = ब्रह्म,
परम् = परम
धाम = धाम (और)
परमम् = परम
पवित्रम् = पवित्र हैं; (क्योंकि)
त्वाम् = आपको
सर्वे = सब
ऋषयः = ऋषिगण
शाश्वतम् = सनातन
दिव्यम् = दिव्य
पुरुषम् = पुरुष (एवं)
आदिदेवम् = देवोंका भी आदिदेव,
अजम् = अजन्मा (और)
विभुम् = सर्वव्यापी
आहुः = कहते हैं,
तथा = वैसे ही
देवर्षिः = देवर्षि
नारदः = नारद (तथा)
असितः = असित (और)
देवलः = देवल ऋषि (तथा)
व्यासः = महर्षि व्यास (भी कहते हैं)
च = और
स्वयम् = स्वयं आप
एव = भी
मे = मेरे प्रति
ब्रवीषि = कहते हैं।

[अर्जुनद्वारा भगवान्‌के प्रभावका वर्णन।]

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः॥ १४॥

सर्वम्, एतत्, ऋतम्, मन्ये, यत्, माम्, वदसि, केशव,
न, हि, ते, भगवन्, व्यक्तिम्, विदुः, देवाः, न, दानवाः॥ १४॥

और—

केशव = हे केशव!		**ते** = आपके	
यत् = जो (कुछ भी)		**व्यक्तिम्** = लीलामय* स्वरूपको	
माम् = मेरे प्रति		**न** = न (तो)	
वदसि = आप कहते हैं,		**दानवाः** = दानव	
एतत् = इस		**विदुः** = जानते हैं (और)	
सर्वम् = सबको (मैं)		**न** = न	
ऋतम् = सत्य		**देवाः** = देवता	
मन्ये = मानता हूँ।		**हि** = ही।	
भगवन् = हे भगवन्!			

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते॥ १५॥

स्वयम्, एव, आत्मना, आत्मानम्, वेत्थ, त्वम्, पुरुषोत्तम,
भूतभावन, भूतेश, देवदेव, जगत्पते॥ १५॥

भूतभावन = हे भूतोंको उत्पन्न करनेवाले!	**त्वम्** = आप
	स्वयम् = स्वयं
भूतेश = हे भूतोंके ईश्वर!	**एव** = ही
देवदेव = हे देवोंके देव!	**आत्मना** = अपनेसे
जगत्पते = हे जगत्‌के स्वामी!	**आत्मानम्** = अपनेको
पुरुषोत्तम = हे पुरुषोत्तम!	**वेत्थ** = जानते हैं।

* गीता अ० ४ श्लोक ६ में इसका विस्तार देखना चाहिये।

[भगवान्‌की विभूतियोंको जाननेके लिये अर्जुनकी इच्छा।]

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि॥ १६॥

वक्तुम्, अर्हसि, अशेषेण, दिव्याः, हि, आत्मविभूतयः,
याभिः, विभूतिभिः, लोकान्, इमान्, त्वम्, व्याप्य, तिष्ठसि॥ १६॥

इसलिये हे भगवन्!—

त्वम्	=	आप
हि	=	ही (उन)
दिव्याः, आत्मविभूतयः	=	अपनी दिव्य विभूतियोंको
अशेषेण	=	सम्पूर्णतासे
वक्तुम्	=	कहनेमें
अर्हसि	=	समर्थ हैं,
याभिः	=	जिन
विभूतिभिः	=	विभूतियोंके द्वारा (आप)
इमान्	=	इन सब
लोकान्	=	लोकोंको
व्याप्य	=	व्याप्त करके
तिष्ठसि	=	स्थित हैं।

[भगवच्चिन्तनके विषयमें अर्जुनका प्रश्न।]

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया॥ १७॥

कथम्, विद्याम्, अहम्, योगिन्, त्वाम्, सदा, परिचिन्तयन्,
केषु, केषु, च, भावेषु, चिन्त्यः, असि, भगवन्, मया॥ १७॥

योगिन्	=	हे योगेश्वर!
अहम्	=	मैं
कथम्	=	किस प्रकार
सदा	=	निरन्तर
परिचिन्तयन्	=	चिन्तन करता हुआ
त्वाम्	=	आपको
विद्याम्	=	जानूँ
च	=	और
भगवन्	=	हे भगवन्! (आप)
केषु, केषु	=	किन-किन
भावेषु	=	भावोंमें
मया	=	मेरे द्वारा
चिन्त्यः	=	चिन्तन करनेयोग्य
असि	=	हैं?

[योगशक्ति और विभूतियोंको विस्तारसे कहनेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना।]

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्॥ १८॥

विस्तरेण, आत्मनः, योगम्, विभूतिम्, च, जनार्दन,
भूयः, कथय, तृप्तिः, हि, शृण्वतः, न, अस्ति, मे, अमृतम्॥ १८॥

और—

जनार्दन	=	हे जनार्दन!	**हि**	=	क्योंकि (आपके)
आत्मनः	=	अपनी	**अमृतम्**	=	अमृतमय वचनोंको
योगम्	=	योगशक्तिको	**शृण्वतः**	=	सुनते हुए
च	=	और	**मे**	=	मेरी
विभूतिम्	=	विभूतिको	**तृप्तिः**	=	तृप्ति
भूयः	=	फिर (भी)	**न**	=	नहीं होती अर्थात्
विस्तरेण	=	विस्तारपूर्वक	**अस्ति**	=	सुननेकी उत्कण्ठा बनी ही रहती है।
कथय	=	कहिये;			

[अपनी विभूतियोंको अनन्त बतलाकर प्रधान-प्रधान विभूतियोंको कहनेके लिये भगवान्‌की प्रतिज्ञा।]

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे॥ १९॥

हन्त, ते, कथयिष्यामि, दिव्याः, हि, आत्मविभूतयः,
प्राधान्यतः, कुरुश्रेष्ठ, न, अस्ति, अन्तः, विस्तरस्य, मे॥ १९॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् बोले—

कुरुश्रेष्ठ	=	हे कुरुश्रेष्ठ!	**प्राधान्यतः**	=	प्रधानतासे
हन्त	=	अब (मैं जो)	**कथयिष्यामि**	=	कहूँगा;
दिव्याः आत्मविभूतयः	=	मेरी दिव्य विभूतियाँ हैं, (उनको)	**हि**	=	क्योंकि
			मे	=	मेरे
ते	=	तेरे लिये	**विस्तरस्य**	=	विस्तारका

अन्तः	= अन्त		
न	= नहीं	**अस्ति**	= है।

[सर्वात्मरूपसे भगवान्‌के स्वरूपका कथन।]

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥ २०॥

अहम्, आत्मा, गुडाकेश, सर्वभूताशयस्थितः,
अहम्, आदिः, च, मध्यम्, च, भूतानाम्, अन्तः, एव, च॥ २०॥

गुडाकेश	= हे अर्जुन!	**मध्यम्**	= मध्य
अहम्	= मैं	**च**	= और
सर्वभूताशयस्थितः	= सब भूतोंके हृदयमें स्थित	**अन्तः**	= अन्त
		च	= भी
आत्मा	= सबका आत्मा हूँ।	**अहम्**	= मैं
च	= तथा	**एव**	= ही
भूतानाम्	= सम्पूर्ण भूतोंका		
आदिः	= आदि,	**(अस्मि)**	= हूँ।

[विष्णु आदि विभूतियोंका कथन।]

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी॥ २१॥

आदित्यानाम्, अहम्, विष्णुः, ज्योतिषाम्, रविः, अंशुमान्,
मरीचिः, मरुताम्, अस्मि, नक्षत्राणाम्, अहम्, शशी॥ २१॥

और हे अर्जुन!—

अहम्	= मैं	**रविः**	= सूर्य
आदित्यानाम्	= अदितिके बारह पुत्रोंमें	**अस्मि**	= हूँ (तथा)
		अहम्	= मैं
विष्णुः	= विष्णु (और)		
ज्योतिषाम्	= ज्योतियोंमें	**मरुताम्**	= उनचास वायु-देवताओंका
अंशुमान्	= किरणोंवाला		

मरीचिः	=	तेज* (और)	**शशी**	=	अधिपति चन्द्रमा
नक्षत्राणाम्	=	नक्षत्रोंका	**(अस्मि)**	=	हूँ।

[सामवेदादि विभूतियोंका कथन।]

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना॥ २२॥

वेदानाम्, सामवेदः, अस्मि, देवानाम्, अस्मि, वासवः,
इन्द्रियाणाम्, मनः, च, अस्मि, भूतानाम्, अस्मि, चेतना॥ २२॥

और मैं—

वेदानाम्	=	वेदोंमें	**मनः**	=	मन
सामवेदः	=	सामवेद	**अस्मि**	=	हूँ
अस्मि	=	हूँ,	**च**	=	और
देवानाम्	=	देवोंमें	**भूतानाम्**	=	भूतप्राणियोंकी
वासवः	=	इन्द्र	**चेतना**	=	चेतना अर्थात् जीवनीशक्ति
अस्मि	=	हूँ,			
इन्द्रियाणाम्	=	इन्द्रियोंमें	**अस्मि**	=	हूँ।

[शंकरादि विभूतियोंका कथन।]

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्॥ २३॥

रुद्राणाम्, शङ्करः, च, अस्मि, वित्तेशः, यक्षरक्षसाम्,
वसूनाम्, पावकः, च, अस्मि, मेरुः, शिखरिणाम्, अहम्॥ २३॥

और मैं—

रुद्राणाम्	=	एकादश रुद्रोंमें	**यक्षरक्षसाम्**	=	यक्ष तथा राक्षसोंमें
शङ्करः	=	शंकर	**वित्तेशः**	=	धनका स्वामी कुबेर हूँ।
अस्मि	=	हूँ			
च	=	और	**अहम्**	=	मैं

* उनचास मरुतोंके नाममें ''मरीचि'' नाम कहीं भी नहीं मिला है। अतः मरीचिको मरुत् न मानकर समस्त मरुद्गणोंका तेज या किरणें माना गया है।

वसूनाम्	=	आठ वसुओंमें	**शिखरिणाम्**	=	शिखरवाले पर्वतोंमें
पावकः	=	अग्नि			
अस्मि	=	हूँ	**मेरुः**	=	सुमेरु पर्वत
च	=	और	**(अस्मि)**	=	हूँ।

[बृहस्पति आदि विभूतियोंका कथन।]

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः॥ २४॥

पुरोधसाम्, च, मुख्यम्, माम्, विद्धि, पार्थ, बृहस्पतिम्,
सेनानीनाम्, अहम्, स्कन्दः, सरसाम्, अस्मि, सागरः॥ २४॥

और—

पुरोधसाम्	=	पुरोहितोंमें	**सेनानीनाम्**	=	सेनापतियोंमें
मुख्यम्	=	मुखिया	**स्कन्दः**	=	स्कन्द
बृहस्पतिम्	=	बृहस्पति	**च**	=	और
माम्	=	मुझको			
विद्धि	=	जान।	**सरसाम्**	=	जलाशयोंमें
पार्थ	=	हे पार्थ!	**सागरः**	=	समुद्र
अहम्	=	मैं	**अस्मि**	=	हूँ।

[भृगु आदि विभूतियोंका कथन।]

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः॥ २५॥

महर्षीणाम्, भृगुः, अहम्, गिराम्, अस्मि, एकम्, अक्षरम्,
यज्ञानाम्, जपयज्ञः, अस्मि, स्थावराणाम्, हिमालयः॥ २५॥

और हे अर्जुन!—

अहम्	=	मैं	**एकम्**	=	एक
महर्षीणाम्	=	महर्षियोंमें	**अक्षरम्**	=	अक्षर अर्थात् ओंकार
भृगुः	=	भृगु (और)	**अस्मि**	=	हूँ।
गिराम्	=	शब्दोंमें	**यज्ञानाम्**	=	सब प्रकारके यज्ञोंमें

जपयज्ञः	=	जपयज्ञ (और)	**हिमालयः**	=	हिमालय पहाड़
स्थावराणाम्	=	स्थिर रहनेवालोंमें	**अस्मि**	=	हूँ।

[अश्वत्थ आदि विभूतियोंका कथन।]

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः॥ २६ ॥

अश्वत्थः, सर्ववृक्षाणाम्, देवर्षीणाम्, च, नारदः,
गन्धर्वाणाम्, चित्ररथः, सिद्धानाम्, कपिलः, मुनिः॥ २६ ॥

और मैं—

सर्ववृक्षाणाम्	=	सब वृक्षोंमें	**च**	=	और
अश्वत्थः	=	पीपलका वृक्ष,	**सिद्धानाम्**	=	सिद्धोंमें
देवर्षीणाम्	=	देवर्षियोंमें	**कपिलः**	=	कपिल
नारदः	=	नारद मुनि,	**मुनिः**	=	मुनि
गन्धर्वाणाम्	=	गन्धर्वोंमें			
चित्ररथः	=	चित्ररथ	**(अस्मि)**	=	हूँ।

[उच्चैःश्रवा आदि विभूतियोंका कथन।]

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्॥ २७ ॥

उच्चैःश्रवसम्, अश्वानाम्, विद्धि, माम्, अमृतोद्भवम्,
ऐरावतम्, गजेन्द्राणाम्, नराणाम्, च, नराधिपम्॥ २७ ॥

और हे अर्जुन! तू—

अश्वानाम्	=	घोड़ोंमें	**ऐरावतम्**	=	ऐरावत नामक हाथी
अमृतोद्भवम्	=	अमृतके साथ उत्पन्न होनेवाला	**च**	=	और
उच्चैःश्रवसम्	=	उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा,	**नराणाम्**	=	मनुष्योंमें
			नराधिपम्	=	राजा
			माम्	=	मुझको
गजेन्द्राणाम्	=	श्रेष्ठ हाथियोंमें	**विद्धि**	=	जान।

[वज्रादि विभूतियोंका कथन।]

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः॥ २८॥

आयुधानाम्, अहम्, वज्रम्, धेनूनाम्, अस्मि, कामधुक्,
प्रजनः, च, अस्मि, कन्दर्पः, सर्पाणाम्, अस्मि, वासुकिः॥ २८॥

और हे अर्जुन!—

अहम्	= मैं		उत्पत्तिका हेतु
आयुधानाम्	= शस्त्रोंमें	**कन्दर्पः**	= कामदेव
वज्रम्	= वज्र (और)	**अस्मि**	= हूँ
धेनूनाम्	= गौओंमें	**च**	= और
कामधुक्	= कामधेनु	**सर्पाणाम्**	= सर्पोंमें
अस्मि	= हूँ।		
प्रजनः	= { शास्त्रोक्त रीतिसे सन्तानकी	**वासुकिः**	= सर्पराज वासुकि
		अस्मि	= हूँ।

[अनन्त आदि विभूतियोंका कथन।]

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्॥ २९॥

अनन्तः, च, अस्मि, नागानाम्, वरुणः, यादसाम्, अहम्,
पितॄणाम्, अर्यमा, च, अस्मि, यमः, संयमताम्, अहम्॥ २९॥

तथा—

अहम्	= मैं	**वरुणः**	= वरुण देवता
नागानाम्	= नागोंमें*	**अस्मि**	= हूँ
अनन्तः	= शेषनाग	**च**	= और
च	= और	**पितॄणाम्**	= पितरोंमें
यादसाम्	= { जलचरोंका अधिपति	**अर्यमा**	= { अर्यमा नामक पितर (तथा)

* नाग और सर्प यह दो प्रकारकी सर्पोंकी ही जाति हैं।

संयमताम्	=	शासन करनेवालोंमें	**अहम्**	=	मैं
यमः	=	यमराज	**अस्मि**	=	हूँ।

[प्रह्लादादि विभूतियोंका कथन।]

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥ ३० ॥

प्रह्लादः, च, अस्मि, दैत्यानाम्, कालः, कलयताम्, अहम्,
मृगाणाम्, च, मृगेन्द्रः, अहम्, वैनतेयः, च, पक्षिणाम्॥ ३० ॥

और हे अर्जुन!—

अहम्	=	मैं	**च**	=	तथा
दैत्यानाम्	=	दैत्योंमें	**मृगाणाम्**	=	पशुओंमें
प्रह्लादः	=	प्रह्लाद	**मृगेन्द्रः**	=	मृगराज सिंह
च	=	और	**च**	=	और
कलयताम्	=	गणना करनेवालोंका	**पक्षिणाम्**	=	पक्षियोंमें
			अहम्	=	मैं
कालः	=	समय*	**वैनतेयः**	=	गरुड़
अस्मि	=	हूँ	**(अस्मि)**	=	हूँ।

[पवन आदि विभूतियोंका कथन।]

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी॥ ३१ ॥

पवनः, पवताम्, अस्मि, रामः, शस्त्रभृताम्, अहम्,
झषाणाम्, मकरः, च, अस्मि, स्रोतसाम्, अस्मि, जाह्नवी॥ ३१ ॥

और—

अहम्	=	मैं	**शस्त्रभृताम्**	=	शस्त्रधारियोंमें
पवताम्	=	पवित्र करनेवालोंमें	**रामः**	=	श्रीराम
पवनः	=	वायु (और)	**अस्मि**	=	हूँ (तथा)

* क्षण-घड़ी-दिन-पक्ष-मास आदिमें जो समय है, सो मैं हूँ।

झषाणाम् = मछलियोंमें
मकरः = मगर
अस्मि = हूँ

च = और
स्त्रोतसाम् = नदियोंमें
जाह्नवी = श्रीभागीरथी गंगाजी
अस्मि = हूँ।

[भगवान्‌की योगशक्तिका और अध्यात्मविद्या आदि विभूतियोंका कथन।]

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्॥ ३२ ॥

सर्गाणाम्, आदिः, अन्तः, च, मध्यम्, च, एव, अहम्, अर्जुन,
अध्यात्मविद्या, विद्यानाम्, वादः, प्रवदताम्, अहम्॥ ३२ ॥

और—

अर्जुन = हे अर्जुन!
सर्गाणाम् = सृष्टियोंका
आदिः = आदि
च = और
अन्तः = अन्त
च = तथा
मध्यम् = मध्य (भी)
अहम् = मैं
एव = ही (हूँ)।
अहम् = मैं

विद्यानाम् = विद्याओंमें
अध्यात्मविद्या = { अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या (और)
प्रवदताम् = { परस्पर विवाद करनेवालोंका
वादः = { तत्त्व-निर्णयके लिये किया जानेवाला वाद
(अस्मि) = हूँ।

[अकारादि विभूतियोंका कथन।]

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः॥ ३३ ॥

अक्षराणाम्, अकारः, अस्मि, द्वन्द्वः, सामासिकस्य, च,
अहम्, एव, अक्षयः, कालः, धाता, अहम्, विश्वतोमुखः॥ ३३ ॥

तथा—

अहम् = मैं
अक्षराणाम् = अक्षरोंमें

अकारः = अकार हूँ
च = और

सामासिकस्य	=	समासोंमें
द्वन्द्वः	=	द्वन्द्व नामक समास
अस्मि	=	हूँ,
अक्षयः	=	अक्षय
कालः	=	काल अर्थात् कालका भी महाकाल (तथा)
विश्वतोमुखः	=	सब ओर मुखवाला विराट्स्वरूप (सबका)
धाता	=	धारण-पोषण करनेवाला (भी)
अहम्	=	मैं
एव	=	ही
(अस्मि)	=	हूँ।

[मृत्यु आदि विभूतियोंका कथन।]

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥ ३४॥

मृत्युः, सर्वहरः, च, अहम्, उद्भवः, च, भविष्यताम्,
कीर्तिः, श्रीः, वाक्, च, नारीणाम्, स्मृतिः, मेधा, धृतिः, क्षमा॥ ३४॥

हे अर्जुन!—

अहम्	=	मैं
सर्वहरः	=	सबका नाश करनेवाला
मृत्युः	=	मृत्यु
च	=	और
भविष्यताम्	=	उत्पन्न होनेवालोंका
उद्भवः	=	उत्पत्ति-हेतु हूँ
च	=	तथा
नारीणाम्	=	स्त्रियोंमें
कीर्तिः	=	कीर्ति, *
श्रीः	=	श्री,
वाक्	=	वाक्,
स्मृतिः	=	स्मृति,
मेधा	=	मेधा,
धृतिः	=	धृति
च	=	और
क्षमा	=	क्षमा
(अस्मि)	=	हूँ।

[बृहत्साम आदि विभूतियोंका कथन।]

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः॥ ३५॥

---

* कीर्ति आदि ये सात देवताओंकी स्त्रियाँ और स्त्रीवाचक नामवाले गुण भी प्रसिद्ध हैं, इसलिये दोनों प्रकारसे ही भगवान्की विभूतियाँ हैं।

बृहत्साम, तथा, साम्नाम्, गायत्री, छन्दसाम्, अहम्, मासानाम्, मार्गशीर्षः, अहम्, ऋतूनाम्, कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

तथा = तथा		**मासानाम्** = महीनोंमें	
साम्नाम् = गायन करनेयोग्य श्रुतियोंमें		**मार्गशीर्षः** = मार्गशीर्ष (और)	
अहम् = मैं		**ऋतूनाम्** = ऋतुओंमें	
बृहत्साम = बृहत्साम (और)			
छन्दसाम् = छन्दोंमें		**कुसुमाकरः** = वसन्त	
गायत्री = गायत्री छन्द हूँ (तथा)		**अहम्** = मैं	
		(अस्मि) = हूँ।	

[द्यूत आदि विभूतियोंका कथन।]

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्॥ ३६ ॥

द्यूतम्, छलयताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम्, जयः, अस्मि, व्यवसायः,अस्मि, सत्त्वम्, सत्त्ववताम्, अहम्॥ ३६ ॥

हे अर्जुन!

अहम् = मैं	**जयः** = विजय
छलयताम् = छल करनेवालोंमें	**अस्मि** = हूँ।
द्यूतम् = जूआ (और)	**(व्यवसायिनाम्)** = निश्चय करनेवालोंका
तेजस्विनाम् = प्रभावशाली पुरुषोंका	
तेजः = प्रभाव	**व्यवसायः** = निश्चय, और
अस्मि = हूँ।	**सत्त्ववताम्** = सात्त्विक पुरुषोंका
अहम् = मैं	**सत्त्वम्** = सात्त्विक भाव
(जेतॄणाम्) = जीतनेवालोंका	**अस्मि** = हूँ।

[वासुदेव आदि विभूतियोंका कथन।]

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः॥ ३७ ॥

वृष्णीनाम्, वासुदेवः, अस्मि, पाण्डवानाम्, धनञ्जयः,
मुनीनाम्, अपि, अहम्, व्यासः, कवीनाम्, उशना, कविः ॥ ३७ ॥

और—

वृष्णीनाम्	=	वृष्णिवंशियोंमें*	**कवीनाम्**	=	कवियोंमें
वासुदेवः	=	वासुदेव अर्थात् मैं स्वयं तेरा सखा	**उशना**	=	शुक्राचार्य
			कविः	=	कवि
पाण्डवानाम्	=	पाण्डवोंमें	**अपि**	=	भी
धनञ्जयः	=	धनंजय अर्थात् तू,			
मुनीनाम्	=	मुनियोंमें	**अहम्**	=	मैं (ही)
व्यासः	=	वेदव्यास (और)	**अस्मि**	=	हूँ।

[दण्ड आदि विभूतियोंका कथन।]

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्॥ ३८ ॥

दण्डः, दमयताम्, अस्मि, नीतिः, अस्मि, जिगीषताम्,
मौनम्, च, एव, अस्मि, गुह्यानाम्, ज्ञानम्, ज्ञानवताम्, अहम्॥ ३८ ॥

मैं—

दमयताम्	=	दमन करनेवालोंका	**गुह्यानाम्**	=	गुप्त रखनेयोग्य भावोंका (रक्षक)
दण्डः	=	दण्ड अर्थात् दमन करनेकी शक्ति	**मौनम्**	=	मौन
			अस्मि	=	हूँ
			च	=	और
अस्मि	=	हूँ,	**ज्ञानवताम्**	=	ज्ञानवानोंका
जिगीषताम्	=	जीतनेकी इच्छावालोंकी	**ज्ञानम्**	=	तत्त्वज्ञान
			अहम्	=	मैं
नीतिः	=	नीति	**एव**	=	ही
अस्मि	=	हूँ,	**(अस्मि)**	=	हूँ।

* यादवोंके ही अन्तर्गत एक वृष्णिवंश भी था।

[सर्वरूपसे प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका कथन।]

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥ ३९॥

यत्, च, अपि, सर्वभूतानाम्, बीजम्, तत्, अहम्, अर्जुन,
न, तत्, अस्ति, विना, यत्, स्यात्, मया, भूतम्, चराचरम्॥ ३९॥

च = और
अर्जुन = हे अर्जुन!
यत् = जो
सर्वभूतानाम् = सब भूतोंकी
बीजम् = { उत्पत्तिका कारण है,
तत् = वह
अपि = भी
अहम् = { मैं (ही हूँ; क्योंकि ऐसा)
तत् = वह
चराचरम् = { चर और अचर (कोई भी)
भूतम् = भूत
न = नहीं
अस्ति = है,
यत् = जो
मया = मुझसे
विना = रहित
स्यात् = हो।

[भगवद्विभूतियोंकी अनन्तताका कथन।]

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया॥ ४०॥

न, अन्तः, अस्ति, मम, दिव्यानाम्, विभूतीनाम्, परन्तप,
एषः, तु, उद्देशतः, प्रोक्तः, विभूतेः, विस्तरः, मया॥ ४०॥

परन्तप = हे परंतप!
मम = मेरी
दिव्यानाम् = दिव्य
विभूतीनाम् = विभूतियोंका
अन्तः = अन्त
न = नहीं
अस्ति = है,
मया = मैंने (अपनी)
विभूतेः = विभूतियोंका
एषः = यह
विस्तरः = विस्तार
तु = तो (तेरे लिये)
उद्देशतः = { एकदेशसे अर्थात् संक्षेपसे
प्रोक्तः = कहा है।

[भगवान्के तेजके अंशसे सम्पूर्ण वस्तुओंकी उत्पत्तिका कथन।]

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ ४१॥

यत्, यत्, विभूतिमत्, सत्त्वम्, श्रीमत्, ऊर्जितम्, एव, वा,
तत्, तत्, एव, अवगच्छ, त्वम्, मम, तेजोंऽशसम्भवम्॥ ४१॥

इसलिये हे अर्जुन!—

यत् = जो		**सत्त्वम्** = वस्तु है,	
यत् = जो		**तत्** = उस–	
एव = भी		**तत्** = उसको	
विभूतिमत् = विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त,		**त्वम्** = तू	
		मम = मेरे	
श्रीमत् = कान्तियुक्त		**तेजोंऽशसम्भवम्, एव** = तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति	
वा = और			
ऊर्जितम् = शक्तियुक्त		**अवगच्छ** = जान।	

[भगवान्की योगशक्तिके एक अंशसे सम्पूर्ण जगत्की स्थितिका कथन।]

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥ ४२॥

अथवा, बहुना, एतेन, किम्, ज्ञातेन, तव, अर्जुन,
विष्टभ्य, अहम्, इदम्, कृत्स्नम्, एकांशेन, स्थितः, जगत्॥ ४२॥

अथवा = अथवा	**अहम्** = मैं
अर्जुन = हे अर्जुन!	**इदम्** = इस
एतेन = इस	**कृत्स्नम्** = सम्पूर्ण
बहुना = बहुत	**जगत्** = जगत्को (अपनी योगशक्तिके)
ज्ञातेन = जाननेसे	**एकांशेन** = एक अंशमात्रसे
तव = तेरा	**विष्टभ्य** = धारण करके
किम् = क्या (प्रयोजन है)।	**स्थितः** = स्थित हूँ।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथैकादशोऽध्यायः

__प्रधान-विषय__—१ से ४ तक विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना, (५—८) भगवान्‌द्वारा अपने विश्वरूपका वर्णन, (९—१४) धृतराष्ट्रके प्रति संजयद्वारा विश्वरूपका वर्णन, (१५—३१) अर्जुनद्वारा भगवान्‌के विश्वरूपका देखा जाना और उनकी स्तुति करना, (३२—३४) भगवान्‌द्वारा अपने प्रभावका वर्णन और युद्धके लिये अर्जुनको उत्साहित करना, (३५—४६) भयभीत हुए अर्जुनद्वारा भगवान्‌की स्तुति और चतुर्भुजरूपका दर्शन करानेके लिये प्रार्थना, (४७—५०) भगवान्‌द्वारा अपने विश्वरूपके दर्शनकी महिमाका कथन तथा चतुर्भुज और सौम्यरूपका दिखाया जाना, (५१—५५) बिना अनन्यभक्तिके चतुर्भुजरूपके दर्शनकी दुर्लभताका और फलसहित अनन्यभक्तिका कथन।

[भगवान् और उनके उपदेशकी प्रशंसा कर विश्वरूपके दर्शन करानेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना।]

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम॥ १॥

मदनुग्रहाय, परमम्, गुह्यम्, अध्यात्मसञ्ज्ञितम्, यत्, त्वया, उक्तम्, वचः, तेन, मोहः, अयम्, विगतः, मम॥ १॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचन सुनकर अर्जुन बोले, हे भगवन्!—

मदनुग्रहाय	= मुझपर अनुग्रह करनेके लिये	**परमम्**	= परम
		गुह्यम्	= गोपनीय
त्वया	= आपने	**अध्यात्मसञ्ज्ञितम्**	= अध्यात्मविषयक
यत्	= जो	**वचः**	= वचन अर्थात् उपदेश

उक्तम्	= कहा,	**अयम्**	= यह
तेन	= उससे	**मोहः**	= अज्ञान
मम	= मेरा	**विगतः**	= नष्ट हो गया है।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्॥ २॥

भवाप्ययौ, हि, भूतानाम्, श्रुतौ, विस्तरशः, मया,
त्वत्तः, कमलपत्राक्ष, माहात्म्यम्, अपि, च, अव्ययम्॥ २॥

हि	= क्योंकि	**विस्तरशः**	= विस्तारपूर्वक
कमलपत्राक्ष	= हे कमलनेत्र!	**श्रुतौ**	= सुने हैं
मया	= मैंने	**च**	= तथा (आपकी)
त्वत्तः	= आपसे	**अव्ययम्**	= अविनाशी
भूतानाम्	= भूतोंकी	**माहात्म्यम्**	= महिमा
भवाप्ययौ	= उत्पत्ति और प्रलय	**अपि**	= भी (सुनी है)।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम॥ ३॥

एवम्, एतत्, यथा, आत्थ, त्वम्, आत्मानम्, परमेश्वर,
द्रष्टुम्, इच्छामि, ते, रूपम्, ऐश्वरम्, पुरुषोत्तम॥ ३॥

परमेश्वर	= हे परमेश्वर!	**ते**	= आपके
त्वम्	= आप	**ऐश्वरम्, रूपम्**	= ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेजसे युक्त ऐश्वर-रूपको (मैं प्रत्यक्ष)
आत्मानम्	= अपनेको		
यथा	= जैसा		
आत्थ	= कहते हैं,		
एतत्	= यह (ठीक)		
एवम् (एव)	= ऐसा ही है, (परंतु)	**द्रष्टुम्**	= देखना
पुरुषोत्तम	= हे पुरुषोत्तम!	**इच्छामि**	= चाहता हूँ।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्॥ ४॥

मन्यसे, यदि, तत्, शक्यम्, मया, द्रष्टुम्, इति, प्रभो,
योगेश्वर, ततः, मे, त्वम्, दर्शय, आत्मानम्, अव्ययम्॥ ४॥

इसलिये—

प्रभो	=	हे प्रभो!*	**ततः**	=	तो
यदि	=	यदि	**योगेश्वर**	=	हे योगेश्वर!
मया	=	मेरे द्वारा			
तत्	=	आपका वह रूप	**त्वम्**	=	आप
द्रष्टुम्	=	देखा जाना	**आत्मानम्, अव्ययम्**	=	अपने उस अविनाशी स्वरूपका
शक्यम्	=	शक्य है—			
इति	=	ऐसा	**मे**	=	मुझे
मन्यसे	=	आप मानते हैं,	**दर्शय**	=	दर्शन कराइये।

[भगवान्‌का अपने अंदर देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि समस्त चराचर प्राणियों तथा अनेक आश्चर्यप्रद दृश्योंसहित सम्पूर्ण जगत् देखनेकी आज्ञा देना तथा दिव्यदृष्टि प्रदान करनेका वचन देना।]

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥ ५॥

पश्य, मे, पार्थ, रूपाणि, शतशः, अथ, सहस्रशः,
नानाविधानि, दिव्यानि, नानावर्णाकृतीनि, च॥ ५॥

इस प्रकार अर्जुनके प्रार्थना करनेपर श्रीभगवान् बोले—

पार्थ	=	हे पार्थ!	**नानाविधानि**	=	नाना प्रकारके
अथ	=	अब (तू)	**च**	=	और
मे	=	मेरे	**नानावर्णाकृतीनि**	=	नाना वर्ण तथा नाना आकृतिवाले
शतशः, सहस्रशः	=	सैकड़ों, हजारों			

* उत्पत्ति स्थिति और प्रलय तथा अन्तर्यामीरूपसे शासन करनेवाला होनेसे भगवान्‌का नाम ''प्रभु'' है।

दिव्यानि	= अलौकिक		**पश्य**	= देख
रूपाणि	= रूपोंको			

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत॥ ६॥

पश्य, आदित्यान्, वसून्, रुद्रान्, अश्विनौ, मरुतः, तथा,
बहूनि, अदृष्टपूर्वाणि, पश्य, आश्चर्याणि, भारत॥ ६॥

और—

भारत	= हे भरतवंशी अर्जुन! (मुझमें)		(और)
		मरुतः	= उनचास मरुद्गणोंको
आदित्यान्	= आदित्योंको अर्थात् अदितिके द्वादश पुत्रोंको,	**पश्य**	= देख
		तथा	= तथा (और भी)
		बहूनि	= बहुत-से
वसून्	= आठ वसुओंको,	**अदृष्टपूर्वाणि**	= पहले न देखे हुए
रुद्रान्	= एकादश रुद्रोंको,	**आश्चर्याणि**	= आश्चर्यमय रूपोंको
अश्विनौ	= दोनों अश्विनीकुमारोंको	**पश्य**	= देख।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि॥ ७॥

इह, एकस्थम्, जगत्, कृत्स्नम्, पश्य, अद्य, सचराचरम्,
मम, देहे, गुडाकेश, यत्, च, अन्यत्, द्रष्टुम्, इच्छसि॥ ७॥

और—

गुडाकेश*	= हे अर्जुन!	**सचराचरम्**	= चराचरसहित
अद्य	= अब	**कृत्स्नम्**	= सम्पूर्ण
इह	= इस	**जगत्**	= जगत्को
मम	= मेरे	**पश्य**	= देख (तथा)
देहे	= शरीरमें	**अन्यत्**	= और
एकस्थम्	= एक जगह स्थित	**च**	= भी

* निद्राको जीतनेवाला होनेसे अर्जुनका नाम "गुडाकेश" हुआ था।

यत् = जो (कुछ)	**इच्छसि** = { चाहता हो, (सो देख)।
द्रष्टुम् = देखना	

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥ ८॥

न, तु, माम्, शक्यसे, द्रष्टुम्, अनेन, एव, स्वचक्षुषा,
दिव्यम्, ददामि, ते, चक्षुः, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्॥ ८॥

तु = परंतु	**ते** = तुझे
माम् = मुझको (तू)	**दिव्यम्** = { दिव्य अर्थात् अलौकिक
अनेन = इन	
स्वचक्षुषा = { अपने प्राकृत नेत्रोंद्वारा	**चक्षुः** = चक्षु
	ददामि = देता हूँ; (उससे तू)
द्रष्टुम् = देखनेमें	**मे** = मेरी
एव = निःसंदेह	**ऐश्वरम्** = ईश्वरीय
न, शक्यसे = समर्थ नहीं है;	**योगम्** = योगशक्तिको
(अतः) = इसीसे (मैं)	**पश्य** = देख।

[अर्जुनके प्रति भगवान्‌द्वारा अपने विश्वरूपका दिखाया जाना।]

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्॥ ९॥

एवम्, उक्त्वा, ततः, राजन्, महायोगेश्वरः, हरिः,
दर्शयामास, पार्थाय, परमम्, रूपम्, ऐश्वरम्॥ ९॥

संजय बोले—

राजन् = हे राजन्!	**एवम्** = इस प्रकार
महायोगेश्वरः = महायोगेश्वर और	**उक्त्वा** = कहकर
हरिः = { सब पापोंके नाश करनेवाले भगवान्‌ने	**ततः** = उसके पश्चात्
	पार्थाय = अर्जुनको

परमम्	= परम	**रूपम्**	=	दिव्यस्वरूप
ऐश्वरम्	= ऐश्वर्ययुक्त	**दर्शयामास**	=	दिखलाया।

[संजयद्वारा विश्वरूपका वर्णन।]

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्॥ १०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्॥ ११॥

अनेकवक्त्रनयनम्, अनेकाद्भुतदर्शनम्,
अनेकदिव्याभरणम्, दिव्यानेकोद्यतायुधम्॥ १०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरम्, दिव्यगन्धानुलेपनम्,
सर्वाश्चर्यमयम्, देवम्, अनन्तम्, विश्वतोमुखम्॥ ११॥

और उस—

अनेकवक्त्रनयनम्	= अनेक मुख और नेत्रोंसे युक्त	**दिव्यगन्धानुलेपनम्**	= दिव्य गन्धका सारे शरीरमें लेप किये हुए,
अनेकाद्भुतदर्शनम्	= अनेक अद्भुत दर्शनोंवाले	**सर्वाश्चर्यमयम्**	= सब प्रकारके आश्चर्योंसे युक्त
अनेकदिव्याभरणम्	= बहुत-से दिव्य भूषणोंसे युक्त (और)	**अनन्तम्**	= सीमारहित (और)
दिव्यानेकोद्यतायुधम्	= बहुत-से दिव्य शस्त्रोंको हाथोंमें उठाये हुए,	**विश्वतोमुखम्**	= सब ओर मुख किये हुए विराट्स्वरूप
दिव्यमाल्याम्बरधरम्	= दिव्य माला और वस्त्रोंको धारण किये हुए (और)	**देवम्**	= परमदेव परमेश्वरको (अर्जुनने देखा)

[विश्वरूपके प्रकाशकी महिमा।]

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥ १२॥

दिवि, सूर्यसहस्रस्य, भवेत्, युगपत्, उत्थिता,
यदि, भाः, सदृशी, सा, स्यात्, भासः, तस्य, महात्मनः॥ १२॥

और हे राजन्!—

दिवि	= आकाशमें	**सा**	= वह (भी)
सूर्यसहस्रस्य	= हजार सूर्योंके	**तस्य**	= उस
युगपत्	= एक साथ	**महात्मनः**	= विश्वरूप परमात्माके
उत्थिता	= उदय होनेसे उत्पन्न (जो)	**भासः**	= प्रकाशके
		सदृशी	= सदृश
भाः	= प्रकाश	**यदि**	= कदाचित् (ही)
भवेत्	= हो,	**स्यात्**	= हो।

[अर्जुनका विश्वरूपमें सम्पूर्ण जगत्‌को एक जगह स्थित देखना।]

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा॥ १३॥

तत्र, एकस्थम्, जगत्, कृत्स्नम्, प्रविभक्तम्, अनेकधा,
अपश्यत्, देवदेवस्य, शरीरे, पाण्डवः, तदा॥ १३॥

और—ऐसे आश्चर्यमय रूपको देखते हुए—

पाण्डवः	= पाण्डुपुत्र अर्जुनने	**देवदेवस्य**	= देवोंके देव श्रीकृष्णभगवान्‌के
तदा	= उस समय		
अनेकधा	= अनेक प्रकारसे		
प्रविभक्तम्	= विभक्त अर्थात् पृथक्-पृथक्	**तत्र**	= उस
		शरीरे	= शरीरमें
कृत्स्नम्	= सम्पूर्ण	**एकस्थम्**	= एक जगह स्थित
जगत्	= जगत्‌को	**अपश्यत्**	= देखा।

[उस रूपको देखकर अर्जुनका विस्मित और हर्षित होकर श्रद्धाके साथ भगवान्‌को प्रणाम करनेका कथन।]

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत॥ १४॥

ततः, सः, विस्मयाविष्टः, हृष्टरोमा, धनञ्जयः, प्रणम्य, शिरसा, देवम्, कृताञ्जलिः, अभाषत॥ १४॥

और—

ततः	= उसके अनन्तर	**देवम्**	= प्रकाशमय विश्वरूप परमात्माको (श्रद्धा-भक्तिसहित)
सः	= वह	**शिरसा**	= सिरसे
विस्मयाविष्टः	= आश्चर्यसे चकित (और)	**प्रणम्य**	= प्रणाम करके
हृष्टरोमा	= पुलकित-शरीर	**कृताञ्जलिः**	= हाथ जोड़कर
धनञ्जयः	= अर्जुन	**अभाषत**	= बोला।

[विश्वरूपमें देवता, ऋषि आदिको देखना।]

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥ १५॥

पश्यामि, देवान्, तव, देव, देहे, सर्वान्, तथा, भूतविशेषसङ्घान्, ब्रह्माणम्, ईशम्, कमलासनस्थम्, ऋषीन्, च, सर्वान्, उरगान्, च, दिव्यान्॥ १५॥

अर्जुन बोले—

देव	= हे देव! (मैं)	**सर्वान्**	= सम्पूर्ण
तव	= आपके	**देवान्**	= देवोंको
देहे	= शरीरमें	**तथा**	= तथा

भूतविशेषसङ्घान्	= अनेक भूतोंके समुदायोंको,	**च**	=	और
		सर्वान्	=	सम्पूर्ण
कमलासनस्थम्	= कमलके आसनपर विराजित	**ऋषीन्**	=	ऋषियोंको
		च	=	तथा
		दिव्यान्	=	दिव्य
ब्रह्माणम्	= ब्रह्माको,	**उरगान्**	=	सर्पोंको
ईशम्	= महादेवको	**पश्यामि**	=	देखता हूँ।

[विश्वरूपको अनेक बाहु और उदर आदिसे युक्त देखना।]

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥ १६॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्, पश्यामि, त्वाम्, सर्वतः, अनन्तरूपम्, न, अन्तम्, न, मध्यम्, न, पुनः, तव, आदिम्, पश्यामि, विश्वेश्वर, विश्वरूप॥ १६॥

और—

विश्वेश्वर	= हे सम्पूर्ण विश्वके स्वामिन्!	**विश्वरूप**	=	हे विश्वरूप! (मैं)
		तव	=	आपके
त्वाम्	= आपको	**न**	=	न
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्	= अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्रोंसे युक्त (तथा)	**अन्तम्**	=	अन्तको
		पश्यामि	=	देखता हूँ,
		न	=	न
		मध्यम्	=	मध्यको
सर्वतः	= सब ओरसे	**पुनः**	=	और
अनन्तरूपम्	= अनन्त रूपोंवाला	**न**	=	न
पश्यामि	= देखता हूँ।	**आदिम्**	=	आदिको (ही)।

[विश्वरूपको किरीट, गदा और चक्र आदिसे युक्त देखना।]

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रिणम्, च, तेजोराशिम्, सर्वतः, दीप्तिमन्तम्, पश्यामि, त्वाम्, दुर्निरीक्ष्यम्, समन्तात्, दीप्तानलार्कद्युतिम्, अप्रमेयम् ॥ १७ ॥

और हे विष्णो!—

त्वाम् = आपको (मैं)
किरीटिनम् = मुकुटयुक्त,
गदिनम् = गदायुक्त
च = और
चक्रिणम् = चक्रयुक्त (तथा)
सर्वतः = सब ओरसे
दीप्तिमन्तम् = प्रकाशमान
तेजोराशिम् = तेजके पुंज,
दीप्तानलार्कद्युतिम् = प्रज्वलित अग्नि और सूर्यके सदृश ज्योतियुक्त,
दुर्निरीक्ष्यम् = कठिनतासे देखे जानेयोग्य (और)
समन्तात् = सब ओरसे
अप्रमेयम् = अप्रमेयस्वरूप
पश्यामि = देखता हूँ।

[विश्वरूपकी स्तुति]

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

त्वम्, अक्षरम्, परमम्, वेदितव्यम्, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्, निधानम्, त्वम्, अव्ययः, शाश्वतधर्मगोप्ता, सनातनः, त्वम्, पुरुषः, मतः, मे ॥ १८ ॥

इसलिये हे भगवन्!—

त्वम् = आप (ही)
वेदितव्यम् = जाननेयोग्य

परमम्	=	परम
अक्षरम्	=	अक्षर अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हैं,
त्वम्	=	आप (ही)
अस्य	=	इस
विश्वस्य	=	जगत्के
परम्	=	परम
निधानम्	=	आश्रय हैं,
त्वम्	=	आप (ही)
शाश्वतधर्मगोप्ता	=	अनादि धर्मके रक्षक हैं (और)
त्वम्	=	आप (ही)
अव्ययः	=	अविनाशी
सनातनः	=	सनातन
पुरुषः	=	पुरुष हैं (ऐसा)
मे	=	मेरा
मतः	=	मत है।

[अनन्त सामर्थ्य और प्रभावयुक्त विश्वरूपका दर्शन।]

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥ १९॥

अनादिमध्यान्तम्, अनन्तवीर्यम्, अनन्तबाहुम्, शशिसूर्यनेत्रम्, पश्यामि, त्वाम्, दीप्तहुताशवक्त्रम्, स्वतेजसा, विश्वम्, इदम्, तपन्तम्॥ १९॥

हे परमेश्वर! मैं—

त्वाम्	=	आपको
अनादिमध्यान्तम्	=	आदि, अन्त और मध्यसे रहित,
अनन्तवीर्यम्	=	अनन्त सामर्थ्यसे युक्त,
अनन्तबाहुम्	=	अनन्त भुजावाले
शशिसूर्यनेत्रम्	=	चन्द्र, सूर्यरूप नेत्रोंवाले,
दीप्तहुताशवक्त्रम्	=	प्रज्वलित अग्निरूप मुखवाले (और)
स्वतेजसा	=	अपने तेजसे
इदम्	=	इस
विश्वम्	=	जगत्को
तपन्तम्	=	संतप्त करते हुए
पश्यामि	=	देखता हूँ।

[अद्भुत विराट्रूपसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त देखना।]

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्॥ २०॥

द्यावापृथिव्योः, इदम्, अन्तरम्, हि, व्याप्तम्, त्वया, एकेन, दिशः, च, सर्वाः, दृष्ट्वा, अद्भुतम्, रूपम्, उग्रम्, तव, इदम्, लोकत्रयम्, प्रव्यथितम्, महात्मन्॥ २०॥

और—

महात्मन्	=	हे महात्मन्!	**व्याप्तम्**	=	परिपूर्ण हैं; (तथा)
इदम्	=	यह	**तव**	=	आपके
द्यावापृथिव्योः, अन्तरम्	=	स्वर्ग और पृथ्वीके बीचका सम्पूर्ण आकाश	**इदम्**	=	इस
			अद्भुतम्	=	अलौकिक और
च	=	तथा	**उग्रम्**	=	भयंकर
सर्वाः	=	सब	**रूपम्**	=	रूपको
दिशः	=	दिशाएँ	**दृष्ट्वा**	=	देखकर
एकेन	=	एक	**लोकत्रयम्**	=	तीनों लोक
त्वया	=	आपसे	**प्रव्यथितम्**	=	अति व्यथाको प्राप्त हो रहे हैं।
हि	=	ही			

[विश्वरूपमें प्रवेश करते हुए देवादिकोंका और स्तुति करते हुए महर्षि आदिकोंका दर्शन।]

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः॥ २१॥

अमी, हि, त्वाम्, सुरसङ्घाः, विशन्ति, केचित्, भीताः, प्राञ्जलयः, गृणन्ति, स्वस्ति, इति, उक्त्वा, महर्षिसिद्धसङ्घाः, स्तुवन्ति, त्वाम्, स्तुतिभिः, पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

और हे गोविन्द!—

अमी = वे ही

सुरसङ्घाः, हि = देवताओंके समूह

त्वाम् = आपमें

विशन्ति = प्रवेश करते हैं (और)

केचित् = कुछ

भीताः = भयभीत होकर

प्राञ्जलयः = हाथ जोड़े (आपके नाम और गुणोंका)

गृणन्ति = उच्चारण करते हैं (तथा)

महर्षिसिद्धसङ्घाः = महर्षि और सिद्धोंके समुदाय

स्वस्ति = 'कल्याण हो'

इति = ऐसा

उक्त्वा = कहकर

पुष्कलाभिः = उत्तम-उत्तम

स्तुतिभिः = स्तोत्रोंद्वारा

त्वाम् = आपकी

स्तुवन्ति = स्तुति करते हैं।

[विश्वरूपको देखते हुए विस्मययुक्त रुद्रादिकोंका दर्शन।]

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

रुद्रादित्याः, वसवः, ये, च, साध्याः, विश्वे, अश्विनौ, मरुतः, च, ऊष्मपाः, च, गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घाः, वीक्षन्ते, त्वाम्, विस्मिताः, च, एव, सर्वे ॥ २२ ॥

और हे परमेश्वर!—

ये = जो

रुद्रादित्याः = ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य

च = तथा

वसवः = आठ वसु,

साध्याः = साध्यगण,

विश्वे = विश्वेदेव,

अश्विनौ = अश्विनीकुमार

च	=	तथा	**(ते)**	=	वे
मरुतः	=	मरुद्गण	**सर्वे**	=	सब
च	=	और	**एव**	=	ही
ऊष्मपाः	=	पितरोंका समुदाय			
च	=	तथा	**विस्मिताः**	=	विस्मित होकर
गन्धर्वयक्षासुर-सिद्धसङ्घाः	=	गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धोंके समुदाय हैं—	**त्वाम्**	=	आपको
			वीक्षन्ते	=	देखते हैं।

[भगवान्‌के भयंकर रूपको देखकर अर्जुनका भयभीत होना।]

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्॥ २३॥

रूपम्, महत्, ते, बहुवक्त्रनेत्रम्, महाबाहो, बहुबाहूरुपादम्, बहूदरम्, बहुदंष्ट्राकरालम्, दृष्ट्वा, लोकाः, प्रव्यथिताः, तथा, अहम्॥ २३॥

और—

महाबाहो	=	हे महाबाहो	**महत्**	=	महान्
ते	=	आपके	**रूपम्**	=	रूपको
बहुवक्त्रनेत्रम्	=	बहुत मुख और नेत्रोंवाले	**दृष्ट्वा**	=	देखकर
बहुबाहूरुपादम्	=	बहुत हाथ, जंघा और पैरोंवाले	**लोकाः**	=	सब लोग
			प्रव्यथिताः	=	व्याकुल हो रहे हैं
बहूदरम्	=	बहुत उदरोंवाले (और)	**तथा**	=	तथा
			अहम्	=	मैं
बहुदंष्ट्राकरालम्	=	बहुत-सी दाढ़ोंके कारण अत्यन्त विकराल	**(अपि)**	=	भी (व्याकुल हो रहा हूँ)।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो॥ २४॥

नभःस्पृशम्, दीप्तम्, अनेकवर्णम्, व्यात्ताननम्, दीप्तविशालनेत्रम्, दृष्ट्वा, हि, त्वाम्, प्रव्यथितान्तरात्मा, धृतिम्, न, विन्दामि, शमम्, च, विष्णो॥ २४॥

हि	= क्योंकि	**त्वाम्**	= आपको
विष्णो	= हे विष्णो!	**दृष्ट्वा**	= देखकर
नभःस्पृशम्	= आकाशको स्पर्श करनेवाले,	**प्रव्यथितान्तरात्मा**	= भयभीत अन्तः-करणवाला (मैं)
दीप्तम्	= देदीप्यमान,		
अनेकवर्णम्	= अनेक वर्णोंसे युक्त (तथा)	**धृतिम्**	= धीरज
व्यात्ताननम्	= फैलाये हुए मुख (और)	**च**	= और
		शमम्	= शान्ति
दीप्तविशालनेत्रम्	= प्रकाशमान विशाल नेत्रोंसे युक्त	**न**	= नहीं
		विन्दामि	= पाता हूँ।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥ २५॥

दंष्ट्राकरालानि, च, ते, मुखानि, दृष्ट्वा, एव, कालानलसन्निभानि, दिशः, न, जाने, न, लभे, च, शर्म, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास॥ २५॥

और हे भगवन्!—

दंष्ट्राकरालानि	= दाढ़ोंके कारण विकराल	**च**	= और

कालानल-सन्निभानि	=	प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित
ते	=	आपके
मुखानि	=	मुखोंको
दृष्ट्वा	=	देखकर (मैं)
दिशः	=	दिशाओंको
न	=	नहीं
जाने	=	जानता हूँ
च	=	और
शर्म	=	सुख
एव	=	भी
न	=	नहीं
लभे	=	पाता हूँ। (इसलिये)
देवेश	=	हे देवेश!
जगन्निवास	=	हे जगन्निवास! (आप)
प्रसीद	=	प्रसन्न हों।

[दोनों सेनाओंके योद्धाओंको विराट्-स्वरूपके मुखमें प्रवेश होकर नष्ट होते हुए देखना।]

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः॥ २६॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः॥ २७॥

अमी, च, त्वाम्, धृतराष्ट्रस्य, पुत्राः, सर्वे, सह, एव, अवनिपालसङ्घैः, भीष्मः, द्रोणः, सूतपुत्रः, तथा, असौ, सह, अस्मदीयैः, अपि, योधमुख्यैः॥ २६॥

वक्त्राणि, ते, त्वरमाणाः, विशन्ति, दंष्ट्राकरालानि, भयानकानि, केचित्, विलग्नाः, दशनान्तरेषु, संदृश्यन्ते, चूर्णितैः, उत्तमाङ्गैः॥ २७॥

और मैं देखता हूँ कि—

अमी = वे
सर्वे, एव = सभी
धृतराष्ट्रस्य = धृतराष्ट्रके
पुत्राः = पुत्र
अवनिपालसङ्घैः, सह = राजाओंके समुदायसहित
त्वाम् = आपमें
(प्रविशन्ति)= प्रवेश कर रहे हैं
च = और
भीष्मः = भीष्मपितामह,
द्रोणः = द्रोणाचार्य
तथा = तथा
असौ = वह
सूतपुत्रः = कर्ण (और)
अस्मदीयैः = हमारे पक्षके
अपि = भी
योधमुख्यैः = प्रधान योद्धाओंके
सह = सहित (सब-के-सब)
ते = आपके
दंष्ट्राकरालानि= दाढ़ोंके कारण विकराल
भयानकानि = भयानक
वक्त्राणि = मुखोंमें
त्वरमाणाः = बड़े वेगसे दौड़ते हुए
विशन्ति = प्रवेश कर रहे हैं (और)
केचित् = कई एक
चूर्णितैः = चूर्ण हुए
उत्तमाङ्गैः = सिरोंसहित (आपके)
दशनान्तरेषु = दाँतोंके बीचमें
विलग्नाः = लगे हुए
सन्दृश्यन्ते = दीख रहे हैं।

[नदी और समुद्रके दृष्टान्तसे प्रवेशके दृश्यका कथन।]

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति॥ २८॥

यथा, नदीनाम्, बहवः, अम्बुवेगाः, समुद्रम्, एव, अभिमुखाः, द्रवन्ति, तथा, तव, अमी, नरलोकवीराः, विशन्ति, वक्त्राणि, अभिविज्वलन्ति॥ २८॥

और हे विश्वमूर्ते!—

यथा = जैसे
नदीनाम् = नदियोंके

बहवः = बहुत-से
अम्बुवेगाः = { जलके प्रवाह (स्वाभाविक ही)
समुद्रम् = समुद्रके
एव = ही
अभिमुखाः = सम्मुख
द्रवन्ति = { दौड़ते हैं अर्थात् समुद्रमें प्रवेश करते हैं,
तथा = वैसे ही
अमी = वे
नरलोकवीराः = नरलोकके वीर (भी)
तव = आपके
अभिविज्वलन्ति = प्रज्वलित
वक्त्राणि = मुखोंमें
विशन्ति = प्रवेश कर रहे हैं।

[दीपक और पतंगके दृष्टान्तसे नाशके दृश्यका कथन।]

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥ २९॥

यथा, प्रदीप्तम्, ज्वलनम्, पतङ्गाः, विशन्ति, नाशाय, समृद्धवेगाः, तथा, एव, नाशाय, विशन्ति, लोकाः, तव, अपि, वक्त्राणि, समृद्धवेगाः॥ २९॥

अथवा—

यथा = जैसे
पतङ्गाः = पतंग (मोहवश)
नाशाय = नष्ट होनेके लिये
प्रदीप्तम् = प्रज्वलित
ज्वलनम् = अग्निमें
समृद्धवेगाः = { अति वेगसे दौड़ते हुए
विशन्ति = प्रवेश करते हैं,
तथा = वैसे
एव = ही (ये)
लोकाः = सब लोग
अपि = भी
नाशाय = अपने नाशके लिये
तव = आपके
वक्त्राणि = मुखोंमें
समृद्धवेगाः = { अति वेगसे दौड़ते हुए
विशन्ति = प्रवेश कर रहे हैं।

[सब लोकोंको ग्रसन करते हुए तेजोमय भयानक विश्वरूपका वर्णन।]

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता–
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो॥ ३० ॥

लेलिह्यसे, ग्रसमानः, समन्तात्, लोकान्, समग्रान्, वदनैः, ज्वलद्भिः, तेजोभिः, आपूर्य, जगत्, समग्रम्, भासः, तव, उग्राः, प्रतपन्ति, विष्णो॥ ३० ॥

और आप उन—

समग्रान्	=	सम्पूर्ण	**तव**	=	आपका
लोकान्	=	लोकोंको	**उग्राः**	=	उग्र
ज्वलद्भिः	=	प्रज्वलित	**भासः**	=	प्रकाश
वदनैः	=	मुखोंद्वारा	**समग्रम्**	=	सम्पूर्ण
ग्रसमानः	=	ग्रास करते हुए	**जगत्**	=	जगत्को
समन्तात्	=	सब ओरसे	**तेजोभिः**	=	तेजके द्वारा
लेलिह्यसे	=	बार-बार चाट रहे हैं,	**आपूर्य**	=	परिपूर्ण करके
विष्णो	=	हे विष्णो!	**प्रतपन्ति**	=	तपा रहा है।

[उग्ररूपधारी भगवान्को तत्त्वसे जाननेके लिये अर्जुनका प्रश्न।]

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्॥ ३१ ॥

आख्याहि, मे, कः, भवान्, उग्ररूपः, नमः, अस्तु, ते, देववर,प्रसीद, विज्ञातुम्, इच्छामि, भवन्तम्, आद्यम्, न, हि, प्रजानामि, तव, प्रवृत्तिम्॥ ३१ ॥

हे भगवन्! कृपा करके—

मे	=	मुझे	**आद्यम्**	=	आदिपुरुष
आख्याहि	=	बतलाइये (कि)	**भवन्तम्**	=	आपको (मैं)
भवान्	=	आप			
उग्ररूपः	=	उग्ररूपवाले	**विज्ञातुम्**	=	विशेषरूपसे जानना
कः	=	कौन हैं ?	**इच्छामि**	=	चाहता हूँ;
देववर	=	हे देवोंमें श्रेष्ठ !	**हि**	=	क्योंकि (मैं)
ते	=	आपको	**तव**	=	आपकी
नमः	=	नमस्कार	**प्रवृत्तिम्**	=	प्रवृत्तिको
अस्तु	=	हो। (आप)	**न**	=	नहीं
प्रसीद	=	प्रसन्न होइये।	**प्रजानामि**	=	जानता।

['लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ मैं महाकाल हूँ' इत्यादि वचनोंद्वारा भगवान्का उत्तर।]

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥ ३२॥

कालः, अस्मि, लोकक्षयकृत्, प्रवृद्धः, लोकान्, समाहर्तुम्, इह, प्रवृत्तः, ऋते, अपि, त्वाम्, न, भविष्यन्ति, सर्वे, ये, अवस्थिताः, प्रत्यनीकेषु, योधाः॥ ३२॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! मैं—

लोकक्षयकृत्	=	लोकोंका नाश करनेवाला	**लोकान्**	=	इन लोकोंको
			समाहर्तुम्	=	नष्ट करनेके लिये
प्रवृद्धः	=	बढ़ा हुआ	**प्रवृत्तः**	=	प्रवृत्त हुआ हूँ। (इसलिये)
कालः	=	महाकाल			
अस्मि	=	हूँ।	**ये**	=	जो
इह	=	इस समय	**प्रत्यनीकेषु**	=	प्रतिपक्षियोंकी सेनामें

अवस्थिता:	=	स्थित	**अपि**	=	भी
योधा:	=	योद्धा लोग हैं,	**न**	=	नहीं
(ते)	=	वे	**भविष्यन्ति**	=	रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करनेसे भी इन सबका नाश हो जायगा।
सर्वे	=	सब			
त्वाम्	=	तेरे			
ऋते	=	बिना			

[निमित्तमात्र होकर युद्ध करनेके लिये अर्जुनके प्रति भगवान्‌की आज्ञा।]

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहता: पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥ ३३॥

तस्मात्, त्वम्, उत्तिष्ठ, यश:, लभस्व, जित्वा, शत्रून्, भुङ्क्ष्व, राज्यम्, समृद्धम्, मया, एव, एते, निहता:, पूर्वम्, एव, निमित्तमात्रम्, भव, सव्यसाचिन्॥ ३३॥

तस्मात्	=	अतएव	**भुङ्क्ष्व**	=	भोग।
त्वम्	=	तू	**एते**	=	ये सब (शूरवीर)
उत्तिष्ठ	=	उठ!	**पूर्वम्, एव**	=	पहलेहीसे
यश:	=	यश	**मया**	=	मेरे ही द्वारा
लभस्व	=	प्राप्त कर (और)	**निहता:**	=	मारे हुए हैं।
शत्रून्	=	शत्रुओंको	**सव्यसाचिन्**	=	हे सव्यसाचिन्!*
जित्वा	=	जीतकर	**निमित्तमात्रम्, एव**	=	तू तो केवल निमित्तमात्र
समृद्धम्	=	धन-धान्यसे सम्पन्न			
राज्यम्	=	राज्यको	**भव**	=	बन जा।

* बायें हाथसे भी बाण चलानेका अभ्यास होनेसे अर्जुनका नाम "सव्यसाची" हुआ था।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्॥ ३४॥

द्रोणम्, च, भीष्मम्, च, जयद्रथम्, च, कर्णम्, तथा, अन्यान्, अपि, योधवीरान्, मया, हतान्, त्वम्, जहि, मा, व्यथिष्ठाः, युध्यस्व, जेतासि, रणे, सपत्नान्॥ ३४॥

तथा इन—

द्रोणम्	= द्रोणाचार्य	**हतान्**	= मारे हुए
च	= और	**योधवीरान्**	= शूरवीर योद्धाओंको
भीष्मम्	= भीष्मपितामह	**त्वम्**	= तू
च	= तथा	**जहि**	= मार।
जयद्रथम्	= जयद्रथ	**मा, व्यथिष्ठाः**	= भय मत कर। (निःसंदेह तू)
च	= और		
कर्णम्	= कर्ण	**रणे**	= युद्धमें
तथा	= तथा	**सपत्नान्**	= वैरियोंको
अन्यान्, अपि	= और भी बहुत-से	**जेतासि**	= जीतेगा। (इसलिये)
मया	= मेरे द्वारा	**युध्यस्व**	= युद्ध कर।

[भगवान्के वचनोंको सुनकर अर्जुनका भयभीत और गद्गद होना।]

सञ्जय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य॥ ३५॥

एतत्, श्रुत्वा, वचनम्, केशवस्य, कृताञ्जलिः, वेपमानः, किरीटी, नमस्कृत्वा, भूयः, एव, आह, कृष्णम्, सगद्गदम्, भीतभीतः, प्रणम्य॥ ३५॥

इसके पश्चात् संजय बोले, हे राजन्!—

केशवस्य	=	केशवभगवान्‌के	**एव**	=	भी
एतत्	=	इस	**भीतभीतः**	=	अत्यन्त भयभीत होकर
वचनम्	=	वचनको			
श्रुत्वा	=	सुनकर	**प्रणम्य**	=	प्रणाम करके
किरीटी	=	मुकुटधारी अर्जुन	**कृष्णम्**	=	भगवान् श्रीकृष्णके प्रति
कृताञ्जलिः	=	हाथ जोड़कर			
वेपमानः	=	काँपता हुआ			
नमस्कृत्वा	=	नमस्कार करके,	**सगद्गदम्**	=	गद्गद वाणीसे
भूयः	=	फिर	**आह**	=	बोला—

[भगवान्‌के महत्त्वका वर्णन।]

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥ ३६ ॥

स्थाने, हृषीकेश, तव, प्रकीर्त्या, जगत्, प्रहृष्यति, अनुरज्यते, च, रक्षांसि, भीतानि, दिशः, द्रवन्ति, सर्वे, नमस्यन्ति, च, सिद्धसङ्घाः ॥ ३६ ॥

अर्जुन बोले—

हृषीकेश	=	हे अन्तर्यामिन्!	**प्रहृष्यति**	=	अति हर्षित हो रहा है
स्थाने	=	यह योग्य ही है (कि)	**च**	=	और
तव	=	आपके	**अनुरज्यते**	=	अनुरागको भी प्राप्त हो रहा है (तथा)
प्रकीर्त्या	=	नाम-गुण और प्रभावके कीर्तनसे	**भीतानि**	=	भयभीत
जगत्	=	जगत्	**रक्षांसि**	=	राक्षसलोग

दिशः	=	दिशाओंमें	**सर्वे**	=	सब
द्रवन्ति	=	भाग रहे हैं	**सिद्धसङ्घाः**	=	सिद्धगणोंके समुदाय
च	=	और	**नमस्यन्ति**	=	नमस्कार कर रहे हैं।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्॥ ३७॥

कस्मात्, च, ते, न, नमेरन्, महात्मन्, गरीयसे, ब्रह्मणः, अपि, आदिकर्त्रे, अनन्त, देवेश, जगन्निवास, त्वम्, अक्षरम्, सत्, असत्, तत्परम्, यत्॥ ३७॥

महात्मन्	=	हे महात्मन्!	**देवेश**	=	हे देवेश!
ब्रह्मणः	=	ब्रह्माके	**जगन्निवास**	=	हे जगन्निवास!
अपि	=	भी	**यत्**	=	जो
आदिकर्त्रे	=	आदिकर्ता	**सत्**	=	सत्,
च	=	और	**असत्**	=	असत् (और)
गरीयसे	=	सबसे बड़े	**तत्परम्**	=	उनसे परे
ते	=	आपके लिये (ये)	**अक्षरम्**	=	अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हैं,
कस्मात्	=	कैसे	**(तत्)**	=	वह
न, नमेरन्	=	नमस्कार न करें (क्योंकि)	**त्वम्**	=	आप (ही हैं)।
अनन्त	=	हे अनन्त!			

[अनन्तरूप परमेश्वरकी स्तुति और बारम्बार नमस्कार।]

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥ ३८॥

त्वम्, आदिदेवः, पुरुषः, पुराणः, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्, निधानम्, वेत्ता, असि, वेद्यम्, च, परम्, च, धाम, त्वया, ततम्, विश्वम्, अनन्तरूप ॥ ३८ ॥

हे प्रभो!—

त्वम् = आप		**च** = तथा	
आदिदेवः = आदिदेव (और)		**वेद्यम्** = जाननेयोग्य (और)	
पुराणः = सनातन		**परम्** = परम	
पुरुषः = पुरुष हैं,		**धाम** = धाम	
त्वम् = आप		**असि** = हैं।	
अस्य = इस		**अनन्तरूप** = हे अनन्तरूप!	
विश्वस्य = जगत्के		**त्वया** = आपसे (यह सब)	
परम् = परम		**विश्वम्** = जगत्	
निधानम् = आश्रय			
च = और		**ततम्** = व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण है।	
वेत्ता = जाननेवाले			

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ३९ ॥

वायुः, यमः, अग्निः, वरुणः, शशाङ्कः, प्रजापतिः, त्वम्, प्रपितामहः, च, नमः, नमः, ते, अस्तु, सहस्रकृत्वः, पुनः, च, भूयः, अपि, नमः, नमः, ते ॥ ३९ ॥

और हे हरे!—

त्वम् = आप	**वरुणः** = वरुण,
वायुः = वायु,	**शशाङ्कः** = चन्द्रमा,
यमः = यमराज,	**प्रजापतिः** = प्रजाके स्वामी ब्रह्मा
अग्निः = अग्नि,	**च** = और

प्रपितामहः = ब्रह्माके भी पिता हैं।
ते = आपके लिये
सहस्रकृत्वः = हजारों बार
नमः = नमस्कार!
नमः = नमस्कार
अस्तु = हो!!
ते = आपके लिये
भूयः = फिर
अपि = भी
पुनः, च = बार-बार
नमः = नमस्कार!
नमः = नमस्कार!!

[सब ओरसे भगवान्को नमस्कार।]

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥

नमः, पुरस्तात्, अथ, पृष्ठतः, ते, नमः, अस्तु, ते, सर्वतः, एव, सर्व, अनन्तवीर्य, अमितविक्रमः, त्वम्, सर्वम्, समाप्नोषि, ततः, असि, सर्वः ॥ ४० ॥

और—

अनन्तवीर्य = हे अनन्त सामर्थ्यवाले!
ते = आपके लिये
पुरस्तात् = आगेसे
अथ = और
पृष्ठतः = पीछेसे भी
नमः = नमस्कार।
सर्व = हे सर्वात्मन्!
ते = आपके लिये
सर्वतः = सब ओरसे
एव = ही
नमः = नमस्कार
अस्तु = हो। (क्योंकि)
अमितविक्रमः = अनन्त पराक्रमशाली
त्वम् = आप
सर्वम् = सब संसारको
समाप्नोषि = व्याप्त किये हुए हैं,
ततः = इससे (आप ही)
सर्वः = सर्वरूप
असि = हैं।

[अपराधके लिये अर्जुनकी क्षमा-प्रार्थना।]

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥ ४१ ॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥ ४२ ॥

सखा, इति, मत्वा, प्रसभम्, यत्, उक्तम्, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे, इति, अजानता, महिमानम्, तव, इदम्, मया, प्रमादात्, प्रणयेन, वा, अपि॥ ४१ ॥
यत्, च, अवहासार्थम्, असत्कृतः, असि, विहारशय्यासनभोजनेषु, एकः, अथवा, अपि, अच्युत, तत्समक्षम्, तत्, क्षामये, त्वाम्, अहम्, अप्रमेयम्॥ ४२ ॥

हे परमेश्वर!—

तव	=	आपके
इदम्	=	इस
महिमानम्	=	प्रभावको
अजानता	=	न जानते हुए (आप मेरे)
सखा	=	सखा हैं,
इति	=	ऐसा
मत्वा	=	मानकर
प्रणयेन	=	प्रेमसे
वा	=	अथवा
प्रमादात्	=	प्रमादसे
अपि	=	भी
मया	=	मैंने
हे कृष्ण	=	'हे कृष्ण!',
हे यादव	=	'हे यादव!',
हे सखे	=	'हे सखे!'
इति	=	इस प्रकार
यत्	=	जो (कुछ बिना सोचे-समझे)
प्रसभम्	=	हठात्
उक्तम्	=	कहा है
च	=	और
अच्युत	=	हे अच्युत! (आप)
यत्	=	जो (मेरे द्वारा)

अवहासार्थम् = विनोदके लिये
विहार-शय्यासन-भोजनेषु = विहार, शय्या, आसन और भोजनादिमें
एकः = अकेले
अथवा = अथवा
तत्समक्षम् = उन सखाओंके सामने
अपि = भी
असत्कृतः = अपमानित किये गये
असि = हैं—
तत् = वह (सब अपराध)
अप्रमेयम् = अप्रमेयस्वरूप अर्थात् अचिन्त्य प्रभाववाले
त्वाम् = आपसे
अहम् = मैं
क्षामये = क्षमा करवाता हूँ।

[भगवान्के अतिशय प्रभावका कथन।]

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥

पिता, असि, लोकस्य, चराचरस्य, त्वम्, अस्य, पूज्यः, च, गुरुः, गरीयान्, न, त्वत्समः, अस्ति, अभ्यधिकः, कुतः, अन्यः, लोकत्रये, अपि, अप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥

हे विश्वेश्वर!—

त्वम् = आप
अस्य = इस
चराचरस्य = चराचर
लोकस्य = जगत्के
पिता = पिता
च = और
गरीयान् = सबसे बड़े
गुरुः = गुरु (एवं)
पूज्यः = अति पूजनीय
असि = हैं,
अप्रतिमप्रभाव = हे अनुपम प्रभाववाले!
लोकत्रये = तीनों लोकोंमें
त्वत्समः = आपके समान
अपि = भी
अन्यः = दूसरा कोई
न = नहीं
अस्ति = है, (फिर)
अभ्यधिकः = अधिक (तो)
कुतः = कैसे हो सकता है?

[प्रसन्न होने एवं अपराध सहनेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना।]

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥ ४४॥

तस्मात्, प्रणम्य, प्रणिधाय, कायम्, प्रसादये, त्वाम्, अहम्, ईशम्, ईड्यम्, पिता, इव, पुत्रस्य, सखा, इव, सख्युः, प्रियः, प्रियायाः, अर्हसि, देव, सोढुम्॥ ४४॥

तस्मात्	=	अतएव (प्रभो!)	**पुत्रस्य**	=	पुत्रके,
अहम्	=	मैं	**सखा**	=	सखा
कायम्	=	शरीरको	**इव**	=	जैसे
प्रणिधाय	=	भलीभाँति चरणोंमें निवेदित कर,	**सख्युः**	=	सखाके (और)
			प्रियः	=	पति
प्रणम्य	=	प्रणाम करके,	**(इव)**	=	जैसे
ईड्यम्	=	स्तुति करनेयोग्य			
त्वाम्	=	आप			
ईशम्	=	ईश्वरको	**प्रियायाः**	=	प्रियतमा पत्नीके (अपराध सहन करते हैं, वैसे ही आप भी मेरे अपराधको)
प्रसादये	=	प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ।			
देव	=	हे देव!			
पिता	=	पिता	**सोढुम्**	=	सहन करने
इव	=	जैसे	**अर्हसि**	=	योग्य हैं।

[चतुर्भुजरूप दिखलाने-हेतु अर्जुनकी प्रार्थना।]

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥ ४५॥

अदृष्टपूर्वम्, हृषितः, अस्मि, दृष्ट्वा, भयेन, च, प्रव्यथितम्, मनः,
मे, तत्, एव, मे, दर्शय, देवरूपम्, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास॥ ४५॥

हे विश्वमूर्ते! मैं—

अदृष्टपूर्वम्	=	पहले न देखे हुए आपके इस आश्चर्यमय रूपको	**प्रव्यथितम्**	=	अति व्याकुल भी हो रहा है; (इसलिये आप)
			तत्	=	उस (अपने)
दृष्ट्वा	=	देखकर	**देवरूपम्**	=	चतुर्भुज विष्णुरूपको
हृषितः	=	हर्षित	**एव**	=	ही
अस्मि	=	हो रहा हूँ	**मे**	=	मुझे
च	=	और	**दर्शय**	=	दिखलाइये।
मे	=	मेरा	**देवेश**	=	हे देवेश!
मनः	=	मन	**जगन्निवास**	=	हे जगन्निवास!
भयेन	=	भयसे	**प्रसीद**	=	प्रसन्न होइये।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते॥ ४६॥

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रहस्तम्, इच्छामि, त्वाम्, द्रष्टुम्, अहम्, तथा, एव, तेन, एव, रूपेण, चतुर्भुजेन, सहस्रबाहो, भव, विश्वमूर्ते॥ ४६॥

और हे विष्णो!—

अहम्	=	मैं	**किरीटिनम्**	=	मुकुट धारण किये हुए (तथा)
तथा	=	वैसे			
एव	=	ही	**गदिनम्, चक्रहस्तम्**	=	गदा और चक्र हाथमें लिये हुए
त्वाम्	=	आपको			

द्रष्टुम्	=	देखना	**तेन एव**	=	उसी
इच्छामि	=	चाहता हूँ,			
(अतः)	=	इसलिये	**चतुर्भुजेन रूपेण**	=	चतुर्भुजरूपसे (प्रकट)
विश्वमूर्ते	=	हे विश्वस्वरूप!			
सहस्रबाहो	=	हे सहस्रबाहो! (आप)	**भव**	=	होइये।

[भगवान्द्वारा अपने विश्वरूपकी प्रशंसा।]

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्॥ ४७॥

मया, प्रसन्नेन, तव, अर्जुन, इदम्, रूपम्, परम्, दर्शितम्, आत्मयोगात्, तेजोमयम्, विश्वम्, अनन्तम्, आद्यम्, यत्, मे, त्वदन्येन, न, दृष्टपूर्वम्॥ ४७॥

इस प्रकार अर्जुनकी प्रार्थनाको सुनकर श्रीभगवान् बोले—

अर्जुन	=	हे अर्जुन!	**अनन्तम्**	=	सीमारहित
प्रसन्नेन	=	अनुग्रहपूर्वक	**विश्वम्**	=	विराट्
मया	=	मैंने	**रूपम्**	=	रूप
आत्मयोगात्	=	अपनी योग-शक्तिके प्रभावसे	**तव**	=	तुझको
			दर्शितम्	=	दिखलाया है,
इदम्	=	यह	**यत्**	=	जिसे
मे	=	मेरा			
परम्	=	परम	**त्वदन्येन**	=	तेरे अतिरिक्त दूसरे किसीने
तेजोमयम्	=	तेजोमय			
आद्यम्	=	सबका आदि (और)	**न दृष्टपूर्वम्**	=	पहले नहीं देखा था।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

न, वेदयज्ञाध्ययनैः, न, दानैः, न, च, क्रियाभिः, न, तपोभिः, उग्रैः, एवंरूपः, शक्यः, अहम्, नृलोके, द्रष्टुम्, त्वदन्येन, कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

कुरुप्रवीर	=	हे अर्जुन!
नृलोके	=	मनुष्यलोकमें
एवंरूपः	=	इस प्रकार विश्वरूपवाला
अहम्	=	मैं
न	=	न
वेदयज्ञाध्ययनैः	=	वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे,
न	=	न
दानैः	=	दानसे,
न	=	न
क्रियाभिः	=	क्रियाओंसे
च	=	और
न	=	न
उग्रैः	=	उग्र
तपोभिः	=	तपोंसे (ही)
त्वदन्येन	=	तेरे अतिरिक्त दूसरेके द्वारा
द्रष्टुम्	=	देखा जा
शक्यः	=	सकता हूँ।

[अर्जुनको धीरज देकर अपना चतुर्भुजरूप दिखाना।]

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥

मा, ते, व्यथा, मा, च, विमूढभावः, दृष्ट्वा, रूपम्, घोरम्, ईदृक्, मम, इदम्, व्यपेतभीः, प्रीतमनाः, पुनः, त्वम्, तत्, एव, मे, रूपम्, इदम्, प्रपश्य ॥ ४९ ॥

मम = मेरे
ईदृक् = इस प्रकारके
इदम् = इस
घोरम् = विकराल
रूपम् = रूपको
दृष्ट्वा = देखकर
ते = तुझको
व्यथा = व्याकुलता
मा = नहीं होनी चाहिये
च = और
विमूढभावः = मूढ़भाव (भी)
मा = नहीं होना चाहिये।

त्वम् = तू
व्यपेतभीः = भयरहित (और)
प्रीतमनाः = { प्रीतियुक्त मनवाला होकर
तत्, एव = उसी
मे = मेरे
इदम् = { इस (शंख, चक्र, गदा–पद्मयुक्त चतुर्भुज)
रूपम् = रूपको
पुनः = फिर
प्रपश्य = देख।

[चतुर्भुजरूपका दर्शन कराकर फिर मनुष्यरूप होनेका संजयद्वारा वर्णन।]

सञ्जय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा॥ ५०॥

इति, अर्जुनम्, वासुदेवः, तथा, उक्त्वा, स्वकम्, रूपम्, दर्शयामास, भूयः, आश्वासयामास, च, भीतम्, एनम्, भूत्वा, पुनः, सौम्यवपुः, महात्मा॥ ५०॥

उसके पश्चात् संजय बोले, हे राजन्!—

वासुदेवः = वासुदेव भगवान्‌ने
अर्जुनम् = अर्जुनके प्रति
इति = इस प्रकार
उक्त्वा = कहकर
भूयः = फिर
तथा = वैसे ही
स्वकम् = अपने

रूपम् = चतुर्भुजरूपको
दर्शयामास = दिखलाया
च = और
पुनः = फिर
महात्मा = महात्मा श्रीकृष्णने
सौम्यवपुः = सौम्यमूर्ति

भूत्वा	= होकर		**भीतम्**	= भयभीत अर्जुनको
एनम्	= इस		**आश्वासयामास**	= धीरज दिया।

[भगवान्‌का सौम्य मानवरूप देखकर अर्जुनका सचेत और प्रकृतिगत होनेका कथन।]

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥

दृष्ट्वा, इदम्, मानुषम्, रूपम्, तव, सौम्यम्, जनार्दन,
इदानीम्, अस्मि, संवृत्तः, सचेताः, प्रकृतिम्, गतः ॥ ५१ ॥

उसके पश्चात् अर्जुन बोले—

जनार्दन	= हे जनार्दन!		**सचेताः**	= स्थिर-चित्त
तव	= आपके		**संवृत्तः**	= हो गया
इदम्	= इस		**अस्मि**	= हूँ (और)
सौम्यम्	= अतिशान्त			
मानुषम्, रूपम्	= मनुष्य रूपको		**प्रकृतिम्**	= { अपनी स्वाभाविक स्थितिको
दृष्ट्वा	= देखकर			
इदानीम्	= अब (मैं)		**गतः**	= प्राप्त हो गया हूँ।

[चतुर्भुजरूपके दर्शनकी दुर्लभता और प्रभावका कथन।]

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५२ ॥

सुदुर्दर्शम्, इदम्, रूपम्, दृष्टवान्, असि, यत्, मम,
देवाः, अपि, अस्य, रूपस्य, नित्यम्, दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार अर्जुनके वचनको सुनकर श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन !—

मम	= मेरा		**असि**	= है,
यत्	= जो		**इदम्**	= यह
रूपम्	= चतुर्भुजरूप (तुमने)		**सुदुर्दर्शम्**	= { सुदुर्दर्श है अर्थात् इसके दर्शन बड़े
दृष्टवान्	= देखा			

		ही दुर्लभ हैं।	**अस्य**	=	इस
देवाः	=	देवता	**रूपस्य**	=	रूपके
अपि	=	भी	**दर्शन-**	=	दर्शनकी
नित्यम्	=	सदा	**काङ्क्षिणः**		आकांक्षा करते रहते हैं।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥ ५३॥

न, अहम्, वेदैः, न, तपसा, न, दानेन, न, च, इज्यया,
शक्यः, एवंविधः, द्रष्टुम्, दृष्टवान्, असि, माम्, यथा॥ ५३॥

और हे अर्जुन!—

यथा	=	जिस प्रकार (तुमने)	**न**	=	न
माम्	=	मुझको	**तपसा**	=	तपसे,
दृष्टवान्	=	देखा	**न**	=	न
असि	=	है	**दानेन**	=	दानसे
एवंविधः	=	इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला	**च**	=	और
			न	=	न
अहम्	=	मैं	**इज्यया**	=	यज्ञसे (ही)
न	=	न	**द्रष्टुम्**	=	देखा
वेदैः	=	वेदोंसे,	**शक्यः**	=	जा सकता हूँ।

[अनन्य-भक्तिसे उस रूपके दर्शन, ज्ञान और प्राप्त होनेका कथन।]

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥ ५४॥

भक्त्या, तु, अनन्यया, शक्यः, अहम्, एवंविधः, अर्जुन,
ज्ञातुम्, द्रष्टुम्, च, तत्त्वेन्, प्रवेष्टुम्, च, परन्तप॥ ५४॥

तु	=	परंतु	**अर्जुन**	=	अर्जुन!
परन्तप	=	हे परन्तप	**अनन्यया, भक्त्या**	=	अनन्यभक्ति*के द्वारा

* अनन्यभक्तिका भाव अगले श्लोकमें विस्तारपूर्वक कहा है।

एवंविध:	=	इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला	**च**	=	तथा
अहम्	=	मैं	**प्रवेष्टुम्**	=	प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये
द्रष्टुम्	=	प्रत्यक्ष देखनेके लिये,			
तत्त्वेन	=	तत्त्वसे	**च**	=	भी
ज्ञातुम्	=	जाननेके लिये	**शक्य:**	=	शक्य हूँ।

[अनन्य भक्तिका स्वरूप और उसके फलका कथन।]

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥ ५५ ॥

मत्कर्मकृत्, मत्परमः, मद्भक्तः, सङ्गवर्जितः, निर्वैरः, सर्वभूतेषु, यः, सः, माम्, एति, पाण्डव॥ ५५ ॥

पाण्डव	=	हे अर्जुन!			(और)
य:	=	जो पुरुष केवल	**सर्वभूतेषु**	=	सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें
मत्कर्मकृत्	=	मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मोंको करनेवाला है,	**निर्वैर:**	=	वैरभावसे रहित है*,
मत्परम:	=	मेरे परायण है,	**स:**	=	वह (अनन्यभक्तियुक्त पुरुष)
मद्भक्त:	=	मेरा भक्त है,	**माम्**	=	मुझको (ही)
सङ्गवर्जित:	=	आसक्तिरहित है	**एति**	=	प्राप्त होता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥

हरिः ॐ तत्सत्   हरिः ॐ तत्सत्   हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

* सर्वत्र भगवद्बुद्धि हो जानेसे उस पुरुषका अति अपराध करनेवालेमें भी वैरभाव नहीं होता है, फिर औरोंमें तो कहना ही क्या है।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ द्वादशोऽध्यायः

__प्रधान-विषय__—१ से १२ तक साकार और निराकारके उपासकोंकी उत्तमताका निर्णय और भगवत्-प्राप्तिके उपायका विषय, (१३—२०) भगवत्-प्राप्तिवाले पुरुषोंके लक्षण।

[साकार और निराकार उपासकोंमें कौन श्रेष्ठ है, यह जाननेके लिये अर्जुनका प्रश्न।]

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥ १॥

एवम्, सततयुक्ताः, ये, भक्ताः, त्वाम्, पर्युपासते,
ये, च, अपि, अक्षरम्, अव्यक्तम्, तेषाम्, के, योगवित्तमाः॥ १॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुन बोले, हे मनमोहन!—

ये	= जो	**अक्षरम्**	= अविनाशी सच्चिदानन्दघन
भक्ताः	= अनन्य प्रेमी भक्तजन	**अव्यक्तम्**	= निराकार ब्रह्मको
एवम्	= पूर्वोक्त प्रकारसे	**अपि**	= ही
सततयुक्ताः	= निरन्तर आपके भजन-ध्यानमें लगे रहकर	**पर्युपासते**	= अतिश्रेष्ठ भावसे भजते हैं—
त्वाम्	= आप सगुणरूप परमेश्वरको	**तेषाम्**	= उन दोनों प्रकारके उपासकोंमें
		योगवित्तमाः	= अति उत्तम योगवेत्ता
च	= और	**के**	= कौन
ये	= दूसरे जो (केवल)	**(सन्ति)**	= हैं ?

[भगवान्‌के सगुणरूपकी उपासना करनेवालोंकी श्रेष्ठताका कथन।]

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥ २॥

मयि, आवेश्य, मनः, ये, माम्, नित्ययुक्ताः, उपासते,
श्रद्धया, परया, उपेताः, ते, मे, युक्ततमाः, मताः॥ २॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन!—

मयि	= मुझमें	**माम्**	= मुझ सगुणरूप परमेश्वरको
मनः	= मनको	**उपासते**	= भजते हैं,
आवेश्य	= एकाग्र करके	**ते**	= वे
नित्ययुक्ताः	= निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए*	**मे**	= मुझको
ये	= जो भक्तजन	**युक्ततमाः**	= योगियोंमें अति उत्तम योगी
परया	= अतिशय श्रेष्ठ	**मताः**	= मान्य हैं।
श्रद्धया	= श्रद्धासे		
उपेताः	= युक्त होकर		

[निराकार ब्रह्मके स्वरूपका कथन और उसकी उपासनासे भगवत्प्राप्ति।]

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥ ३॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥ ४॥

ये, तु, अक्षरम्, अनिर्देश्यम्, अव्यक्तम्, पर्युपासते,
सर्वत्रगम्, अचिन्त्यम्, च, कूटस्थम्, अचलम्, ध्रुवम्॥ ३॥
सन्नियम्य, इन्द्रियग्रामम्, सर्वत्र, समबुद्धयः,
ते, प्राप्नुवन्ति, माम्, एव, सर्वभूतहिते, रताः॥ ४॥

* अर्थात् गीता अध्याय ११ श्लोक ५५ में कहे हुए प्रकारसे निरन्तर मेरेमें लगे हुए।

तु	= परंतु	**अक्षरम्**	= अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको
ये	= जो पुरुष		
इन्द्रियग्रामम्	= इन्द्रियोंके समुदायको		
सन्नियम्य	= भली प्रकारसे वशमें करके	**पर्युपासते**	= निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं,
अचिन्त्यम्	= मन-बुद्धिसे परे,		
सर्वत्रगम्	= सर्वव्यापी,	**ते**	= वे
अनिर्देश्यम्	= अकथनीय स्वरूप	**सर्वभूतहिते**	= सम्पूर्ण भूतोंके हितमें
च	= और	**रताः**	= रत (और)
कूटस्थम्	= सदा एकरस रहनेवाले,	**सर्वत्र**	= सबमें
		समबुद्धयः	= समानभाववाले योगी
ध्रुवम्	= नित्य,	**माम्**	= मुझको
अचलम्	= अचल,	**एव**	= ही
अव्यक्तम्	= निराकार,	**प्राप्नुवन्ति**	= प्राप्त होते हैं।

[निराकारकी उपासनामें कठिनताका कथन।]

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

क्लेशः, अधिकतरः, तेषाम्, अव्यक्तासक्तचेतसाम्,
अव्यक्ता, हि, गतिः, दुःखम्, देहवद्भिः, अवाप्यते ॥ ५ ॥

किंतु—

तेषाम्	= उन	**हि**	= क्योंकि
अव्यक्तासक्त-चेतसाम्	= सच्चिदानन्दघन निराकारब्रह्ममें आसक्तचित्तवाले पुरुषोंके (साधनमें)	**देहवद्भिः**	= देहाभिमानियोंके द्वारा
		अव्यक्ता	= अव्यक्तविषयक
		गतिः	= गति
क्लेशः	= परिश्रम	**दुःखम्**	= दुःखपूर्वक
अधिकतरः	= विशेष है;	**अवाप्यते**	= प्राप्त की जाती है।

[भगवान्के सगुणरूपकी उपासनाका कथन।]

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥ ६॥

ये, तु, सर्वाणि, कर्माणि, मयि, सन्न्यस्य, मत्पराः,
अनन्येन, एव, योगेन, माम्, ध्यायन्तः, उपासते॥ ६॥

तु	=	परंतु	**माम्**	=	मुझ सगुणरूप परमेश्वरको
ये	=	जो			
मत्पराः	=	मेरे परायण रहनेवाले भक्तजन	**एव**	=	ही
			अनन्येन	=	अनन्य
सर्वाणि	=	सम्पूर्ण	**योगेन**	=	भक्तियोगसे
कर्माणि	=	कर्मोंको	**ध्यायन्तः**	=	निरन्तर चिन्तन करते हुए
मयि	=	मुझमें			
सन्न्यस्य	=	अर्पण करके	**उपासते**	=	भजते हैं*—

[अपने भक्तोंका शीघ्र उद्धार करनेके लिये भगवान्की प्रतिज्ञा।]

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥ ७॥

तेषाम्, अहम्, समुद्धर्ता, मृत्युसंसारसागरात्,
भवामि, नचिरात्, पार्थ, मयि, आवेशितचेतसाम्॥ ७॥

पार्थ	=	हे अर्जुन!	**अहम्**	=	मैं
तेषाम्	=	उन	**नचिरात्**	=	शीघ्र ही
मयि	=	मुझमें	**मृत्युसंसार-सागरात्**	=	मृत्युरूप संसारसमुद्रसे
आवेशितचेतसाम्	=	चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका	**समुद्धर्ता**	=	उद्धार करनेवाला
			भवामि	=	होता हूँ।

* इस श्लोकका विशेष भाव जाननेके लिये गीता अध्याय ११ श्लोक ५५ देखना चाहिये।

[ध्यानसे भगवत्प्राप्ति।]

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥ ८॥

मयि, एव, मनः, आधत्स्व, मयि, बुद्धिम्, निवेशय,
निवसिष्यसि, मयि, एव, अतः, ऊर्ध्वम्, न, संशयः॥ ८॥

इसलिये हे अर्जुन! तू—

मयि = मुझमें		**ऊर्ध्वम्** = { उपरान्त (तू)	
मनः = मनको		**मयि** = मुझमें	
आधत्स्व = लगा (और)		**एव** = ही	
मयि = मुझमें		**निवसिष्यसि** = { निवास करेगा, (इसमें कुछ भी)	
एव = ही		**संशयः** = संशय	
बुद्धिम् = बुद्धिको		**न** = नहीं है।	
निवेशय = लगा;			
अतः = इसके			

[अभ्याससे भगवत्प्राप्ति।]

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥ ९॥

अथ, चित्तम्, समाधातुम्, न, शक्नोषि, मयि, स्थिरम्,
अभ्यासयोगेन, ततः, माम्, इच्छ, आप्तुम्, धनञ्जय॥ ९॥

और—

अथ = यदि (तू)	**न, शक्नोषि** = समर्थ नहीं है,
चित्तम् = मनको	**ततः** = तो
मयि = मुझमें	**धनञ्जय** = हे अर्जुन!
स्थिरम् = अचल	**अभ्यासयोगेन** = { अभ्यासरूप* योगके द्वारा
समाधातुम् = स्थापन करनेके लिये	

* भगवान्‌के नाम और गुणोंका श्रवण, कीर्तन, मनन तथा श्वासके द्वारा जप और भगवत्प्राप्तिविषयक शास्त्रोंका पठन-पाठन इत्यादिक चेष्टाएँ भगवत्प्राप्तिके लिये बारम्बार करनेका नाम "अभ्यास" है।

माम् = मुझको
आप्तुम् = प्राप्त होनेके लिये
इच्छ = इच्छा कर।

[भगवदर्थ कर्म करनेसे भगवत्प्राप्ति।]

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥ १०॥

अभ्यासे, अपि, असमर्थः, असि, मत्कर्मपरमः, भव,
मदर्थम्, अपि, कर्माणि, कुर्वन्, सिद्धिम्, अवाप्स्यसि॥ १०॥

और यदि तू उपर्युक्त—

अभ्यासे = अभ्यासमें
अपि = भी
असमर्थः = असमर्थ
असि = है (तो केवल)
मत्कर्मपरमः = { मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण*
भव = हो जा। (इस प्रकार)
मदर्थम् = मेरे निमित्त
कर्माणि = कर्मोंको
कुर्वन् = करता हुआ
अपि = भी
सिद्धिम् = { मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको (ही)
अवाप्स्यसि = प्राप्त होगा।

[सर्वकर्मोंके फल-त्यागसे भगवत्प्राप्ति।]

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्॥ ११॥

अथ, एतत्, अपि, अशक्तः, असि, कर्तुम्, मद्योगम्, आश्रितः,
सर्वकर्मफलत्यागम्, ततः, कुरु, यतात्मवान्॥ ११॥

---

* स्वार्थको त्यागकर तथा परमेश्वरको ही परम आश्रय और परम गति समझकर निष्काम प्रेमभावसे सती-शिरोमणि पतिव्रता स्त्रीकी भाँति मन, वाणी और शरीरद्वारा परमेश्वरके लिये ही यज्ञ, दान और तपादि सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंके करनेका नाम ''भगवदर्थ कर्म करनेके परायण होना'' है।

और—

अथ	=	यदि	**असि**	=	है
मद्योगम्	=	मेरी प्राप्तिरूप योगके	**ततः**	=	तो
आश्रितः	=	आश्रित होकर	**यतात्मवान्**	=	मन–बुद्धि आदिपर विजय प्राप्त करनेवाला होकर
एतत्	=	उपर्युक्त साधनको			
कर्तुम्	=	करनेमें	**सर्वकर्मफलत्यागम्**	=	सब कर्मोंके फलका त्याग[1]
अपि	=	भी (तू)			
अशक्तः	=	असमर्थ	**कुरु**	=	कर

[**सर्वकर्मफलत्यागकी प्रशंसा।**]

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥ १२॥

श्रेयः, हि, ज्ञानम्, अभ्यासात्, ज्ञानात्, ध्यानम्, विशिष्यते, ध्यानात्, कर्मफलत्यागः, त्यागात्, शान्तिः, अनन्तरम्॥ १२॥

अभ्यासात्	=	मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे	**ध्यानात्**	=	ध्यानसे (भी)
ज्ञानम्	=	ज्ञान[2]	**कर्मफलत्यागः**	=	सब कर्मोंके फलका त्याग[3] (श्रेष्ठ है);
श्रेयः	=	श्रेष्ठ है,	**हि**	=	क्योंकि
ज्ञानात्	=	ज्ञानसे	**त्यागात्**	=	त्यागसे
ध्यानम्	=	मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान	**अनन्तरम्**	=	तत्काल ही
विशिष्यते	=	श्रेष्ठ है (और)	**शान्तिः**	=	परम शान्ति होती है।

१–गीता अध्याय ९ श्लोक २७ में इसका विस्तार देखना चाहिये।

२–सुननेसे और शास्त्र–पठनसे परमेश्वरके स्वरूपका जो अनुमान होता है, उसीको यहाँ ज्ञानके नामसे जानना चाहिये।

३–केवल भगवदर्थ कर्म करनेवाले पुरुषका भगवान्में प्रेम और श्रद्धा तथा भगवान्का चिन्तन भी बना रहता है, इसलिये ध्यानसे कर्मफलका त्याग श्रेष्ठ कहा है।

[सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित और मैत्री आदि गुणोंसे युक्त प्रिय भक्तके लक्षण।]

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥ १३॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ १४॥

अद्वेष्टा, सर्वभूतानाम्, मैत्रः, करुणः, एव, च,
निर्ममः, निरहङ्कारः, समदुःखसुखः, क्षमी॥ १३॥
सन्तुष्टः, सततम्, योगी, यतात्मा, दृढनिश्चयः,
मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः॥ १४॥

इस प्रकार शान्तिको प्राप्त हुआ—

यः = जो पुरुष
सर्वभूतानाम् = सब भूतोंमें
अद्वेष्टा = द्वेष-भावसे रहित,
मैत्रः = स्वार्थरहित सबका प्रेमी
च = और
करुणः = हेतुरहित दयालु है
एव = तथा*
निर्ममः = ममतासे रहित,
निरहङ्कारः = अहंकारसे रहित,
समदुःखसुखः = सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम (और)
क्षमी = क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है;
(तथा जो)
योगी = योगी
सततम् = निरन्तर
सन्तुष्टः = संतुष्ट है,
यतात्मा = मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है (और)
दृढनिश्चयः = मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—
सः = वह
मयि = मुझमें
अर्पितमनोबुद्धिः = अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला
मद्भक्तः = मेरा भक्त
मे = मुझको
प्रियः = प्रिय है।

* "एव" शब्द यहाँ सब गुणोंका समुच्चय करनेके लिये समझना चाहिये।

[हर्षादि विकारोंसे रहित और सबको अभय देनेवाले प्रिय भक्तके लक्षण।]

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥ १५॥

यस्मात्, न, उद्विजते, लोकः, लोकात्, न, उद्विजते, च, यः,
हर्षामर्षभयोद्वेगैः, मुक्तः, यः, सः, च, मे, प्रियः॥ १५॥

तथा—

यस्मात् = जिससे		**च** = तथा	
लोकः = कोई भी जीव		**यः** = जो	
न, उद्विजते = उद्वेगको प्राप्त नहीं होता		**हर्षामर्षभयोद्वेगैः** = हर्ष, अमर्ष[1] भय और उद्वेगादिसे	
च = और			
यः = जो (स्वयं भी)		**मुक्तः** = रहित है—	
लोकात् = किसी जीवसे		**सः** = वह भक्त	
न, उद्विजते = उद्वेगको प्राप्त नहीं होता		**मे** = मुझको	
		प्रियः = प्रिय है।	

[निःस्पृहादि गुणोंसे युक्त सर्वत्यागी प्रिय भक्तके लक्षण।]

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ १६॥

अनपेक्षः, शुचिः, दक्षः, उदासीनः, गतव्यथः,
सर्वारम्भपरित्यागी, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः॥ १६॥

और—

यः = जो पुरुष	**शुचिः** = बाहर-भीतरसे शुद्ध[2]
अनपेक्षः = आकांक्षासे रहित,	

१-दूसरेकी उन्नतिको देखकर संताप होनेका नाम "अमर्ष" है।

२-गीता अध्याय १३ श्लोक ७ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये।

दक्षः	=	चतुर
उदासीनः	=	पक्षपातसे रहित (और)
गतव्यथः	=	दुःखोंसे छूटा हुआ है—
सः	=	वह
सर्वारम्भ-परित्यागी	=	सब आरम्भोंका त्यागी*
मद्भक्तः	=	मेरा भक्त
मे	=	मुझको
प्रियः	=	प्रिय है।

[हर्ष-शोकादि विकारोंसे रहित निष्कामी प्रिय भक्तके लक्षण।]

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥ १७॥

यः, न, हृष्यति, न, द्वेष्टि, न, शोचति, न, काङ्क्षति, शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्, यः, सः, मे, प्रियः॥ १७॥

और—

यः	=	जो
न	=	न (कभी)
हृष्यति	=	हर्षित होता है,
न	=	न
द्वेष्टि	=	द्वेष करता है,
न	=	न
शोचति	=	शोक करता है,
न	=	न
काङ्क्षति	=	कामना करता है
		(तथा)
यः	=	जो
शुभाशुभ-परित्यागी	=	शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है—
सः	=	वह
भक्तिमान्	=	भक्तियुक्त पुरुष
मे	=	मुझको
प्रियः	=	प्रिय है।

[शत्रु-मित्रादिमें समभाववाले स्थिरबुद्धि प्रिय भक्तके लक्षण।]

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥ १८॥

---

* अर्थात् मन, वाणी और शरीरद्वारा प्रारब्धसे होनेवाले सम्पूर्ण स्वाभाविक कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्यागी।

समः, शत्रौ, च, मित्रे, च, तथा, मानापमानयोः,
शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः, सङ्गविवर्जितः ॥ १८ ॥

और जो—

शत्रौ, मित्रे	=	शत्रु–मित्रमें	**शीतोष्णसुख-दुःखेषु**	=	सरदी, गरमी और सुख–दुःखादि द्वन्द्वोंमें
च	=	और	**समः**	=	सम है
मानापमानयोः	=	मान–अपमानमें	**च**	=	और
समः	=	सम है	**सङ्गविवर्जितः**	=	आसक्तिसे रहित है—
तथा	=	तथा			

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥

तुल्यनिन्दास्तुतिः, मौनी, सन्तुष्टः, येन, केनचित्,
अनिकेतः, स्थिरमतिः, भक्तिमान्, मे, प्रियः, नरः ॥ १९ ॥

तथा जो—

तुल्यनिन्दास्तुतिः	=	निन्दा–स्तुतिको समान समझनेवाला,	**अनिकेतः**	=	(और) रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है— (वह)
मौनी	=	मननशील* (और)	**स्थिरमतिः**	=	स्थिरबुद्धि
येन, केनचित्	=	जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें	**भक्तिमान्**	=	भक्तिमान्
			नरः	=	पुरुष
			मे	=	मुझको
सन्तुष्टः	=	सदा ही संतुष्ट है	**प्रियः**	=	प्रिय है।

* अर्थात् ईश्वरके स्वरूपका निरन्तर मनन करनेवाला है।

[उपर्युक्त गुणोंका सेवन करनेवाले भक्तकी महिमा।]

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २० ॥

ये, तु, धर्म्यामृतम्, इदम्, यथा, उक्तम्, पर्युपासते,
श्रद्दधानाः, मत्परमाः, भक्ताः, ते, अतीव, मे, प्रियाः ॥ २० ॥

तु	=	परंतु	**पर्युपासते**	=	निष्काम प्रेमभावसे सेवन करते हैं,
ये	=	जो	**ते**	=	वे
श्रद्दधानाः	=	श्रद्धायुक्त पुरुष[1]	**भक्ताः**	=	भक्त
मत्परमाः	=	मेरे परायण होकर[2]	**मे**	=	मुझको
इदम्	=	इस	**अतीव**	=	अतिशय
यथा, उक्तम्	=	ऊपर कहे हुए	**प्रियाः**	=	प्रिय हैं।
धर्म्यामृतम्	=	धर्ममय अमृतको			

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

हरिः ॐ तत्सत्   हरिः ॐ तत्सत्   हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

१-वेद, शास्त्र, महात्मा और गुरुजनोंके तथा परमेश्वरके वचनोंपर प्रत्यक्षके सदृश विश्वासका नाम "श्रद्धा" है।

२-अर्थात् मेरेको परम आश्रय और परम गति एवं सबका आत्मरूप और सबसे परे परम पूज्य समझकर विशुद्ध प्रेमसे मेरी प्राप्तिके लिये "तत्पर" हुए।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

प्रधान-विषय—१ से १८ तक ज्ञानसहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका विषय, (१९—३४) ज्ञानसहित प्रकृति-पुरुषका विषय।

[क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका लक्षण।]

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥ १॥

इदम्, शरीरम्, कौन्तेय, क्षेत्रम्, इति, अभिधीयते,
एतत्, यः, वेत्ति, तम्, प्राहुः, क्षेत्रज्ञः, इति, तद्विदः॥ १॥

उसके पश्चात् श्रीकृष्णभगवान् बोले—

कौन्तेय = हे अर्जुन!		**यः** = जो	
इदम् = यह		**वेत्ति** = जानता है,	
शरीरम् = शरीर		**तम्** = उसको	
क्षेत्रम् = 'क्षेत्र'*		**क्षेत्रज्ञः** = 'क्षेत्रज्ञ'	
इति = इस (नामसे)		**इति** = इस (नामसे)	
अभिधीयते = कहा जाता है; (और)		**तद्विदः** = उनके तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानीजन	
एतत् = इसको		**प्राहुः** = कहते हैं।	

[परमात्माके साथ आत्माकी एकताका प्रतिपादन करके क्षेत्र-क्षेत्रज्ञके ज्ञानको ही ज्ञान बतलाना।]

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥ २॥

* जैसे खेतमें बोये हुए बीजोंका उसके अनुरूप फल समयपर प्रकट होता है, वैसे ही इसमें बोये हुए कर्मोंके संस्काररूप बीजोंका फल समयपर प्रकट होता है। इसलिये इसका नाम "क्षेत्र" ऐसा कहा है।

क्षेत्रज्ञम्, च, अपि, माम्, विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु, भारत,
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, ज्ञानम्, यत्, तत्, ज्ञानम्, मतम्, मम॥ २॥

भारत = हे अर्जुन! (तू)
सर्वक्षेत्रेषु = सब क्षेत्रोंमें
क्षेत्रज्ञम् = क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा
अपि = भी
माम् = मुझे ही
विद्धि = जान[1]
च = और
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः = क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका अर्थात् विकारसहित प्रकृतिका और पुरुषका
यत् = जो
ज्ञानम् = तत्त्वसे जानना है[2]
तत् = वह
ज्ञानम् = ज्ञान है—
(इति) = ऐसा
मम = मेरा
मतम् = मत है।

[विकारसहित क्षेत्रके स्वरूप और स्वभाव आदिका एवं प्रभावसहित क्षेत्रज्ञके स्वरूपका वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा।]

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु॥ ३॥

तत्, क्षेत्रम्, यत्, च, यादृक्, च, यद्विकारि, यतः, च, यत्,
सः, च, यः, यत्प्रभावः, च, तत्, समासेन, मे, शृणु॥ ३॥

इसलिये—

तत् = वह
क्षेत्रम् = क्षेत्र
यत् = जो
च = और
यादृक् = जैसा है
च = तथा
यद्विकारि = जिन विकारोंवाला है
च = और
यतः = जिस कारणसे

१-गीता अध्याय १५ श्लोक ७ और उसकी टिप्पणी देखनी चाहिये।
२-गीता अध्याय १३ श्लोक २३ और उसकी टिप्पणी देखनी चाहिये।

यत्	= जो (हुआ है)	**यत्प्रभावः**	= जिस प्रभाववाला है—
च	= तथा	**तत्**	= वह सब
सः	= वह (क्षेत्रज्ञ भी)	**समासेन**	= संक्षेपमें
यः	= जो	**मे**	= मुझसे
च	= और	**शृणु**	= सुन।

[क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके विषयमें ऋषि, वेद और ब्रह्मसूत्रका प्रमाण।]

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः॥ ४॥

ऋषिभिः, बहुधा, गीतम्, छन्दोभिः, विविधैः, पृथक्, ब्रह्मसूत्रपदैः, च, एव, हेतुमद्भिः, विनिश्चितैः॥ ४॥

यह क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञका तत्त्व—

ऋषिभिः	= ऋषियोंद्वारा	**च**	= तथा
बहुधा	= बहुत प्रकारसे	**विनिश्चितैः**	= भलीभाँति निश्चय किये हुए
गीतम्	= कहा गया है (और)	**हेतुमद्भिः**	= युक्तियुक्त
विविधैः	= विविध	**ब्रह्मसूत्रपदैः**	= ब्रह्मसूत्रके पदोंद्वारा
छन्दोभिः	= वेदमन्त्रोंद्वारा (भी)		
पृथक्	= विभागपूर्वक	**एव**	= भी
(गीतम्)	= कहा गया है	**(गीतम्)**	= कहा गया है।

[क्षेत्रके स्वरूपका कथन।]

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥ ५॥

महाभूतानि, अहङ्कारः, बुद्धिः, अव्यक्तम्, एव, च, इन्द्रियाणि, दश, एकम्, च, पञ्च, च, इन्द्रियगोचराः॥ ५॥

और हे अर्जुन! वही मैं तेरे लिये कहता हूँ कि—

महाभूतानि = पाँच महाभूत[१]
अहङ्कारः = अहंकार,
बुद्धिः = बुद्धि
च = और
अव्यक्तम् = मूल प्रकृति
एव = भी
च = तथा
दश = दस

इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ[२],
एकम् = एक मन
च = और
पञ्च = पाँच
इन्द्रियगोचराः = इन्द्रियोंके विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—

[क्षेत्रके विकारोंका कथन।]

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥ ६॥

इच्छा, द्वेषः, सुखम्, दुःखम्, सङ्घातः, चेतना, धृतिः,
एतत्, क्षेत्रम्, समासेन, सविकारम्, उदाहृतम्॥ ६॥

तथा—

इच्छा = इच्छा,
द्वेषः = द्वेष,
सुखम् = सुख,
दुःखम् = दुःख,
सङ्घातः = स्थूल देहका पिण्ड,
चेतना = चेतना[३] (और)

धृतिः = धृति[४]—(इस प्रकार)
सविकारम् = विकारोंके सहित[५]
एतत् = यह
क्षेत्रम् = क्षेत्र
समासेन = संक्षेपमें
उदाहृतम् = कहा गया है।

१-अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीका सूक्ष्मभाव।

२-अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा।

३-शरीर और अन्तःकरणकी एक प्रकारकी चेतनशक्ति।

४-गीता अध्याय १८ श्लोक ३३-३४-३५ में देखना चाहिये।

५-पाँचवें श्लोकमें कहा हुआ तो क्षेत्रका स्वरूप समझना चाहिये और इस श्लोकमें कहे हुए इच्छादि क्षेत्रके विकार समझने चाहिये।

[ज्ञानके साधनोंमें अमानित्व आदि नौ गुणोंका कथन।]

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

अमानित्वम्, अदम्भित्वम्, अहिंसा, क्षान्तिः, आर्जवम्, आचार्योपासनम्, शौचम्, स्थैर्यम्, आत्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

और हे अर्जुन!—

अमानित्वम् = श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव,
अदम्भित्वम् = दम्भाचरणका अभाव,
अहिंसा = किसी भी प्राणीको किसी प्रकार भी न सताना,
क्षान्तिः = क्षमाभाव,
आर्जवम् = मन-वाणी आदिकी सरलता,
आचार्योपासनम् = श्रद्धाभक्तिसहित गुरुकी सेवा,
शौचम् = बाहर-भीतरकी शुद्धि*,
स्थैर्यम् = अन्तःकरणकी स्थिरता (और)
आत्मविनिग्रहः = मन-इन्द्रियोंसहित शरीरका निग्रह—

[ज्ञानके साधनोंमें अहंकारके अभावका और वैराग्यका कथन।]

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

इन्द्रियार्थेषु, वैराग्यम्, अनहङ्कारः, एव, च, जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

---

* सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी तथा यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जल-मृत्तिकादिसे शरीरकी शुद्धिको ''बाहरकी शुद्धि'' कहते हैं तथा राग-द्वेष और कपट आदि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ हो जाना ''भीतरकी शुद्धि'' कही जाती है।

तथा—

इन्द्रियार्थेषु	= इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंमें	**अनहङ्कारः, एव**	= अहंकारका भी अभाव
वैराग्यम्	= आसक्तिका अभाव	**जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्**	= जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख और दोषोंका बार-बार विचार करना—
च	= और		

[ज्ञानके साधनोंमें आसक्तिके अभावका और चित्तकी समताका कथन।]

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु॥ ९॥

असक्तिः, अनभिष्वङ्गः, पुत्रदारगृहादिषु,
नित्यम्, च, समचित्तत्वम्, इष्टानिष्टोपपत्तिषु॥ ९॥

तथा—

पुत्रदारगृहादिषु	= पुत्र-स्त्री-घर और धन आदिमें	**इष्टानिष्टोपपत्तिषु**	= प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें
असक्तिः	= आसक्तिका अभाव,	**नित्यम्**	= सदा ही
अनभिष्वङ्गः	= ममताका न होना	**समचित्तत्वम्**	= चित्तका सम रहना—
च	= तथा		

[ज्ञानके साधनोंमें अव्यभिचारिणी भक्ति और एकान्त देशके सेवनका कथन।]

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि॥ १०॥

मयि, च, अनन्ययोगेन, भक्तिः, अव्यभिचारिणी,
विविक्तदेशसेवित्वम्, अरतिः, जनसंसदि॥ १०॥

और—

मयि	=	मुझ परमेश्वरमें	**विविक्तदेश-सेवित्वम्**	=	एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव (और)
अनन्ययोगेन	=	अनन्य योगके द्वारा			
अव्यभिचारिणी	=	अव्यभिचारिणी	**जनसंसदि**	=	विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें
भक्तिः	=	भक्ति[1]			
च	=	तथा	**अरतिः**	=	प्रेमका न होना—

[ज्ञानके साधनोंमें निदिध्यासनका कथन और ज्ञानके साधनोंसे विपरीत गुणोंको अज्ञान बतलाना।]

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥ ११॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्, तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्,
एतत्, ज्ञानम्, इति, प्रोक्तम्, अज्ञानम्, यत्, अतः, अन्यथा॥ ११॥

तथा—

अध्यात्मज्ञान-नित्यत्वम्	=	अध्यात्मज्ञानमें[2] नित्य स्थिति (और)	**एतत्**	=	यह सब
			ज्ञानम्	=	ज्ञान[3] है (और)
तत्त्वज्ञानार्थ-दर्शनम्	=	तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको ही देखना—	**यत्**	=	जो
			अतः	=	इससे
			अन्यथा	=	विपरीत है,

१–केवल एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरको ही अपना स्वामी मानते हुए स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके श्रद्धा और भावके सहित परम प्रेमसे भगवान्का निरन्तर चिन्तन करना ''अव्यभिचारिणी भक्ति'' है।

२–जिस ज्ञानके द्वारा आत्मवस्तु और अनात्मवस्तु जानी जाय, उस ज्ञानका नाम ''अध्यात्मज्ञान'' है।

३–इस अध्यायके ७वें श्लोकसे लेकर यहाँतक जो साधन कहे हैं, वे सब तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिमें हेतु होनेसे ''ज्ञान'' नामसे कहे गये हैं।

अज्ञानम्	=	वह अज्ञान है*,			
इति	=	ऐसा	**प्रोक्तम्**	=	कहा है।

[जाननेयोग्य परमात्माके स्वरूपका वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा और उसके निर्गुणस्वरूपका वर्णन।]

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥ १२॥

ज्ञेयम्, यत्, तत्, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, अमृतम्, अश्नुते,
अनादिमत्, परम्, ब्रह्म, न, सत्, तत्, न, असत्, उच्यते॥ १२॥

और हे अर्जुन!—

यत्	=	जो	**तत्**	=	वह
ज्ञेयम्	=	जाननेयोग्य है (तथा)	**अनादिमत्**	=	अनादिवाला
			परम्	=	परम
यत्	=	जिसको	**ब्रह्म**	=	ब्रह्म
ज्ञात्वा	=	जानकर (मनुष्य)	**न**	=	न
अमृतम्	=	परमानन्दको	**सत्**	=	सत् (ही)
अश्नुते	=	प्राप्त होता है,			
तत्	=	उसको	**उच्यते**	=	कहा जाता है,
प्रवक्ष्यामि	=	भलीभाँति कहूँगा।	**न**	=	न
			असत्	=	असत् (ही)।

[परमात्माके विश्वरूपका कथन।]

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ १३॥

सर्वतःपाणिपादम्, तत्, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्,
सर्वतःश्रुतिमत्, लोके, सर्वम्, आवृत्य, तिष्ठति॥ १३॥

---

* ऊपर कहे हुए ज्ञानके साधनोंसे विपरीत जो मान, दम्भ, हिंसा आदि हैं, वे अज्ञानकी वृद्धिमें हेतु होनेसे ''अज्ञान'' नामसे कहे गये हैं।

परंतु—

तत्	= वह	**सर्वतःश्रुतिमत्**	= सब ओर कानवाला है।
सर्वतःपाणिपादम्	= सब ओर हाथ-पैरवाला,	**(यतः)**	= क्योंकि (वह)
		लोके	= संसारमें
सर्वतोऽक्षि-शिरोमुखम्	= सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला (तथा)	**सर्वम्**	= सबको
		आवृत्य	= व्याप्त करके
		तिष्ठति	= स्थित है*।

[परमेश्वरके सगुण और निर्गुण स्वरूपकी एकताका कथन।]

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥ १४॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्, सर्वेन्द्रियविवर्जितम्,
असक्तम्, सर्वभृत्, च, एव, निर्गुणम्, गुणभोक्तृ, च॥ १४॥

और वह—

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्	= सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है, (परंतु वास्तवमें)	**असक्तम्**	= आसक्तिरहित (होनेपर)
		एव	= भी
		सर्वभृत्	= सबका धारण-पोषण करनेवाला
सर्वेन्द्रियविवर्जितम्	= सब इन्द्रियोंसे रहित है	**च**	= और
		निर्गुणम्	= निर्गुण होनेपर (भी)
च	= तथा	**गुणभोक्तृ**	= गुणोंको भोगनेवाला है।

* आकाश जिस प्रकार वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीका कारणरूप होनेसे उनको व्याप्त करके स्थित है, वैसे ही परमात्मा भी सबका कारणरूप होनेसे सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को व्याप्त करके ''स्थित है''।

[सर्वात्मरूपसे परमात्माकी व्यापकताका कथन।]

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ १५॥

बहिः, अन्तः, च, भूतानाम्, अचरम्, चरम्, एव, च,
सूक्ष्मत्वात्, तत्, अविज्ञेयम्, दूरस्थम्, च, अन्तिके, च, तत्॥ १५॥

तथा वह—

भूतानाम् = चराचर सब भूतोंके		**सूक्ष्मत्वात्** = सूक्ष्म होनेसे	
बहिः, अन्तः = बाहर-भीतर (परिपूर्ण है)		**अविज्ञेयम्** = अविज्ञेय है[1]	
		च = तथा	
च = और		**अन्तिके** = अति समीपमें[2]	
चरम्, अचरम् = चर-अचररूप		**च** = और	
एव = भी (वही है;)		**दूरस्थम्** = दूरमें भी स्थित[3]	
च = और			
तत् = वह		**तत्** = वही है।	

[उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले परमात्माके सर्वव्यापी स्वरूपका कथन।]

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥ १६॥

अविभक्तम्, च, भूतेषु, विभक्तम्, इव, च, स्थितम्,
भूतभर्तृ, च, तत्, ज्ञेयम्, ग्रसिष्णु, प्रभविष्णु, च॥ १६॥

तथा वह परमात्मा—

अविभक्तम् = विभागरहित एक रूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण होनेपर	**च** = भी
	भूतेषु = चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें
	विभक्तम्, इव = विभक्त-सा

१-जैसे सूर्यकी किरणोंमें स्थित हुआ जल सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता, वैसे ही सर्वव्यापी परमात्मा भी सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता।

२-वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण और सबका आत्मा होनेसे ''अति समीप'' है।

३-श्रद्धारहित अज्ञानी पुरुषोंके लिये न जाननेके कारण ''दूरमें स्थित'' है।

स्थितम्	=	स्थित[1] (प्रतीत होता है);	**च**	=	और
च	=	तथा	**ग्रसिष्णु**	=	रुद्ररूपसे संहार करनेवाला
तत्	=	वह	**च**	=	तथा
ज्ञेयम्	=	जाननेयोग्य परमात्मा			
भूतभर्तृ	=	विष्णुरूपसे भूतोंको धारण-पोषण करनेवाला	**प्रभविष्णु**	=	ब्रह्मारूपसे सबको उत्पन्न करनेवाला है।

[ज्ञानद्वारा प्राप्त होनेयोग्य परमात्माके परम प्रकाशमय स्वरूपका कथन।]

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ १७॥

ज्योतिषाम्, अपि, तत्, ज्योतिः, तमसः, परम्, उच्यते,
ज्ञानम्, ज्ञेयम्, ज्ञानगम्यम्, हृदि, सर्वस्य, विष्ठितम्॥ १७॥

और—

तत्	=	वह परब्रह्म	**ज्ञानम्**	=	बोधस्वरूप,
ज्योतिषाम्	=	ज्योतियोंका			
अपि	=	भी	**ज्ञेयम्**	=	जाननेके योग्य (एवं)
ज्योतिः	=	ज्योति[2] (एवं)			
तमसः	=	मायासे			
परम्	=	अत्यन्त परे	**ज्ञानगम्यम्**	=	तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेयोग्य है (और)
उच्यते	=	कहा जाता है। (वह परमात्मा)			

१-जैसे महाकाश विभागरहित स्थित हुआ भी घड़ोंमें पृथक्-पृथक्‌के सदृश प्रतीत होता है, वैसे ही परमात्मा सब भूतोंमें एकरूपसे स्थित हुआ भी पृथक्-पृथक्‌की भाँति प्रतीत होता है।

२-गीता अध्याय १५ श्लोक १२ में देखना चाहिये।

सर्वस्य	=	सबके	**विष्ठितम्**	=	विशेषरूपसे स्थित है।
हृदि	=	हृदयमें			

[क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेयका तत्त्व जाननेसे भगवत्-प्राप्तिका कथन।]

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते॥ १८॥

इति, क्षेत्रम्, तथा, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, च, उक्तम्, समासतः,
मद्भक्तः, एतत्, विज्ञाय, मद्भावाय, उपपद्यते॥ १८॥

हे अर्जुन!—

इति	=	इस प्रकार	**समासतः**	=	संक्षेपसे
क्षेत्रम्	=	क्षेत्र[1]	**उक्तम्**	=	कहा गया।
तथा	=	तथा	**मद्भक्तः**	=	मेरा भक्त
ज्ञानम्	=	ज्ञान[2]	**एतत्**	=	इसको
च	=	और	**विज्ञाय**	=	तत्त्वसे जानकर
ज्ञेयम्	=	जानने योग्य परमात्माका स्वरूप[3]	**मद्भावाय**	=	मेरे स्वरूपको
			उपपद्यते	=	प्राप्त होता है।

[प्रकृति-पुरुषकी अनादिता तथा प्रकृतिसे विकार और गुणोंकी उत्पत्तिका कथन।]

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥ १९॥

प्रकृतिम्, पुरुषम्, च, एव, विद्धि, अनादी, उभौ, अपि,
विकारान्, च, गुणान्, च, एव, विद्धि, प्रकृतिसम्भवान्॥ १९॥

१-श्लोक ५-६ में विकारसहित क्षेत्रका स्वरूप कहा है।

२-श्लोक ७ से ११ तक ज्ञान अर्थात् ज्ञानका साधन कहा है।

३-श्लोक १२ से १७ तक ज्ञेयका स्वरूप कहा है।

और हे अर्जुन!—

प्रकृतिम्	=	प्रकृति	**विकारान्**	=	राग-द्वेषादि विकारोंको
च	=	और	**च**	=	तथा
पुरुषम्	=	पुरुष—	**गुणान्**	=	त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थोंको
उभौ	=	इन दोनोंको	**अपि**	=	भी
एव	=	ही (तू)	**प्रकृतिसम्भवान्, एव**	=	प्रकृतिसे ही उत्पन्न
अनादी	=	अनादि	**विद्धि**	=	जान।
विद्धि	=	जान			
च	=	और			

[कार्य-करणकी उत्पत्तिमें प्रकृतिकी और सुख-दुःखोंके भोगनेमें पुरुषकी हेतुताका कथन।]

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥ २०॥

कार्यकरणकर्तृत्वे, हेतुः, प्रकृतिः, उच्यते,
पुरुषः, सुखदुःखानाम्, भोक्तृत्वे, हेतुः, उच्यते॥ २०॥

क्योंकि—

कार्यकरणकर्तृत्वे	=	कार्य और करणको* उत्पन्न करनेमें	**पुरुषः**	=	जीवात्मा
हेतुः	=	हेतु	**सुखदुःखानाम्**	=	सुख-दुःखोंके
प्रकृतिः	=	प्रकृति	**भोक्तृत्वे**	=	भोक्तापनमें अर्थात् भोगनेमें
उच्यते	=	कही जाती है (और)	**हेतुः**	=	हेतु
			उच्यते	=	कहा जाता है।

* आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन दसका नाम ''कार्य'' है। बुद्धि, अहंकार और मन तथा श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा—इन १३ का नाम ''करण'' है।

[प्रकृतिके संगसे पुरुषको भोग और नाना योनियोंकी प्राप्ति।]

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥ २१॥

पुरुषः, प्रकृतिस्थः, हि, भुङ्क्ते, प्रकृतिजान्, गुणान्,
कारणम्, गुणसङ्गः, अस्य, सदसद्योनिजन्मसु॥ २१॥

परंतु—

प्रकृतिस्थः = प्रकृतिमें[1] स्थित
हि = ही
पुरुषः = पुरुष
प्रकृतिजान् = प्रकृतिसे उत्पन्न
गुणान् = त्रिगुणात्मक पदार्थोंको
भुङ्क्ते = भोगता है (और इन)
गुणसङ्गः = गुणोंका संग (ही)
अस्य = इस जीवात्माके
सदसद्योनिजन्मसु = अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका
कारणम् = कारण है[2]।

[परमात्मा और आत्माकी एकताका प्रतिपादन।]

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥ २२॥

उपद्रष्टा, अनुमन्ता, च, भर्ता, भोक्ता, महेश्वरः,
परमात्मा, इति, च, अपि, उक्तः, देहे, अस्मिन्, पुरुषः, परः॥ २२॥

अस्मिन् = इस
देहे (स्थितः) अपि = देहमें स्थित
पुरुषः = यह आत्मा
(वास्तवमें)
परः (एव) = परमात्मा[3] ही है। (वही)

१-प्रकृति शब्दका अर्थ गीता अध्याय ७ श्लोक १४ में कही हुई भगवान्‌की त्रिगुणमयी माया समझना चाहिये।

२-सत्त्वगुणके संगसे देवयोनिमें एवं रजोगुणके संगसे मनुष्ययोनिमें और तमोगुणके संगसे पशु-पक्षी आदि नीच योनियोंमें जन्म होता है।

३-अर्थात् त्रिगुणमयी मायासे सर्वथा अतीत।

उपद्रष्टा = साक्षी होनेसे उपद्रष्टा
च = और
अनुमन्ता = यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता,
भर्ता = सबका धारण-पोषण करनेवाला होनेसे भर्ता,
भोक्ता = जीवरूपसे भोक्ता,
महेश्वरः = ब्रह्मा आदिका भी स्वामी होनेसे महेश्वर
च = और
परमात्मा = शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा—
इति = ऐसा
उक्तः = कहा गया है।

[गुणोंसहित प्रकृति और पुरुषको तत्त्वसे जाननेका फल।]

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते॥ २३॥

यः, एवम्, वेत्ति, पुरुषम्, प्रकृतिम्, च, गुणैः, सह,
सर्वथा, वर्तमानः, अपि, न, सः, भूयः, अभिजायते॥ २३॥

एवम् = इस प्रकार
पुरुषम् = पुरुषको
च = और
गुणैः = गुणोंके
सह = सहित
प्रकृतिम् = प्रकृतिको
यः = जो मनुष्य
वेत्ति = तत्त्वसे जानता है*,
सः = वह
सर्वथा = सब प्रकारसे
वर्तमानः = कर्तव्य कर्म करता हुआ
अपि = भी
भूयः = फिर
न = नहीं
अभिजायते = जन्मता।

[ध्यानयोग, ज्ञानयोग और कर्मयोगसे भगवत्प्राप्तिका कथन।]

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥ २४॥

* दृश्यमात्र सम्पूर्ण जगत् मायाका कार्य होनेसे क्षणभंगुर, नाशवान्, जड़ और अनित्य है तथा जीवात्मा नित्य, चेतन, निर्विकार और अविनाशी एवं शुद्ध, बोधस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्माका ही सनातन अंश है। इस प्रकार समझकर सम्पूर्ण मायिक पदार्थोंके संगका सर्वथा त्याग करके परमपुरुष परमात्मामें ही एकीभावसे नित्य स्थित रहनेका नाम उनको ''तत्त्वसे जानना'' है।

ध्यानेन, आत्मनि, पश्यन्ति, केचित्, आत्मानम्, आत्मना,
अन्ये, साङ्ख्येन, योगेन, कर्मयोगेन, च, अपरे ॥ २४ ॥

हे अर्जुन! उस परमपुरुष—

आत्मानम् = परमात्माको		**अन्ये** = अन्य कितने ही	
केचित् = कितने ही मनुष्य तो		**साङ्ख्येन योगेन** = ज्ञानयोग[2]के द्वारा	
आत्मना = शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे		**च** = और	
ध्यानेन = ध्यानके द्वारा[1]		**अपरे** = दूसरे (कितने ही)	
आत्मनि = हृदयमें		**कर्मयोगेन** = कर्मयोगके द्वारा[3]	
पश्यन्ति = देखते हैं,		**(पश्यन्ति)** = देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं।	

[महान् पुरुषोंके कथनानुसार उपासना करनेसे भगवत्प्राप्तिका कथन।]

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

अन्ये, तु, एवम्, अजानन्तः, श्रुत्वा, अन्येभ्यः, उपासते,
ते, अपि, च, अतितरन्ति, एव, मृत्युम्, श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

तु = परंतु	**अन्येभ्यः** = दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे
अन्ये = इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्द बुद्धिवाले पुरुष हैं, वे	**श्रुत्वा** = सुनकर ही (तदनुसार)
एवम् = इस प्रकार	
अजानन्तः = न जानते हुए	**उपासते** = उपासना करते हैं[4]

१–जिसका वर्णन गीता अध्याय ६ श्लोक ११ से ३२ तक विस्तारपूर्वक किया गया है।

२–जिसका वर्णन गीता अध्याय २ श्लोक ११ से ३० तक विस्तारपूर्वक किया गया है।

३–जिसका वर्णन गीता अध्याय २ श्लोक ४० से अध्याय–समाप्तिपर्यन्त विस्तारपूर्वक किया गया है।

४–अर्थात् उन पुरुषोंके कहनेके अनुसार ही श्रद्धासहित तत्पर हुए साधन करते हैं।

च = और
ते = वे
श्रुतिपरायणाः = श्रवणपरायण पुरुष
अपि = भी
मृत्युम् = मृत्युरूप संसारसागरको
अतितरन्ति, एव = निःसन्देह तर जाते हैं।

[क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे चराचर प्राणियोंकी उत्पत्तिका कथन।]

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ॥ २६॥

यावत्, सञ्जायते, किञ्चित्, सत्त्वम्, स्थावरजङ्गमम्, क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तत्, विद्धि, भरतर्षभ॥ २६॥

भरतर्षभ = हे अर्जुन!
यावत् = यावन्मात्र
किञ्चित् = जितने भी
स्थावरजङ्गमम् = स्थावरजंगम
सत्त्वम् = प्राणी
सञ्जायते = उत्पन्न होते हैं,
तत् = उन सबको (तू)
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् = क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही (उत्पन्न)
विद्धि = जान।

[अविनाशी परमेश्वरको सर्वत्र समभावसे स्थित देखनेवालेकी प्रशंसा।]

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥ २७॥

समम्, सर्वेषु, भूतेषु, तिष्ठन्तम्, परमेश्वरम्, विनश्यत्सु, अविनश्यन्तम्, यः, पश्यति, सः, पश्यति॥ २७॥

इस प्रकार जानकर—

यः = जो पुरुष
विनश्यत्सु = नष्ट होते हुए
सर्वेषु = सब
भूतेषु = चराचर भूतोंमें
परमेश्वरम् = परमेश्वरको
अविनश्यन्तम् = नाशरहित (और)
समम् = समभावसे

तिष्ठन्तम्	=	स्थित	**सः**	=	वही (यथार्थ)
पश्यति	=	देखता है,	**पश्यति**	=	देखता है।

[**परमेश्वरको सर्वत्र समभावसे स्थित देखनेका फल।**]

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥ २८॥

सम्म्, पश्यन्, हि, सर्वत्र, समवस्थितम्, ईश्वरम्,
न, हिनस्ति, आत्मना, आत्मानम्, ततः, याति, पराम्, गतिम्॥ २८॥

हि	=	क्योंकि (जो पुरुष)	**आत्मना**	=	अपने द्वारा
			आत्मानम्	=	अपनेको
सर्वत्र	=	सबमें	**न हिनस्ति**	=	नष्ट नहीं करता[1],
समवस्थितम्	=	समभावसे स्थित	**ततः**	=	इससे (वह)
ईश्वरम्	=	परमेश्वरको	**पराम्**	=	परम
समम्	=	समान	**गतिम्**	=	गतिको
पश्यन्	=	देखता हुआ	**याति**	=	प्राप्त होता है।

[**आत्माको अकर्ता देखनेवालेकी प्रशंसा।**]

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति॥ २९॥

प्रकृत्या, एव, च, कर्माणि, क्रियमाणानि, सर्वशः,
यः, पश्यति, तथा, आत्मानम्, अकर्तारम्, सः, पश्यति॥ २९॥

च	=	और	**एव**	=	ही
यः	=	जो पुरुष	**क्रियमाणानि**	=	किये जाते हुए
कर्माणि	=	सम्पूर्ण कर्मोंको	**पश्यति**	=	देखता है[2]
सर्वशः	=	सब प्रकारसे	**तथा**	=	और
प्रकृत्या	=	प्रकृतिके द्वारा	**आत्मानम्**	=	आत्माको

१-अर्थात् शरीरका नाश होनेसे अपने आत्माका नाश नहीं मानता है।

२-अर्थात् इस बातको तत्त्वसे समझ लेता है कि प्रकृतिसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं।

अकर्तारम्	=	अकर्ता	**सः**	=	वही (यथार्थ)
पश्यति	=	देखता है,	**(पश्यति)**	=	देखता है।

[संसारको परमात्मामें स्थित और परमात्मासे उत्पन्न हुआ देखनेका फल।]

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ ३०॥

यदा, भूतपृथग्भावम्, एकस्थम्, अनुपश्यति,
ततः, एव, च, विस्तारम्, ब्रह्म, सम्पद्यते तदा॥ ३०॥

और—

यदा	=	जिस क्षण (यह पुरुष)	**एव**	=	ही
भूतपृथग्भावम्	=	भूतोंके पृथक्-पृथक् भावको	**विस्तारम्**	=	सम्पूर्ण भूतोंका विस्तार
एकस्थम्	=	एक परमात्मामें ही स्थित	**अनुपश्यति**	=	देखता है,
च	=	तथा	**तदा**	=	उसी क्षण (वह)
ततः	=	उस परमात्मासे	**ब्रह्म**	=	सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको
			सम्पद्यते	=	प्राप्त हो जाता है।

[अविनाशी परमात्मा गुणातीत होनेसे न कर्ता है और न लिपायमान होता है, इस विषयका कथन।]

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥ ३१॥

अनादित्वात्, निर्गुणत्वात्, परमात्मा, अयम्, अव्ययः,
शरीरस्थः, अपि, कौन्तेय, न, करोति, न, लिप्यते॥ ३१॥

कौन्तेय	=	हे अर्जुन!	**अव्ययः**	=	अविनाशी
अनादित्वात्	=	अनादि होनेसे (और)	**परमात्मा**	=	परमात्मा
निर्गुणत्वात्	=	निर्गुण होनेसे	**शरीरस्थः**	=	शरीरमें स्थित होनेपर
अयम्	=	यह	**अपि**	=	भी (वास्तवमें)

न = न (तो)		**न** = न	
करोति = कुछ करता है और		**लिप्यते** = लिप्त ही होता है।	

[आकाशके दृष्टान्तसे आत्माकी निर्लिप्तताका कथन]

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥ ३२॥

यथा, सर्वगतम्, सौक्ष्म्यात्, आकाशम्, न, उपलिप्यते,
सर्वत्र, अवस्थितः, देहे, तथा, आत्मा, न, उपलिप्यते॥ ३२॥

यथा = जिस प्रकार	**देहे** = देहमें
सर्वगतम् = सर्वत्र व्याप्त	**सर्वत्र** = सर्वत्र
आकाशम् = आकाश	**अवस्थितः** = स्थित
सौक्ष्म्यात् = सूक्ष्म होनेके कारण	**आत्मा** = आत्मा (निर्गुण होनेके कारण देहके गुणोंसे)
न, उपलिप्यते = लिप्त नहीं होता,	**न, उपलिप्यते** = लिप्त नहीं होता।
तथा = वैसे ही	

[सूर्यके दृष्टान्तसे प्रकाशस्वरूप आत्माके अकर्तापनका कथन।]

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत॥ ३३॥

यथा, प्रकाशयति, एकः, कृत्स्नम्, लोकम्, इमम्, रविः,
क्षेत्रम्, क्षेत्री, तथा, कृत्स्नम्, प्रकाशयति, भारत॥ ३३॥

भारत = हे अर्जुन!	**प्रकाशयति** = प्रकाशित करता है,
यथा = जिस प्रकार	**तथा** = उसी प्रकार
एकः = एक ही	**क्षेत्री** = एक ही आत्मा
रविः = सूर्य	**कृत्स्नम्** = सम्पूर्ण
इमम् = इस	**क्षेत्रम्** = क्षेत्रको
कृत्स्नम् = सम्पूर्ण	**प्रकाशयति** = प्रकाशित करता है।
लोकम् = ब्रह्माण्डको	

[क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको जाननेका फल परमात्माकी प्राप्ति बतलाना।]

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥ ३४॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, एवम्, अन्तरम्, ज्ञानचक्षुषा, भूतप्रकृतिमोक्षम्, च, ये, विदुः, यान्ति, ते, परम्॥ ३४॥

एवम्	= इस प्रकार	**ये**	= जो पुरुष
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः	= क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके	**ज्ञानचक्षुषा**	= ज्ञान-नेत्रोंद्वारा
अन्तरम्	= भेदको*	**विदुः**	= तत्त्वसे जानते हैं,
च	= तथा	**ते**	= वे महात्माजन
भूतप्रकृतिमोक्षम्	= कार्यसहित प्रकृतिसे मुक्त होनेको	**परम्**	= परम ब्रह्म परमात्माको
		यान्ति	= प्राप्त होते हैं।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

* क्षेत्रको जड़, विकारी, क्षणिक और नाशवान् तथा क्षेत्रज्ञको नित्य, चेतन, अविकारी और अविनाशी जानना ही उनके ''भेदको'' जानना है।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

प्रधान-विषय—१ से ४ तक ज्ञानकी महिमा और प्रकृति-पुरुषसे जगत्‌की उत्पत्ति, (५—१८) सत्त्व, रज, तम तीनों गुणोंका विषय, (१९—२७) भगवत्-प्राप्तिका उपाय और गुणातीत पुरुषके लक्षण।

[अति उत्तम परमज्ञानके कथनकी प्रतिज्ञा और उसकी महिमा।]

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः॥ १॥

परम्, भूयः, प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानाम्, ज्ञानम्, उत्तमम्,
यत्, ज्ञात्वा, मुनयः, सर्वे, पराम्, सिद्धिम्, इतः, गताः॥ १॥

उसके पश्चात् श्रीभगवान् बोले, अर्जुन!—

ज्ञानानाम्	= ज्ञानोंमें भी	**सर्वे**	= सब
उत्तमम् (तत्)	= अति उत्तम उस	**मुनयः**	= मुनिजन
परम्	= परम	**इतः**	= इस संसारसे (मुक्त होकर)
ज्ञानम्	= ज्ञानको (मैं)		
भूयः	= फिर		
प्रवक्ष्यामि	= कहूँगा,	**पराम्**	= परम
यत्	= जिसको	**सिद्धिम्**	= सिद्धिको
ज्ञात्वा	= जानकर	**गताः**	= प्राप्त हो गये हैं।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥ २॥

इदम्, ज्ञानम्, उपाश्रित्य, मम, साधर्म्यम्, आगताः,
सर्गे, अपि, न, उपजायन्ते, प्रलये, न, व्यथन्ति, च॥ २॥

हे अर्जुन!—

इदम् = इस
ज्ञानम् = ज्ञानको
उपाश्रित्य = आश्रय करके अर्थात् धारण करके
मम = मेरे
साधर्म्यम् = स्वरूपको
आगताः = प्राप्त हुए पुरुष
सर्गे = सृष्टिके आदिमें (पुनः)
न उपजायन्ते = उत्पन्न नहीं होते
च = और
प्रलये = प्रलयकालमें
अपि = भी
न व्यथन्ति = व्याकुल नहीं होते।

[प्रकृति-पुरुषके संयोगसे सर्वभूतोंकी उत्पत्तिका कथन।]

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥ ३॥

मम, योनिः, महत्, ब्रह्म, तस्मिन्, गर्भम्, दधामि, अहम्,
सम्भवः, सर्वभूतानाम्, ततः, भवति, भारत॥ ३॥

भारत = हे अर्जुन!
मम = मेरी
महत्, ब्रह्म = महत्-ब्रह्मरूप मूल प्रकृति (सम्पूर्ण भूतोंकी)
योनिः = योनि है अर्थात् गर्भाधानका स्थान है (और)
अहम् = मैं
तस्मिन् = उस योनिमें
गर्भम् = चेतन-समुदायरूप गर्भको
दधामि = स्थापन करता हूँ।
ततः = उस जड़-चेतनके संयोगसे
सर्वभूतानाम् = सब भूतोंकी
सम्भवः = उत्पत्ति
भवति = होती है।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥ ४॥

सर्वयोनिषु, कौन्तेय, मूर्तयः, सम्भवन्ति, याः,
तासाम्, ब्रह्म, महत्, योनिः, अहम्, बीजप्रदः, पिता॥ ४॥

तथा—

कौन्तेय	=	हे अर्जुन!	**तासाम्**	=	उन सबकी
सर्वयोनिषु	=	नाना प्रकारकी सब योनियोंमें	**योनिः**	=	गर्भ धारण करनेवाली माता है (और)
याः	=	जितनी	**अहम्**	=	मैं
मूर्तयः	=	मूर्तियाँ अर्थात् शरीरधारी प्राणी	**बीजप्रदः**	=	बीजको स्थापन करनेवाला
सम्भवन्ति	=	उत्पन्न होते हैं,	**पिता**	=	पिता हूँ।
महत्, ब्रह्म	=	प्रकृति (तो)			

[प्रकृतिसे उत्पन्न हुए तीनों गुणोंद्वारा जीवात्माके बाँधे जानेका कथन।]

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥ ५॥

सत्त्वम्, रजः, तमः, इति, गुणाः, प्रकृतिसम्भवाः,
निबध्नन्ति, महाबाहो, देहे, देहिनम्, अव्ययम्॥ ५॥

तथा—

महाबाहो	=	हे अर्जुन!	**गुणाः**	=	तीनों गुण
सत्त्वम्	=	सत्त्वगुण,	**अव्ययम्**	=	अविनाशी
रजः	=	रजोगुण और			
तमः	=	तमोगुण—	**देहिनम्**	=	जीवात्माको
इति	=	ये	**देहे**	=	शरीरमें
प्रकृतिसम्भवाः	=	प्रकृतिसे उत्पन्न	**निबध्नन्ति**	=	बाँधते हैं।

[सत्त्वगुणद्वारा जीवात्माके बाँधे जानेका प्रकार।]

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ॥ ६॥

तत्र, सत्त्वम्, निर्मलत्वात्, प्रकाशकम्, अनामयम्,
सुखसङ्गेन, बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन, च, अनघ॥ ६॥

अनघ = हे निष्पाप!
तत्र = उन तीनों गुणोंमें
सत्त्वम् = सत्त्वगुण (तो)
निर्मलत्वात् = निर्मल होनेके कारण
प्रकाशकम् = प्रकाश करनेवाला (और)
अनामयम् = विकाररहित है, (वह)
सुखसङ्गेन = सुखके सम्बन्धसे
च = और
ज्ञानसङ्गेन = ज्ञानके सम्बन्धसे अर्थात् उसके अभिमानसे
बध्नाति = बाँधता है।

[रजोगुणद्वारा जीवात्माके बाँधे जानेका प्रकार।]

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्॥ ७॥

रजः, रागात्मकम्, विद्धि, तृष्णासङ्गसमुद्भवम्,
तत्, निबध्नाति, कौन्तेय, कर्मसङ्गेन, देहिनम्॥ ७॥

तथा—

कौन्तेय = हे अर्जुन!
रागात्मकम् = रागरूप
रजः = रजोगुणको
तृष्णासङ्गसमुद्भवम् = कामना और आसक्तिसे उत्पन्न
विद्धि = जान
तत् = वह
देहिनम् = इस जीवात्माको
कर्मसङ्गेन = कर्मोंके और उनके फलके सम्बन्धसे
निबध्नाति = बाँधता है।

[तमोगुणद्वारा जीवात्माके बाँधे जानेका प्रकार।]

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत॥ ८॥

तमः, तु, अज्ञानजम्, विद्धि, मोहनम्, सर्वदेहिनाम्,
प्रमादालस्यनिद्राभिः, तत्, निबध्नाति, भारत॥ ८॥

भारत = हे अर्जुन!
सर्वदेहिनाम् = सब देहाभिमानियोंको
मोहनम् = मोहित करनेवाले
तमः = तमोगुणको
तु = तो

अज्ञानजम्	=	अज्ञानसे उत्पन्न	**प्रमादालस्यनिद्राभिः**	=	प्रमाद[1] आलस्य[2] और निद्राके द्वारा
विद्धि	=	जान।			
तत्	=	वह			
(देहिनम्)	=	इस जीवात्माको	**निबध्नाति**	=	बाँधता है।

[सुख, कर्म और प्रमादमें तीनों गुणोंद्वारा जीवात्माका जोड़ा जाना।]

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत॥ ९॥

सत्त्वम्, सुखे, सञ्जयति, रजः, कर्मणि, भारत,
ज्ञानम्, आवृत्य, तु, तमः, प्रमादे, सञ्जयति, उत॥ ९॥

क्योंकि—

भारत	=	हे अर्जुन!	**तमः**	=	तमोगुण
सत्त्वम्	=	सत्त्वगुण	**तु**	=	तो
सुखे	=	सुखमें	**ज्ञानम्**	=	ज्ञानको
सञ्जयति	=	लगाता है (और)	**आवृत्य**	=	ढककर
			प्रमादे	=	प्रमादमें
रजः	=	रजोगुण	**उत**	=	भी
कर्मणि	=	कर्ममें (तथा)	**सञ्जयति**	=	लगाता है।

[दूसरे गुणोंको दबाकर किसी एक गुणके बढ़नेका प्रकार।]

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा॥ १०॥

रजः, तमः, च, अभिभूय, सत्त्वम्, भवति, भारत,
रजः, सत्त्वम्, तमः, च, एव, तमः, सत्त्वम्, रजः, तथा॥ १०॥

भारत	=	हे अर्जुन!	**च**	=	और
रजः	=	रजोगुण	**तमः**	=	तमोगुणको

१-इन्द्रियाँ और अन्तःकरणकी व्यर्थ चेष्टाओंका नाम "प्रमाद" है।

२-कर्तव्यकर्ममें अप्रवृत्तिरूप निरुद्यमताका नाम "आलस्य" है।

अभिभूय	=	दबाकर	**तथा**	=	वैसे
सत्त्वम्	=	सत्त्वगुण,	**एव**	=	ही
सत्त्वम्	=	सत्त्वगुण	**सत्त्वम्**	=	सत्त्वगुण (और)
च	=	और	**रजः**	=	रजोगुणको (दबाकर)
तमः	=	तमोगुणको (दबाकर)	**तमः**	=	तमोगुण
रजः	=	रजोगुण	**भवति**	=	होता है अर्थात् बढ़ता है।

[सत्त्वगुणकी वृद्धिके लक्षण।]

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत॥ ११॥

सर्वद्वारेषु, देहे, अस्मिन्, प्रकाशः, उपजायते,
ज्ञानम्, यदा, तदा, विद्यात्, विवृद्धम्, सत्त्वम्, इति, उत॥ ११॥

इसलिये—

यदा	=	जिस समय	**ज्ञानम्**	=	विवेकशक्ति
अस्मिन्	=	इस	**उपजायते**	=	उत्पन्न होती है,
देहे	=	देहमें (तथा)	**तदा**	=	उस समय
सर्वद्वारेषु	=	अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें	**इति**	=	ऐसा
			विद्यात्	=	जानना चाहिये
			उत	=	कि
प्रकाशः	=	चेतनता	**सत्त्वम्**	=	सत्त्वगुण
(च)	=	और	**विवृद्धम्**	=	बढ़ा है।

[रजोगुणकी वृद्धिके लक्षण।]

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥ १२॥

लोभः, प्रवृत्तिः, आरम्भः, कर्मणाम्, अशमः, स्पृहा,
रजसि, एतानि, जायन्ते, विवृद्धे, भरतर्षभ॥ १२॥

और—

भरतर्षभ	=	हे अर्जुन!	**आरम्भः**	=	आरम्भ,
रजसि	=	रजोगुणके	**अशमः**	=	अशान्ति (और)
विवृद्धे	=	बढ़नेपर	**स्पृहा**	=	विषय-भोगोंकी लालसा—
लोभः	=	लोभ,			
प्रवृत्तिः	=	प्रवृत्ति, (स्वार्थबुद्धिसे)			
कर्मणाम्	=	कर्मोंका (सकाम-भावसे)	**एतानि**	=	ये सब
			जायन्ते	=	उत्पन्न होते हैं।

[तमोगुणकी वृद्धिके लक्षण।]

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन॥ १३॥

अप्रकाशः, अप्रवृत्तिः, च, प्रमादः, मोहः, एव, च,
तमसि, एतानि, जायन्ते, विवृद्धे, कुरुनन्दन॥ १३॥

तथा—

कुरुनन्दन	=	हे अर्जुन!	**प्रमादः**	=	प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा
तमसि	=	तमोगुणके	**च**	=	और
विवृद्धे	=	बढ़नेपर (अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें)	**मोहः**	=	निद्रादि अन्तः-करणकी मोहिनी वृत्तियाँ—
अप्रकाशः	=	अप्रकाश,			
अप्रवृत्तिः	=	कर्तव्य-कर्मोंमें अप्रवृत्ति	**एतानि**	=	ये सब
			एव	=	ही
च	=	और	**जायन्ते**	=	उत्पन्न होते हैं।

[सत्त्वगुणकी वृद्धिके समयमें मरनेवालेकी गतिका निरूपण।]

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते॥ १४॥

यदा, सत्त्वे, प्रवृद्धे, तु, प्रलयम्, याति, देहभृत्,
तदा, उत्तमविदाम्, लोकान्, अमलान्, प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

और हे अर्जुन!—

यदा = जब
देहभृत् = यह मनुष्य
सत्त्वे = सत्त्वगुणकी
प्रवृद्धे = वृद्धिमें
प्रलयम् = मृत्युको
याति = प्राप्त होता है
तदा = तब
तु = तो
उत्तमविदाम् = उत्तम कर्म करनेवालोंके
अमलान् = निर्मल दिव्य स्वर्गादि
लोकान् = लोकोंको
प्रतिपद्यते = प्राप्त होता है।

[रजोगुण और तमोगुणकी वृद्धिके समय मरनेवालेकी गतिका निरूपण।]

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

रजसि, प्रलयम्, गत्वा, कर्मसङ्गिषु, जायते,
तथा, प्रलीनः, तमसि, मूढयोनिषु, जायते ॥ १५ ॥

और—

रजसि = रजोगुणके बढ़नेपर*
प्रलयम् = मृत्युको
गत्वा = प्राप्त होकर
कर्मसङ्गिषु = कर्मोंकी आसक्तिवाले मनुष्योंमें
जायते = उत्पन्न होता है;
तथा = तथा
तमसि = तमोगुणके बढ़नेपर
प्रलीनः = मरा हुआ मनुष्य (कीट, पशु आदि)
मूढयोनिषु = मूढयोनियोंमें
जायते = उत्पन्न होता है।

[सात्त्विक, राजस और तामस कर्मोंका फल।]

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥

* अर्थात् जिस कालमें रजोगुण बढ़ता है, उस कालमें।

कर्मणः, सुकृतस्य, आहुः, सात्त्विकम्, निर्मलम्, फलम्,
रजसः, तु, फलम्, दुःखम्, अज्ञानम्, तमसः, फलम्॥ १६ ॥

क्योंकि—

सुकृतस्य	=	श्रेष्ठ	**आहुः**	=	कहा है;
कर्मणः	=	कर्मका (तो)	**तु**	=	किन्तु
			रजसः	=	राजस कर्मका
सात्त्विकम्	=	सात्त्विक अर्थात् सुख, ज्ञान और वैराग्यादि	**फलम्**	=	फल
			दुःखम्	=	दुःख (एवम्)
			तमसः	=	तामस कर्मका
निर्मलम्	=	निर्मल	**फलम्**	=	फल
फलम्	=	फल	**अज्ञानम्**	=	अज्ञान (कहा है)।

[सत्त्वगुणसे ज्ञान, रजोगुणसे लोभ और तमोगुणसे प्रमाद, मोह और अज्ञानकी उत्पत्ति।]

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥ १७ ॥

सत्त्वात्, सञ्जायते, ज्ञानम्, रजसः, लोभः, एव, च,
प्रमादमोहौ, तमसः, भवतः, अज्ञानम्, एव, च॥ १७ ॥

तथा—

सत्त्वात्	=	सत्त्वगुणसे	**च**	=	तथा
ज्ञानम्	=	ज्ञान	**तमसः**	=	तमोगुणसे
सञ्जायते	=	उत्पन्न होता है	**प्रमादमोहौ**	=	प्रमाद[1] और मोह[2]
च	=	और	**भवतः**	=	उत्पन्न होते हैं (और)
रजसः	=	रजोगुणसे			
एव	=	निःसंदेह	**अज्ञानम्**	=	अज्ञान
लोभः	=	लोभ	**एव**	=	भी (होता है)।

१,२-इसी अध्यायके श्लोक १३ में देखना चाहिये।

[सात्त्विक, राजस और तामस पुरुषोंकी गतिका वर्णन।]

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥ १८॥

ऊर्ध्वम्, गच्छन्ति, सत्त्वस्थाः, मध्ये, तिष्ठन्ति, राजसाः,
जघन्यगुणवृत्तिस्थाः, अधः, गच्छन्ति, तामसाः॥ १८॥

इसलिये—

सत्त्वस्थाः = सत्त्वगुणमें स्थित पुरुष
ऊर्ध्वम् = स्वर्गादि उच्च लोकोंको
गच्छन्ति = जाते हैं; (रजोगुणमें स्थित)
राजसाः = राजस पुरुष
मध्ये = मध्यमें अर्थात् मनुष्यलोकमें (ही)
तिष्ठन्ति = रहते हैं (और)
जघन्यगुण-वृत्तिस्थाः = तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादिमें स्थित
तामसाः = तामस पुरुष
अधः = अधोगतिको अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियोंको तथा नरकोंको
गच्छन्ति = प्राप्त होते हैं।

[आत्माको अकर्ता और गुणातीत जाननेसे भगवत्प्राप्ति।]

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥ १९॥

न, अन्यम्, गुणेभ्यः, कर्तारम्, यदा, द्रष्टा, अनुपश्यति,
गुणेभ्यः, च, परम्, वेत्ति, मद्भावम्, सः, अधिगच्छति॥ १९॥

और हे अर्जुन!—

यदा = जिस समय
द्रष्टा = द्रष्टा*
गुणेभ्यः = तीनों गुणोंके अतिरिक्त
अन्यम् = अन्य किसीको
कर्तारम् = कर्ता
न = नहीं
अनुपश्यति = देखता

* अर्थात् समष्टि चेतनमें एकीभावसे स्थित हुआ साक्षी पुरुष।

च	=	और	**वेत्ति**	=	तत्त्वसे जानता है, (उस समय)
गुणेभ्यः	=	तीनों गुणोंसे	**सः**	=	वह
परम्	=	अत्यन्त परे सच्चिदानन्द-घनस्वरूप मुझ परमात्माको	**मद्भावम्**	=	मेरे स्वरूपको
			अधिगच्छति	=	प्राप्त होता है।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥

गुणान्, एतान्, अतीत्य, त्रीन्, देही, देहसमुद्भवान्,
जन्ममृत्युजरादुःखैः, विमुक्तः, अमृतम्, अश्नुते ॥ २० ॥

तथा यह—

देही	=	पुरुष	**जन्ममृत्युजरा-दुःखैः**	=	जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखोंसे
देहसमुद्भवान्	=	शरीरकी* उत्पत्तिके कारणरूप	**विमुक्तः**	=	मुक्त हुआ
एतान्	=	इन	**अमृतम्**	=	परमानन्दको
त्रीन्	=	तीनों	**अश्नुते**	=	प्राप्त होता है।
गुणान्	=	गुणोंको			
अतीत्य	=	उल्लंघन करके			

[गुणातीत पुरुषके विषयमें अर्जुनके तीन प्रश्न।]

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥ २१ ॥

कैः, लिङ्गैः, त्रीन्, गुणान्, एतान्, अतीतः, भवति, प्रभो,
किमाचारः, कथम्, च, एतान्, त्रीन्, गुणान्, अतिवर्तते ॥ २१ ॥

* बुद्धि, अहंकार और मन तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच भूत, पाँच इन्द्रियोंके विषय—इस प्रकार इन २३ तत्त्वोंका पिण्डरूप यह स्थूल शरीर प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले गुणोंका ही कार्य है, इसलिये इन तीनों गुणोंको इसकी उत्पत्तिका कारण कहा है।

इस प्रकार भगवान्‌के रहस्ययुक्त वचनोंको सुनकर अर्जुनने पूछा कि हे पुरुषोत्तम!—

एतान्	= इन	**किमाचारः**	= किस प्रकारके आचरणोंवाला
त्रीन्	= तीनों	**(भवति)**	= होता है; (तथा)
गुणान्	= गुणोंसे	**प्रभो**	= हे प्रभो! (मनुष्य)
अतीतः	= अतीत पुरुष	**कथम्**	= किस उपायसे
कैः	= किन-किन	**एतान्**	= इन
लिङ्गैः	= लक्षणोंसे (युक्त)	**त्रीन्**	= तीनों
भवति	= होता है	**गुणान्**	= गुणोंसे
च	= और	**अतिवर्तते**	= अतीत होता है।

[पहले और दूसरे प्रश्नके उत्तरमें गुणातीत पुरुषके लक्षणोंका और आचरणोंका वर्णन।]

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति॥ २२ ॥

प्रकाशम्, च, प्रवृत्तिम्, च, मोहम्, एव, च, पाण्डव,
न, द्वेष्टि, सम्प्रवृत्तानि, न, निवृत्तानि, काङ्क्षति॥ २२ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णभगवान् बोले—

पाण्डव	= हे अर्जुन! (जो पुरुष)	**प्रवृत्तिम्**	= रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको
प्रकाशम्	= सत्त्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको[1]	**च**	= तथा
च	= और	**मोहम्**	= तमोगुणके कार्यरूप मोहको[2]

१-अन्तःकरण और इन्द्रियादिकोंमें आलस्यका अभाव होकर जो एक प्रकारकी चेतना होती है, उसका नाम ''प्रकाश'' है।

२-निद्रा और आलस्य आदिकी बहुलतासे अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें चेतनशक्तिके लय होनेको यहाँ ''मोह'' नामसे समझना चाहिये।

एव	=	भी
न	=	न (तो)
सम्प्रवृत्तानि	=	प्रवृत्त होनेपर (उनसे)
द्वेष्टि	=	द्वेष करता है।
च	=	और
न	=	न
निवृत्तानि	=	निवृत्त होनेपर (उनकी)
काङ्क्षति	=	आकांक्षा करता है[1]—

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥ २३॥

उदासीनवत्, आसीनः, गुणैः, यः, न, विचाल्यते,
गुणाः, वर्तन्ते, इति, एव, यः, अवतिष्ठति, न, इङ्गते॥ २३॥

तथा—

यः	=	जो
उदासीनवत्	=	साक्षीके सदृश
आसीनः	=	स्थित हुआ
गुणैः	=	गुणोंके द्वारा
न, विचाल्यते	=	विचलित नहीं किया जा सकता (और)
गुणाः, एव	=	गुण ही (गुणोंमें)
वर्तन्ते	=	बरतते हैं[2]—
इति	=	ऐसा (समझता हुआ)
यः	=	जो (सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे)
अवतिष्ठति	=	स्थित रहता है (एवं)
न, इङ्गते	=	उस स्थितिसे कभी विचलित नहीं होता—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥ २४॥

१-जो पुरुष एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही नित्य एकीभावसे स्थित हुआ इस त्रिगुणमयी मायाके प्रपंचरूप संसारसे सर्वथा अतीत हो गया है, उस गुणातीत पुरुषके अभिमानरहित अन्तःकरणमें तीनों गुणोंके कार्यरूप प्रकाश, प्रवृत्ति और मोहादि वृत्तियोंके प्रकट होने और न होनेपर किसी कालमें भी इच्छा, द्वेष आदि विकार नहीं होते, यही उसके गुणोंसे अतीत होनेके प्रधान लक्षण हैं।

२-त्रिगुणमयी मायासे उत्पन्न हुई अन्तःकरणके सहित इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंमें विचरना ही गुणोंका ''गुणोंमें बरतना'' है।

समदुःखसुखः, स्वस्थः, समलोष्टाश्मकाञ्चनः,
तुल्यप्रियाप्रियः, धीरः, तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥

और—

स्वस्थः = जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित,
समदुःखसुखः = दुःख-सुखको समान समझनेवाला,
समलोष्टाश्मकाञ्चनः = मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला,
धीरः = ज्ञानी,
तुल्यप्रियाप्रियः = प्रिय तथा अप्रियको एक-सा माननेवाला (और)
तुल्यनिन्दात्म-संस्तुतिः = अपनी निन्दास्तुतिमें भी समान भाववाला है—

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

मानापमानयोः, तुल्यः, तुल्यः, मित्रारिपक्षयोः,
सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीतः, सः, उच्यते ॥ २५ ॥

तथा—

मानापमानयोः = जो मान और अपमानमें
तुल्यः = सम है,
मित्रारिपक्षयोः = मित्र और वैरीके पक्षमें (भी)
तुल्यः = सम है (एवं)
सर्वारम्भपरित्यागी = सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित है,
सः = वह पुरुष
गुणातीतः = गुणातीत
उच्यते = कहा जाता है।

[तीसरे प्रश्नके उत्तरमें गुणोंसे अतीत होनेका उपाय और उसके फलका भगवान्‌द्वारा वर्णन।]

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥

माम्, च, यः, अव्यभिचारेण, भक्तियोगेन, सेवते,
सः, गुणान्, समतीत्य, एतान्, ब्रह्मभूयाय, कल्पते ॥ २६ ॥

च	=	और	**एतान्**	=	इन
यः	=	जो पुरुष	**गुणान्**	=	तीनों गुणोंको
अव्यभिचारेण	=	अव्यभिचारी	**समतीत्य**	=	भलीभाँति लाँघकर
भक्तियोगेन	=	भक्तियोगके द्वारा*	**ब्रह्मभूयाय**	=	सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होनेके लिये
माम्	=	मुझको (निरन्तर)			
सेवते	=	भजता है,			
सः	=	वह (भी)	**कल्पते**	=	योग्य बन जाता है।

[भगवत्स्वरूपकी महिमा।]

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥ २७॥

ब्रह्मणः, हि, प्रतिष्ठा, अहम्, अमृतस्य, अव्ययस्य, च, शाश्वतस्य, च, धर्मस्य, सुखस्य, ऐकान्तिकस्य, च॥ २७॥

हे अर्जुन!—

हि	=	क्योंकि (उस)	**धर्मस्य**	=	धर्मका
अव्ययस्य	=	अविनाशी	**च**	=	और
ब्रह्मणः	=	परब्रह्मका	**ऐकान्तिकस्य**	=	अखण्ड एकरस
च	=	और			
अमृतस्य	=	अमृतका	**सुखस्य**	=	आनन्दका
च	=	तथा	**प्रतिष्ठा**	=	आश्रय
शाश्वतस्य	=	नित्य	**अहम्**	=	मैं (हूँ)।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

हरिः ॐ तत्सत्　　हरिः ॐ तत्सत्　　हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

* केवल एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर वासुदेवभगवान्‌को ही अपना स्वामी मानता हुआ स्वार्थ और अभिमानको त्यागकर श्रद्धा और भावके सहित परम प्रेमसे निरन्तर चिन्तन करनेको ''अव्यभिचारी भक्तियोग'' कहते हैं।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

__प्रधान-विषय__—१ से ६ तक संसारवृक्षका कथन और भगवत्प्राप्तिका उपाय, (७—११) जीवात्माका विषय, (१२—१५) प्रभावसहित परमेश्वरके स्वरूपका विषय, (१६—२०) क्षर, अक्षर, पुरुषोत्तमका विषय।

[अश्वत्थ वृक्षके रूपकसे संसारका वर्णन और उसको जाननेवालेकी महिमा।]

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ १॥

ऊर्ध्वमूलम्, अधःशाखम्, अश्वत्थम्, प्राहुः, अव्ययम्,
छन्दांसि, यस्य, पर्णानि, यः, तम्, वेद, सः, वेदवित्॥ १॥

उसके पश्चात् श्रीभगवान् फिर बोले, हे अर्जुन!—

ऊर्ध्वमूलम् = { आदि पुरुष परमेश्वररूप मूलवाले[1] (और)	**अधःशाखम्** = { ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले[2] (जिस)

१. आदिपुरुष नारायण वासुदेवभगवान् ही नित्य और अनन्त तथा सबके आधार होनेके कारण और सबसे ऊपर नित्यधाममें सगुणरूपसे वास करनेके कारण ऊर्ध्वनामसे कहे गये हैं और वे मायापति सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही इस संसाररूप वृक्षके कारण हैं, इसलिये इस संसारवृक्षको ''ऊर्ध्वमूलवाला'' कहते हैं।

२. उन आदिपुरुष परमेश्वरसे उत्पत्तिवाला होनेके कारण तथा नित्यधामसे नीचे ब्रह्मलोकमें वास करनेके कारण हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माको परमेश्वरकी अपेक्षा अधः कहा है और वही इस संसारका विस्तार करनेवाला होनेसे इसकी मुख्य शाखा है, इसलिये इस संसारवृक्षको ''अधःशाखावाला'' कहते हैं।

अश्वत्थम्	=	संसाररूप पीपलके वृक्षको	**तम्**	=	उस संसाररूप वृक्षको
अव्ययम्	=	अविनाशी[1]	**यः**	=	जो पुरुष (मूलसहित)
प्राहुः	=	कहते हैं; (तथा)			
छन्दांसि	=	वेद[2]	**वेद**	=	तत्त्वसे जानता है,
यस्य	=	जिसके	**सः**	=	वह
पर्णानि	=	पत्ते (कहे गये हैं—)	**वेदवित्**	=	वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है[3]।

[संसारवृक्षका विस्तार और असंग-शस्त्रसे उसका छेदन करनेके लिये कथन।]

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥ २॥

अधः, च, ऊर्ध्वम्, प्रसृताः, तस्य, शाखाः, गुणप्रवृद्धाः, विषयप्रवालाः, अधः, च, मूलानि, अनुसन्ततानि, कर्मानुबन्धीनि, मनुष्यलोके॥ २॥

और हे अर्जुन!—

तस्य	=	उस संसारवृक्षकी		जलके द्वारा बढ़ी हुई (एवं)
गुणप्रवृद्धाः	=	तीनों गुणोंरूप		

१-इस वृक्षका मूल कारण परमात्मा अविनाशी है तथा अनादिकालसे इसकी परम्परा चली आती है, इसलिये इस संसारवृक्षको ''अविनाशी'' कहते हैं।

२-इस वृक्षकी शाखारूप ब्रह्मासे प्रकट होनेवाले और यज्ञादिक कर्मोंके द्वारा इस संसारवृक्षकी रक्षा और वृद्धिके करनेवाले एवं शोभाको बढ़ानेवाले होनेसे ''वेद'' पत्ते कहे गये हैं।

३-भगवान्‌की योगमायासे उत्पन्न हुआ संसार क्षणभंगुर, नाशवान् और दुःखरूप है, इसके चिन्तनको त्यागकर केवल परमेश्वरका ही नित्य-निरन्तर अनन्य प्रेमसे चिन्तन करना वेदके ''तात्पर्यको जानना'' है।

विषयप्रवालाः	= विषय[1] भोग-रूप कोंपलोंवाली		**कर्मानुबन्धीनि**	= कर्मोंके अनुसार बाँधनेवाली
शाखाः	= देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएँ[2]		**मूलानि**	= अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें
अधः	= नीचे		**(अपि)**	= भी
च	= और		**अधः**	= नीचे
ऊर्ध्वम्	= ऊपर सर्वत्र		**च**	= और
प्रसृताः	= फैली हुई हैं (तथा)		**(ऊर्ध्वम्)**	= ऊपर
मनुष्यलोके	= मनुष्यलोकमें[3]		**अनुसन्ततानि**	= सभी लोकोंमें व्याप्त हो रही हैं।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥ ३ ॥

न, रूपम्, अस्य, इह, तथा, उपलभ्यते, न, अन्तः, न, च, आदिः, न, च, सम्प्रतिष्ठा, अश्वत्थम्, एनम्, सुविरूढमूलम्, असङ्गशस्त्रेण, दृढेन, छित्त्वा॥ ३ ॥

परंतु—

अस्य	= इस संसारवृक्षका	**तथा**	= वैसा
रूपम्	= स्वरूप (जैसा कहा है),	**इह**	= यहाँ (विचारकालमें)
		न	= नहीं

१-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँचों स्थूल देह और इन्द्रियोंकी अपेक्षा सूक्ष्म होनेके कारण उन शाखाओंकी ''कोंपलोंके रूपमें'' कहे गये हैं।

२-मुख्य शाखारूप ब्रह्मासे सम्पूर्ण लोकोंके सहित देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनियोंकी उत्पत्ति और विस्तार हुआ है, इसलिये उनका यहाँ ''शाखाओंके रूपमें'' वर्णन किया है।

३-अहंता, ममता और वासनारूप मूलोंको केवल मनुष्ययोनिमें कर्मोंके अनुसार बाँधनेवाली कहनेका कारण यह है कि अन्य सब योनियोंमें तो केवल पूर्वकृत कर्मोंके फलको भोगनेका ही अधिकार है और मनुष्ययोनिमें नवीन कर्मोंके करनेका भी अधिकार है।

उपलभ्यते = पाया जाता;[१]
(यतः) = क्योंकि
न = न (तो इसका)
आदिः = आदि है[२]
च = और
न = न
अन्तः = अन्त है[३]
च = तथा
न = न (इसकी)
सम्प्रतिष्ठा = अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है[४]
(अतः) = इसलिये
एनम् = इस
सुविरूढमूलम् = अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले
अश्वत्थम् = संसाररूप पीपलके वृक्षको
दृढेन = दृढ़
असङ्गशस्त्रेण = वैराग्यरूप[५] शस्त्रद्वारा
छित्त्वा = काटकर[६]—

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥ ४॥

१–इस संसारका जैसा स्वरूप शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है और जैसा देखा-सुना जाता है, वैसा तत्त्वज्ञान होनेके पश्चात् नहीं पाया जाता, जिस प्रकार आँख खुलनेके पश्चात् स्वप्नका संसार नहीं पाया जाता।

२–इसका ''आदि'' नहीं है, यह कहनेका प्रयोजन यह है कि इसकी परम्परा कबसे चली आती है, इसका कोई पता नहीं है।

३–इसका ''अन्त'' नहीं है, यह कहनेका प्रयोजन यह है कि इसकी परम्परा कबतक चलती रहेगी, इसका कोई पता नहीं है।

४–इसकी ''अच्छी प्रकार स्थिति भी नहीं'' है, यह कहनेका यह प्रयोजन है कि वास्तवमें यह क्षणभंगुर और नाशवान् है।

५–ब्रह्मलोकतकके भोग क्षणिक और नाशवान् हैं, ऐसा समझकर इस संसारके समस्त विषय-भोगोंमें सत्ता, सुख, प्रीति और रमणीयताका न भासना ही ''दृढ़ वैराग्यरूप'' शस्त्र है।

६–स्थावर-जंगमरूप यावन्मात्र संसारके चिन्तनका तथा अनादिकालसे अज्ञानके द्वारा दृढ़ हुई अहंता, ममता और वासनारूप मूलोंका त्याग करना ही संसारवृक्षका अवान्तर मूलोंके सहित ''काटना'' है।

ततः, पदम्, तत्, परिमार्गितव्यम्, यस्मिन्, गताः, न, निवर्तन्ति, भूयः, तम्, एव्, च, आद्यम्, पुरुषम्, प्रपद्ये, यतः, प्रवृत्तिः, प्रसृता, पुराणी ॥ ४ ॥

ततः	= उसके पश्चात्	**पुराणी**	= पुरातन
तत्	= उस	**प्रवृत्तिः**	= संसारवृक्षकी प्रवृत्ति
पदम्	= परमपदरूप परमेश्वरको	**प्रसृता**	= विस्तारको प्राप्त हुई है,
परिमार्गितव्यम्	= भलीभाँति खोजना चाहिये,	**तम्, एव**	= उसी
यस्मिन्	= जिसमें	**आद्यम्, पुरुषम्**	= आदि-पुरुष नारायणके
गताः	= गये हुए पुरुष		
भूयः	= फिर	**प्रपद्ये**	= मैं शरण हूँ—(इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उस परमेश्वरका मनन और निदिध्यासन करना चाहिये।)
न, निवर्तन्ति	= लौटकर संसारमें नहीं आते		
च	= और		
यतः	= जिस परमेश्वरसे (इस)		

[परमपदरूप परमेश्वरको प्राप्त पुरुषके लक्षण।]

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

निर्मानमोहाः, जितसङ्गदोषाः, अध्यात्मनित्याः, विनिवृत्तकामाः, द्वन्द्वैः, विमुक्ताः, सुखदुःखसञ्ज्ञैः, गच्छन्ति, अमूढाः, पदम्, अव्ययम्, तत् ॥ ५ ॥

निर्मानमोहाः	= जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है,	**जितसङ्गदोषाः**	= जिन्होंने आसक्तिरूप दोषको जीत लिया है,

अध्यात्मनित्याः	= जिनकी परमात्माके स्वरूपमें नित्य स्थिति है (और)	**द्वन्द्वैः**	= द्वन्द्वोंसे
		विमुक्ताः	= विमुक्त
		अमूढाः	= ज्ञानीजन
विनिवृत्तकामाः	= जिनकी कामनाएँ पूर्णरूपसे नष्ट हो गयी हैं—(वे)	**तत्**	= उस
		अव्ययम्	= अविनाशी
		पदम्	= परमपदको
सुखदुःखसञ्ज्ञैः	= सुख-दुःखनामक	**गच्छन्ति**	= प्राप्त होते हैं।

[परमपदको परमप्रकाशमय और अपुनरावृत्तिशील बतलाना।]

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ ६॥

न, तत्, भासयते, सूर्यः, न, शशाङ्कः, न, पावकः,
यत्, गत्वा, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम॥ ६॥

और—

यत्	= जिस परमपदको	**भासयते**	= प्रकाशित कर सकता है
गत्वा	= प्राप्त होकर (मनुष्य)	**न**	= न
न, निवर्तन्ते	= लौटकर संसारमें नहीं आते,	**शशाङ्कः**	= चन्द्रमा (और)
		न	= न
तत्	= उस (स्वयं प्रकाश परमपदको)	**पावकः**	= अग्नि ही;
		तत्	= वही
न	= न	**मम**	= मेरा
सूर्यः	= सूर्य	**परमम्, धाम**	= परमधाम है*।

[जीवात्माके स्वरूपका कथन।]

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥ ७॥

* परमधामका अर्थ गीता अध्याय ८ श्लोक २१ में देखना चाहिये।

मम, एव, अंशः, जीवलोके, जीवभूतः, सनातनः,
मनःषष्ठानि, इन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि, कर्षति ॥ ७ ॥

और हे अर्जुन!—

जीवलोके	=	इस देहमें	**अंशः**	=	अंश है*(और वही)
सनातनः	=	यह सनातन	**प्रकृतिस्थानि**	=	इन प्रकृतिमें स्थित
जीवभूतः	=	जीवात्मा	**मनःषष्ठानि**	=	मन और पाँचों
मम	=	मेरा	**इन्द्रियाणि**	=	इन्द्रियोंको
एव	=	ही	**कर्षति**	=	आकर्षण करता है।

[वायुके दृष्टान्तसे जीवात्माके गमनका विषय]

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ ८ ॥

शरीरम्, यत्, अवाप्नोति, यत्, च, अपि, उत्क्रामति, ईश्वरः,
गृहीत्वा, एतानि, संयाति, वायुः, गन्धान्, इव, आशयात् ॥ ८ ॥

कैसे कि—

वायुः	=	वायु	**(तस्मात्)**	=	उससे
आशयात्	=	गन्धके स्थानसे	**एतानि**	=	इन मनसहित इन्द्रियोंको
गन्धान्	=	गन्धको			
इव	=	जैसे (ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही)	**गृहीत्वा**	=	ग्रहण करके
			च	=	फिर
ईश्वरः	=	देहादिका स्वामी जीवात्मा	**यत्**	=	जिस
			शरीरम्	=	शरीरको
अपि	=	भी	**अवाप्नोति**	=	प्राप्त होता है,
यत्	=	जिस (शरीरका)	**(तस्मिन्)**	=	उसमें
उत्क्रामति	=	त्याग करता है,	**संयाति**	=	जाता है।

* जैसे विभागरहित स्थित हुआ भी महाकाश घटोंमें पृथक्-पृथक्की भाँति प्रतीत होता है, वैसे ही सब भूतोंमें एकीरूपसे स्थित हुआ भी परमात्मा पृथक्-पृथक्की भाँति प्रतीत होता है, इसीसे देहमें स्थित जीवात्माको भगवान्ने अपना सनातन ''अंश'' कहा है।

[मन इन्द्रियोंद्वारा जीवात्माके विषय-सेवनका कथन।]

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते॥ ९॥

श्रोत्रम्, चक्षुः, स्पर्शनम्, च, रसनम्, घ्राणम्, एव, च,
अधिष्ठाय, मनः, च, अयम्, विषयान्, उपसेवते॥ ९॥

और उस शरीरमें स्थित हुआ—

अयम्	= यह जीवात्मा	**च**	= और
श्रोत्रम्	= श्रोत्र,	**मनः**	= मनको
चक्षुः	= चक्षु	**अधिष्ठाय**	= { आश्रय करके अर्थात् इन सबके सहारेसे
च	= और		
स्पर्शनम्	= त्वचाको		
च	= तथा	**एव**	= ही
रसनम्	= रसना,	**विषयान्**	= विषयोंका
घ्राणम्	= घ्राण	**उपसेवते**	= सेवन करता है।

[सर्व-अवस्थामें स्थित आत्माको मूढ़ नहीं जानते और ज्ञानी जानते हैं— इस विषयका कथन।]

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥ १०॥

उत्क्रामन्तम्, स्थितम्, वा, अपि, भुञ्जानम्, वा, गुणान्वितम्,
विमूढाः, न, अनुपश्यन्ति, पश्यन्ति, ज्ञानचक्षुषः॥ १०॥

परंतु—

उत्क्रामन्तम्	= { शरीरको छोड़कर जाते हुएको	**भुञ्जानम्**	= { विषयोंको भोगते हुएको (इस प्रकार)
वा	= अथवा	**गुणान्वितम्**	= { तीनों गुणोंसे युक्त हुएको
स्थितम्	= { शरीरमें स्थित हुएको	**अपि**	= भी
		विमूढाः	= अज्ञानीजन
वा	= अथवा	**न, अनुपश्यन्ति**	= नहीं जानते, (केवल)

ज्ञानचक्षुषः	=	ज्ञानरूप नेत्रोंवाले (विवेकशील ज्ञानी ही	**पश्यन्ति**	=	तत्त्वसे जानते हैं।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः॥ ११॥

यतन्तः, योगिनः, च, एनम्, पश्यन्ति, आत्मनि, अवस्थितम्,
यतन्तः, अपि, अकृतात्मानः, न, एनम्, पश्यन्ति, अचेतसः॥ ११॥

क्योंकि—

यतन्तः	=	यत्न करनेवाले			करणको शुद्ध नहीं किया है, (ऐसे)
योगिनः	=	योगीजन भी			
आत्मनि	=	अपने हृदयमें			
अवस्थितम्	=	स्थित	**अचेतसः**	=	अज्ञानीजन (तो)
एनम्	=	इस आत्माको	**यतन्तः**	=	यत्न करते रहनेपर
पश्यन्ति	=	तत्त्वसे जानते हैं;	**अपि**	=	भी
च	=	किंतु	**एनम्**	=	इस आत्माको
अकृतात्मानः	=	जिन्होंने अपने अन्तः-	**न, पश्यन्ति**	=	नहीं जानते।

[परमेश्वरके तेजकी महिमा।]

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥ १२॥

यत्, आदित्यगतम्, तेजः, जगत्, भासयते, अखिलम्,
यत्, चन्द्रमसि, यत्, च, अग्नौ, तत्, तेजः, विद्धि, मामकम्॥ १२॥

और हे अर्जुन!—

आदित्यगतम्	=	सूर्यमें स्थित	**च**	=	तथा
यत्	=	जो	**यत्**	=	जो तेज
तेजः	=	तेज	**चन्द्रमसि**	=	चन्द्रमामें है (और)
अखिलम्	=	सम्पूर्ण			
जगत्	=	जगत्को	**यत्**	=	जो
भासयते	=	प्रकाशित करता है	**अग्नौ**	=	अग्निमें है—

तत्	=	उसको (तू)	**तेजः**	=	तेज
मामकम्	=	मेरा (ही)	**विद्धि**	=	जान।

[पृथ्वीरूपसे सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाले और चन्द्रमारूपसे उसका पोषण करनेवाले परमेश्वरके प्रभावका कथन।]

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः॥ १३॥

गाम्, आविश्य, च, भूतानि, धारयामि, अहम्, ओजसा,
पुष्णामि, च, ओषधीः, सर्वाः, सोमः, भूत्वा, रसात्मकः॥ १३॥

च	=	और	**रसात्मकः**	=	रसस्वरूप अर्थात् अमृतमय
अहम्	=	मैं (ही)			
गाम्	=	पृथ्वीमें	**सोमः**	=	चन्द्रमा
आविश्य	=	प्रवेश करके	**भूत्वा**	=	होकर
ओजसा	=	अपनी शक्तिसे	**सर्वाः**	=	सम्पूर्ण
भूतानि	=	सब भूतोंको	**ओषधीः**	=	ओषधियोंको अर्थात् वनस्पतियोंको
धारयामि	=	धारण करता हूँ			
च	=	और	**पुष्णामि**	=	पुष्ट करता हूँ।

[भगवान्का अपनेको वैश्वानररूपसे सब प्रकारके अन्नको पचानेवाला बतलाना।]

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥ १४॥

अहम्, वैश्वानरः, भूत्वा, प्राणिनाम्, देहम्, आश्रितः,
प्राणापानसमायुक्तः, पचामि, अन्नम्, चतुर्विधम्॥ १४॥

तथा—

अहम्	=	मैं (ही)	**प्राणापानसमायुक्तः**	=	प्राण और अपानसे संयुक्त
प्राणिनाम्	=	सब प्राणियोंके			
देहम्	=	शरीरमें			
आश्रितः	=	स्थित रहनेवाला	**वैश्वानरः**	=	वैश्वानर अग्निरूप

भूत्वा	=	होकर	**अन्नम्**	=	अन्नको
चतुर्विधम्	=	चार[1] प्रकारके	**पचामि**	=	पचाता हूँ।

[प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका कथन।]

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥ १५॥

सर्वस्य, च, अहम्, हृदि, सन्निविष्टः, मत्तः, स्मृतिः, ज्ञानम्, अपोहनम्, च, वेदैः, च, सर्वैः, अहम्, एव, वेद्यः, वेदान्तकृत्, वेदवित्, एव, च, अहम्॥ १५॥

अहम्	=	मैं (ही)	**च**	=	और
सर्वस्य	=	सब प्राणियोंके	**अपोहनम्**	=	अपोहन[2]
हृदि	=	हृदयमें	**(भवति)**	=	होता है
सन्निविष्टः	=	अन्तर्यामीरूपसे स्थित हूँ,	**च**	=	और
			सर्वैः	=	सब
			वेदैः	=	वेदोंद्वारा
च	=	तथा	**अहम्**	=	मैं
मत्तः	=	मुझसे (ही)	**एव**	=	ही
स्मृतिः	=	स्मृति,	**वेद्यः**	=	जाननेके योग्य हूँ[3] (तथा)
ज्ञानम्	=	ज्ञान			

१-भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—ऐसे चार प्रकारके अन्न होते हैं, उनमें जो चबाकर खाया जाता है वह भक्ष्य है—जैसे रोटी आदि, जो निगला जाता है वह भोज्य है—जैसे दूध आदि, जो चाटा जाता है वह लेह्य है—जैसे चटनी आदि और जो चूसा जाता है वह चोष्य है—जैसे ऊँख आदि।

२-विचारके द्वारा बुद्धिमें रहनेवाले संशय, विपर्यय आदि दोषोंको हटानेका नाम ''अपोहन'' है।

३-सर्व वेदोंका तात्पर्य परमेश्वरको जनानेका है, इसलिये सब वेदोंद्वारा ''जाननेके योग्य'' एक परमेश्वर ही है।

वेदान्तकृत्	=	वेदान्तका कर्ता			(भी)
च	=	और	**अहम्**	=	मैं
वेदवित्	=	वेदोंको जाननेवाला	**एव**	=	ही (हूँ)।

[समस्त भूतोंको क्षर और कूटस्थ आत्माको अक्षर पुरुष बतलाना।]

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥ १६॥

द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च, अक्षरः, एव, च,
क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते॥ १६॥

तथा हे अर्जुन!—

लोके	=	इस संसारमें	**सर्वाणि**	=	सम्पूर्ण
क्षरः	=	नाशवान्	**भूतानि**	=	भूतप्राणियोंके शरीर (तो)
च	=	और			
अक्षरः	=	अविनाशी	**क्षरः**	=	नाशवान्
एव	=	भी—	**च**	=	और
इमौ	=	ये	**कूटस्थः**	=	जीवात्मा
द्वौ	=	दो प्रकारके*	**अक्षरः**	=	अविनाशी
पुरुषौ	=	पुरुष हैं। (इनमें)	**उच्यते**	=	कहा जाता है।

[पुरुषोत्तमके स्वरूपका कथन।]

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥ १७॥

उत्तमः, पुरुषः, तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः,
यः, लोकत्रयम्, आविश्य, बिभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः॥ १७॥

---

* गीता अध्याय ७ श्लोक ४-५ में जो अपरा और परा प्रकृतिके नामसे कहे गये हैं तथा अध्याय १३ श्लोक १ में जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके नामसे कहे गये हैं, उन्हीं दोनोंका यहाँ "क्षर और अक्षर" नामसे वर्णन किया गया है।

तथा इन दोनोंसे—

उत्तमः = उत्तम	**बिभर्ति** = सबका धारण-पोषण करता है (एवं)
पुरुषः = पुरुष	
तु = तो	**अव्ययः** = अविनाशी,
अन्यः = अन्य ही है,	**ईश्वरः** = परमेश्वर (और)
यः = जो	**परमात्मा** = परमात्मा
लोकत्रयम् = तीनों लोकोंमें	**इति** = इस प्रकार
आविश्य = प्रवेश करके	**उदाहृतः** = कहा गया है।

[पुरुषोत्तमत्वकी प्रसिद्धिके हेतुका प्रतिपादन।]

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥ १८॥

यस्मात्, क्षरम्, अतीतः, अहम्, अक्षरात्, अपि, च, उत्तमः,
अतः, अस्मि, लोके, वेदे, च, प्रथितः, पुरुषोत्तमः॥ १८॥

यस्मात् = क्योंकि	**उत्तमः** = उत्तम हूँ,
अहम् = मैं	**अतः** = इसलिये
क्षरम् = नाशवान् जड़वर्ग क्षेत्रसे (तो सर्वथा)	**लोके** = लोकमें
	च = और
अतीतः = अतीत हूँ	**वेदे** = वेदमें (भी)
च = और	
अक्षरात् = अविनाशी जीवात्मासे	**पुरुषोत्तमः** = पुरुषोत्तम नामसे
	प्रथितः = प्रसिद्ध
अपि = भी	**अस्मि** = हूँ।

[भगवान् श्रीकृष्णको पुरुषोत्तम समझनेवालेकी महिमा।]

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥ १९॥

यः, माम्, एवम्, असम्मूढः, जानाति, पुरुषोत्तमम्,
सः, सर्ववित्, भजति, माम्, सर्वभावेन, भारत॥ १९॥

भारत	=	हे भारत!	**सः**	=	वह
यः	=	जो	**सर्ववित्**	=	सर्वज्ञ पुरुष
असम्मूढः	=	ज्ञानी पुरुष	**सर्वभावेन**	=	सब प्रकारसे निरन्तर
माम्	=	मुझको	**माम्**	=	मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही
एवम्	=	इस प्रकार (तत्त्वसे)	**भजति**	=	भजता है।
पुरुषोत्तमम्	=	पुरुषोत्तम			
जानाति	=	जानता है,			

[उपर्युक्त गुह्यतम विषयके ज्ञानकी महिमा।]

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत॥ २०॥

इति, गुह्यतमम्, शास्त्रम्, इदम्, उक्तम्, मया, अनघ,
एतत्, बुद्ध्वा, बुद्धिमान्, स्यात्, कृतकृत्यः, च, भारत॥ २०॥

अनघ	=	हे निष्पाप	**उक्तम्**	=	कहा गया,
भारत	=	अर्जुन!	**एतत्**	=	इसको
इति	=	इस प्रकार	**बुद्ध्वा**	=	तत्त्वसे जानकर (मनुष्य)
इदम्	=	यह	**बुद्धिमान्**	=	ज्ञानवान्
गुह्यतमम्	=	अति रहस्ययुक्त गोपनीय	**च**	=	और
शास्त्रम्	=	शास्त्र	**कृतकृत्यः**	=	कृतार्थ
मया	=	मेरे द्वारा	**स्यात्**	=	हो जाता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो
नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ षोडशोऽध्यायः

प्रधान-विषय—*१ से ५ तक फलसहित दैवी और आसुरी सम्पदाका कथन, (६—२०) आसुरी सम्पदावालोंके लक्षण और उनकी अधोगतिका कथन, (२१—२४) शास्त्रविपरीत आचरणोंको त्यागने और शास्त्रके अनुकूल आचरण करनेके लिये प्रेरणा।*

[दैवी सम्पदाको प्राप्त पुरुषके लक्षणोंका वर्णन।]

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥ १॥

अभयम्, सत्त्वसंशुद्धिः, ज्ञानयोगव्यवस्थितिः,
दानम्, दमः, च, यज्ञः, च, स्वाध्यायः, तपः, आर्जवम्॥ १॥

उसके पश्चात् श्रीकृष्णभगवान् फिर बोले कि हे अर्जुन! दैवी सम्पदा जिन पुरुषोंको प्राप्त है तथा जिनको आसुरी सम्पदा प्राप्त है, उनके लक्षण पृथक्-पृथक् कहता हूँ, उनमेंसे—

अभयम् = भयका सर्वथा अभाव,
सत्त्वसंशुद्धिः = अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता,
ज्ञानयोगव्यवस्थितिः = तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति[1]
च = और
दानम् = सात्त्विकदान[2],
दमः = इन्द्रियोंका दमन,
यज्ञः = भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण (एवं)
स्वाध्यायः = वेद-शास्त्रोंका पठन-पाठन (तथा)

१-परमात्माके स्वरूपको तत्त्वसे जाननेके लिये सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे ध्यानकी निरन्तर गाढ़ स्थितिका ही नाम "ज्ञानयोगव्यवस्थिति" समझना चाहिये।

२-गीता अध्याय १७ श्लोक २० में जिसका विस्तार किया है।

तपः = भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्ट सहना

च = और

आर्जवम् = शरीर तथा इन्द्रियोंके सहित अन्तः-करणकी सरलता—

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥ २॥

अहिंसा, सत्यम्, अक्रोधः, त्यागः, शान्तिः, अपैशुनम्,
दया, भूतेषु, अलोलुप्त्वम्, मार्दवम्, ह्रीः, अचापलम्॥ २॥

तथा—

अहिंसा = मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना,

सत्यम् = यथार्थ और प्रिय भाषण*

अक्रोधः = अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना,

त्यागः = कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग,

शान्तिः = अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चित्तकी चंचलताका अभाव,

अपैशुनम् = किसीकी भी निन्दादि न करना,

भूतेषु = सब भूतप्राणियोंमें

दया = हेतुरहित दया,

अलोलुप्त्वम् = इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्तिका न होना,

मार्दवम् = कोमलता,

ह्रीः = लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा (और)

अचापलम् = व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव—

* अन्तःकरण और इन्द्रियोंद्वारा जैसा निश्चय किया हो, वैसे-का-वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहनेका नाम ''सत्यभाषण'' है।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥ ३॥

तेजः, क्षमा, धृतिः, शौचम्, अद्रोहः, नातिमानिता,
भवन्ति, सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातस्य, भारत॥ ३॥

तथा—

तेजः = तेज[1]
क्षमा = क्षमा,
धृतिः = धैर्य,
शौचम् = बाहरकी शुद्धि[2] (एवं)
अद्रोहः = किसीमें भी शत्रुभावका न होना (और)
नातिमानिता = अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव—(ये सब तो)
भारत = हे अर्जुन!
दैवीम्, सम्पदम् = दैवी सम्पदाको
अभिजातस्य = लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके (लक्षण)
भवन्ति = हैं।

[संक्षेपमें आसुरी सम्पदाका निरूपण।]

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥ ४॥

दम्भः, दर्पः, अभिमानः, च, क्रोधः, पारुष्यम्, एव, च,
अज्ञानम्, च, अभिजातस्य, पार्थ, सम्पदम्, आसुरीम्॥ ४॥

और—

पार्थ = हे पार्थ!
दम्भः = दम्भ,
दर्पः = घमण्ड
च = और
अभिमानः = अभिमान
च = तथा
क्रोधः = क्रोध,
पारुष्यम् = कठोरता

१-श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिका नाम "तेज" है कि जिसके प्रभावसे उनके सामने विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः अन्यायाचरणसे रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं।

२-गीता अध्याय १३ श्लोक ७ की टिप्पणी देखनी चाहिये।

च	=	और
अज्ञानम्	=	अज्ञान
एव	=	भी—(ये सब)
आसुरीम्	=	आसुरी
सम्पदम्	=	सम्पदाको
अभिजातस्य	=	लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके (लक्षण हैं)।

[दैवी सम्पदाका फल मुक्ति तथा आसुरी सम्पदाका फल बन्धन बतलाना।]

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव॥ ५॥

दैवी, सम्पत्, विमोक्षाय, निबन्धाय, आसुरी, मता,
मा, शुचः, सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातः, असि, पाण्डव॥ ५॥

उन दोनों प्रकारकी सम्पदाओंमें—

दैवी, सम्पत्	=	दैवी सम्पदा
विमोक्षाय	=	मुक्तिके लिये (और)
आसुरी	=	आसुरी सम्पदा
निबन्धाय	=	बाँधनेके लिये
मता	=	मानी गयी है।
(अतः)	=	इसलिये
पाण्डव	=	हे अर्जुन! (तू)
मा, शुचः	=	शोक मत कर;
(यतः)	=	क्योंकि (तू)
दैवीम्, सम्पदम्	=	दैवी सम्पदाको
अभिजातः	=	लेकर उत्पन्न हुआ
असि	=	है।

[दैव और आसुर—इन दोनों सर्गोंका संकेत करके आसुर-सर्गको विस्तारपूर्वक सुननेके लिये आज्ञा।]

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु॥ ६॥

द्वौ, भूतसर्गौ, लोके, अस्मिन्, दैवः, आसुरः, एव, च,
दैवः, विस्तरशः, प्रोक्तः, आसुरम्, पार्थ, मे, शृणु॥ ६॥

और—

पार्थ	=	हे अर्जुन!
अस्मिन्	=	इस
लोके	=	लोकमें
भूतसर्गौ	=	भूतोंकी सृष्टि यानी मनुष्यसमुदाय
द्वौ एव	=	दो ही प्रकारका है,

	(एक तो)	**प्रोक्तः**	= कहा गया, (अब तू)
दैवः	= दैवी-प्रकृतिवाला		
च	= और (दूसरा)		
आसुरः	= आसुरी-प्रकृतिवाला (उनमेंसे)	**आसुरम्**	= आसुरी-प्रकृतिवाले मनुष्यसमुदायको भी विस्तारपूर्वक
दैवः	= दैवी-प्रकृतिवाला (तो)	**मे**	= मुझसे
विस्तरशः	= विस्तारपूर्वक	**शृणु**	= सुन।

[आसुरी सम्पदावालोंमें सदाचारके अभावका कथन।]

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥ ७॥

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, जनाः, न, विदुः, आसुराः,
न, शौचम्, न, अपि, च, आचारः, न, सत्यम्, तेषु, विद्यते॥ ७॥

हे अर्जुन!—

आसुराः	= आसुर-स्वभाववाले	**न**	= न (तो)
जनाः	= मनुष्य	**शौचम्**	= बाहर-भीतरकी शुद्धि है,
प्रवृत्तिम्	= प्रवृत्ति		
च	= और	**न**	= न
निवृत्तिम्	= निवृत्ति— (इन दोनोंको)	**आचारः**	= श्रेष्ठ आचरण है
		च	= और
च	= भी	**न**	= न
न	= नहीं	**सत्यम्**	= सत्यभाषण
विदुः	= जानते। (इसलिये)	**अपि**	= ही
तेषु	= उनमें	**विद्यते**	= है।

[आसुरी सम्पदावालोंकी नास्तिकताका कथन।]

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्॥ ८॥

असत्यम्, अप्रतिष्ठम्, ते, जगत्, आहुः, अनीश्वरम्,
अपरस्परसम्भूतम्, किम्, अन्यत्, कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

तथा—

ते	=	वे आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य
आहुः	=	कहा करते हैं (कि)
जगत्	=	जगत्
अप्रतिष्ठम्	=	आश्रयरहित,
असत्यम्	=	सर्वथा असत्य (और)
अनीश्वरम्	=	बिना ईश्वरके,
अपरस्परसम्भूतम्	=	अपने-आप केवल स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पन्न है, (अतएव)
कामहैतुकम् (एव)	=	केवल काम ही इसका कारण है।
अन्यत्	=	इसके सिवा (और)
किम्	=	क्या है?

[आसुरी प्रकृतिवालोंके दुराचारका वर्णन।]

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥

एताम्, दृष्टिम्, अवष्टभ्य, नष्टात्मानः, अल्पबुद्धयः,
प्रभवन्ति, उग्रकर्माणः, क्षयाय, जगतः, अहिताः ॥ ९ ॥

इस प्रकार—

एताम्	=	इस
दृष्टिम्	=	मिथ्या ज्ञानको
अवष्टभ्य	=	अवलम्बन करके—
नष्टात्मानः	=	जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है (तथा)
अल्पबुद्धयः	=	जिनकी बुद्धि मन्द है (वे)
अहिताः	=	सबका अपकार करनेवाले
उग्रकर्माणः	=	क्रूरकर्मी मनुष्य (केवल)
जगतः	=	जगत्के
क्षयाय	=	नाशके लिये ही
प्रभवन्ति	=	समर्थ होते हैं।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ १० ॥

कामम्, आश्रित्य, दुष्पूरम्, दम्भमानमदान्विताः,
मोहात्, गृहीत्वा, असद्ग्राहान्, प्रवर्तन्ते, अशुचिव्रताः ॥ १० ॥

और वे—

दम्भमान-मदान्विताः	= दम्भ, मान और मदसे युक्त मनुष्य	**असद्ग्राहान्**	= मिथ्या सिद्धान्तोंको
दुष्पूरम्	= किसी प्रकार भी पूर्ण न होनेवाली	**गृहीत्वा**	= ग्रहण करके (और)
कामम्	= कामनाओंका	**अशुचिव्रताः**	= भ्रष्ट आचरणोंको धारण करके (संसारमें)
आश्रित्य	= आश्रय लेकर		
मोहात्	= अज्ञानसे	**प्रवर्तन्ते**	= विचरते हैं।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

चिन्ताम्, अपरिमेयाम्, च, प्रलयान्ताम्, उपाश्रिताः,
कामोपभोगपरमाः, एतावत्, इति, निश्चिताः ॥ ११ ॥

तथा वे—

प्रलयान्ताम्	= मृत्युपर्यन्त रहनेवाली	**कामोपभोगपरमाः**	= विषयभोगोंके भोगनेमें तत्पर रहनेवाले
अपरिमेयाम्	= असंख्य	**च**	= और
		एतावत्	= 'इतना ही सुख है'
चिन्ताम्	= चिन्ताओंका	**इति**	= इस प्रकार
उपाश्रिताः	= आश्रय लेनेवाले,	**निश्चिताः**	= माननेवाले होते हैं।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥ १२ ॥

आशापाशशतैः, बद्धाः, कामक्रोधपरायणाः,
ईहन्ते, कामभोगार्थम्, अन्यायेन, अर्थसञ्चयान् ॥ १२ ॥

इसलिये वे—

आशापाशशतैः	=	आशाकी सैकड़ों फाँसियोंसे	**कामभोगार्थम्** =	विषय-भोगोंके लिये
			अन्यायेन =	अन्यायपूर्वक
बद्धाः	=	बँधे हुए मनुष्य	**अर्थसञ्चयान्** =	धनादि पदार्थोंको संग्रह करनेकी
कामक्रोधपरायणाः	=	काम-क्रोधके परायण होकर	**ईहन्ते** =	चेष्टा करते रहते हैं।

[आसुरी प्रकृतिवालोंके ममता और अहंकारयुक्त अनेक मनोरथोंका वर्णन।]

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥ १३॥

इदम्, अद्य, मया, लब्धम्, इमम्, प्राप्स्ये, मनोरथम्,
इदम्, अस्ति, इदम्, अपि, मे, भविष्यति, पुनः, धनम्॥ १३॥

और वे सोचा करते हैं कि—

मया	= मैंने		**मे** =	मेरे पास
अद्य	= आज		**इदम्** =	यह (इतना)
इदम्	= यह		**धनम्** =	धन
लब्धम्	= प्राप्त कर लिया है (और अब)		**अस्ति** =	है (और)
			पुनः =	फिर
इमम्	= इस		**अपि** =	भी
मनोरथम्	= मनोरथको		**इदम्** =	यह
प्राप्स्ये	= प्राप्त कर लूँगा।		**भविष्यति** =	हो जायगा।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी॥ १४॥

असौ, मया, हतः, शत्रुः, हनिष्ये, च, अपरान्, अपि,
ईश्वरः, अहम्, अहम्, भोगी, सिद्धः, अहम्, बलवान्, सुखी॥ १४॥

तथा—

असौ	= वह	**च**	= और (उन)
शत्रुः	= शत्रु	**अपरान्**	= दूसरे शत्रुओंको
मया	= मेरे द्वारा	**अपि**	= भी
हतः	= मारा गया	**अहम्**	= मैं

हनिष्ये = मार डालूँगा।
अहम् = मैं
ईश्वरः = ईश्वर हूँ,
भोगी = ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूँ।
अहम् = मैं
सिद्धः = सब सिद्धियोंसे युक्त हूँ (और)
बलवान् = बलवान् (तथा)
सुखी = सुखी हूँ।

[आसुरी प्रकृतिवालोंको घोर नरककी प्राप्ति।]

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥ १५॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥ १६॥

आढ्यः, अभिजनवान्, अस्मि, कः, अन्यः, अस्ति, सदृशः, मया,
यक्ष्ये, दास्यामि, मोदिष्ये, इति, अज्ञानविमोहिताः॥ १५॥
अनेकचित्तविभ्रान्ताः, मोहजालसमावृताः,
प्रसक्ताः, कामभोगेषु, पतन्ति, नरके, अशुचौ॥ १६॥

तथा मैं—

आढ्यः = बड़ा धनी (और)
अभिजनवान् = बड़े कुटुम्बवाला
अस्मि = हूँ।
मया = मेरे
सदृशः = समान
अन्यः = दूसरा
कः = कौन
अस्ति = है? (मैं)
यक्ष्ये = यज्ञ करूँगा,
दास्यामि = दान दूँगा (और)
मोदिष्ये = आमोद-प्रमोद करूँगा।
इति = इस प्रकार
अज्ञानविमोहिताः = अज्ञानसे मोहित रहनेवाले (तथा)
अनेकचित्तविभ्रान्ताः = अनेक प्रकारसे भ्रमित चित्तवाले
मोहजालसमावृताः = मोहरूप जालसे समावृत (और)
कामभोगेषु = विषयभोगोंमें
प्रसक्ताः = अत्यन्त आसक्त (आसुरलोग)
अशुचौ = महान् अपवित्र
नरके = नरकमें
पतन्ति = गिरते हैं।

[आसुरी प्रकृतिवालोंके लक्षण।]

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥ १७॥

आत्मसम्भाविताः, स्तब्धाः, धनमानमदान्विताः,
यजन्ते, नामयज्ञैः, ते, दम्भेन, अविधिपूर्वकम्॥ १७॥

तथा—

ते = वे
आत्मसम्भाविताः = अपने-आपको ही श्रेष्ठ माननेवाले
स्तब्धाः = घमण्डी पुरुष
धनमानमदान्विताः = धन और मानके मदसे युक्त होकर
नामयज्ञैः = केवल नाममात्रके यज्ञोंद्वारा
दम्भेन = पाखण्डसे
अविधिपूर्वकम् = शास्त्रविधिरहित
यजन्ते = यजन करते हैं।

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥ १८॥

अहङ्कारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, च, संश्रिताः,
माम्, आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तः, अभ्यसूयकाः॥ १८॥

तथा वे—

अहङ्कारम् = अहंकार,
बलम् = बल,
दर्पम् = घमण्ड,
कामम् = कामना, (और)
क्रोधम् = क्रोधादिके
संश्रिताः = परायण
च = और
अभ्यसूयकाः = दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष
आत्मपरदेहेषु = अपने और दूसरोंके शरीरमें (स्थित)
माम् = मुझ अन्तर्यामीसे
प्रद्विषन्तः = द्वेष करनेवाले होते हैं।

[द्वेष करनेवाले नराधमोंको आसुरी योनियोंकी प्राप्ति।]

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥ १९॥

तान्, अहम्, द्विषतः, क्रूरान्, संसारेषु, नराधमान्,
क्षिपामि, अजस्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु॥ १९॥

ऐसे—

तान्	=	उन	**संसारेषु**	=	संसारमें
द्विषतः	=	द्वेष करनेवाले	**अजस्रम्**	=	बार-बार
अशुभान्	=	पापाचारी (और)	**आसुरीषु**	=	आसुरी
क्रूरान्	=	क्रूरकर्मी	**योनिषु**	=	योनियोंमें
नराधमान्	=	नराधमोंको	**एव**	=	ही
अहम्	=	मैं	**क्षिपामि**	=	डालता हूँ।

[आसुरी स्वभाववालोंको अधोगति प्राप्त होनेका कथन।]

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥ २०॥

आसुरीम्, योनिम्, आपन्नाः, मूढाः, जन्मनि, जन्मनि,
माम्, अप्राप्य, एव, कौन्तेय, ततः, यान्ति, अधमाम्, गतिम्॥ २०॥

इसलिये—

कौन्तेय	=	हे अर्जुन!	**योनिम्**	=	योनिको
मूढाः	=	वे मूढ	**आपन्नाः**	=	प्राप्त होते हैं, (फिर)
माम्	=	मुझको	**ततः**	=	उससे भी
अप्राप्य	=	न प्राप्त होकर	**अधमाम्**	=	अति नीच
एव*	=	ही	**गतिम्**	=	गतिको
जन्मनि	=	जन्म-			
जन्मनि	=	जन्ममें	**यान्ति**	=	प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं।
आसुरीम्	=	आसुरी			

[आसुरी सम्पदाके प्रधान लक्षण—काम, क्रोध और लोभको नरकके द्वार बतलाना।]

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥ २१॥

त्रिविधम्, नरकस्य, इदम्, द्वारम्, नाशनम्, आत्मनः,
कामः, क्रोधः, तथा, लोभः, तस्मात्, एतत्, त्रयम्, त्यजेत्॥ २१॥

---

* यहाँ "एव" पद देकर मानो भगवान् पश्चात्ताप कर रहे हैं कि इस मनुष्य-शरीरको पाकर मेरी प्राप्तिका अवसर मिला था, ऐसे सुवर्ण-अवसरको खोकर, ये अज्ञानी लोग घोर गतिको प्राप्त होते हैं।

और हे अर्जुन!—

कामः = काम
क्रोधः = क्रोध
तथा = तथा
लोभः = लोभ—
इदम् = ये
त्रिविधम् = तीन प्रकारके
नरकस्य = नरकके
द्वारम् = द्वार[१]
आत्मनः = आत्माका
नाशनम् = नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं।
तस्मात् = अतएव
एतत् = इन
त्रयम् = तीनोंको
त्यजेत् = त्याग देना चाहिये।

[श्रेयसाधनोंसे परम गतिकी प्राप्ति।]

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥ २२॥

एतैः, विमुक्तः, कौन्तेय, तमोद्वारैः, त्रिभिः, नरः,
आचरति, आत्मनः, श्रेयः, ततः, याति, पराम्, गतिम्,॥ २२॥

क्योंकि—

कौन्तेय = हे अर्जुन!
एतैः = इन
त्रिभिः = तीनों
तमोद्वारैः = नरकके द्वारोंसे
विमुक्तः = मुक्त[२]
नरः = पुरुष
आत्मनः = अपने
श्रेयः = कल्याणका
आचरति = आचरण करता है[३]
ततः = इससे (वह)
पराम् = परम
गतिम् = गतिको
याति = जाता है अर्थात् मुझको प्राप्त हो जाता है।

[शास्त्रविधिको त्यागकर इच्छानुसार कर्म करनेवालोंकी निन्दा।]

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ २३॥

१-सर्व अनर्थोंके मूल और नरककी प्राप्तिमें हेतु होनेसे यहाँ काम, क्रोध और लोभको ''नरकके द्वार'' कहा है।

२-अर्थात् काम, क्रोध और लोभ आदि विकारोंसे ''मुक्त'' हुआ।

३-अपने उद्धारके लिये भगवदाज्ञानुसार बरतना ही ''अपने कल्याणका आचरण'' है।

यः, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, वर्तते, कामकारतः,
न, सः, सिद्धिम्, अवाप्नोति, न, सुखम्, न, पराम्, गतिम्॥ २३ ॥

और—

यः	= जो पुरुष	**सिद्धिम्**	= सिद्धिको
शास्त्रविधिम्	= शास्त्रविधिको	**अवाप्नोति**	= प्राप्त होता है,
उत्सृज्य	= त्यागकर	**न**	= न
कामकारतः	= अपनी इच्छासे मनमाना	**पराम्**	= परम
वर्तते	= आचरण करता है,	**गतिम्**	= गतिको (और)
सः	= वह	**न**	= न
न	= न	**सुखम्**	= सुखको ही।

[शास्त्रानुकूल कर्म करने-हेतु प्रेरणा।]

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ २४॥

तस्मात्, शास्त्रम्, प्रमाणम्, ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ,
ज्ञात्वा, शास्त्रविधानोक्तम्, कर्म, कर्तुम्, इह, अर्हसि॥ २४ ॥

तस्मात्	= इससे	**प्रमाणम्**	= प्रमाण है।
ते	= तेरे लिये	**(एवम्)**	= ऐसा
इह	= इस	**ज्ञात्वा**	= जानकर (तू)
कार्याकार्यव्यवस्थितौ	= कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें	**शास्त्रविधानोक्तम्**	= शास्त्रविधिसे नियत
		कर्म	= कर्म (ही)
		कर्तुम्	= करने
शास्त्रम्	= शास्त्र (ही)	**अर्हसि**	= योग्य है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो
नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६ ॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ सप्तदशोऽध्यायः

***प्रधान-विषय*—१ से ६ तक श्रद्धाका और शास्त्रविपरीत घोर तप करनेवालोंका विषय, (७—२२) आहार, यज्ञ, तप और दानके पृथक्-पृथक् भेद, (२३—२८) ॐ, तत्, सत्के प्रयोगकी व्याख्या।**

[शास्त्रविधिको त्यागकर श्रद्धासे पूजन करनेवाले पुरुषोंकी निष्ठाके विषयमें अर्जुनका प्रश्न।]

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः॥ १॥

ये, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः, तेषाम्, निष्ठा, तु, का, कृष्ण, सत्त्वम्, आहो, रजः, तमः॥ १॥

इस प्रकार भगवान्के वचनोंको सुनकर अर्जुन बोले—

कृष्ण	= हे कृष्ण!	**तेषाम्**	= उनकी
ये	= जो मनुष्य	**निष्ठा**	= स्थिति
शास्त्रविधिम्	= शास्त्रविधिको	**तु**	= फिर
उत्सृज्य	= त्यागकर	**का**	= कौन-सी है?
श्रद्धया	= श्रद्धासे	**सत्त्वम्**	= सात्त्विकी है
अन्विताः	= युक्त हुए	**आहो**	= अथवा
यजन्ते	= देवादिका पूजन करते हैं,	**रजः**	= राजसी (किंवा)
		तमः	= तामसी?

[गुणोंके अनुसार तीन प्रकारकी स्वाभाविकी श्रद्धाका कथन।]

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥ २॥

त्रिविधा, भवति, श्रद्धा, देहिनाम्, सा, स्वभावजा,
सात्त्विकी, राजसी, च, एव, तामसी, च, इति, ताम्, शृणु ॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णभगवान् बोले—हे अर्जुन!—

देहिनाम्	= मनुष्योंकी	**च**	= तथा
सा	= वह (शास्त्रीय संस्कारोंसे रहित केवल)	**तामसी**	= तामसी—
		इति	= ऐसे
		त्रिविधा	= तीनों प्रकारकी
स्वभावजा	= स्वभावसे उत्पन्न*	**एव**	= ही
श्रद्धा	= श्रद्धा	**भवति**	= होती है।
सात्त्विकी	= सात्त्विकी	**ताम्**	= उसको (तू)
च	= और	**(मत्तः)**	= मुझसे
राजसी	= राजसी	**शृणु**	= सुन।

[श्रद्धाके अनुसार पुरुषका स्वरूप।]

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

सत्त्वानुरूपा, सर्वस्य, श्रद्धा, भवति, भारत,
श्रद्धामयः, अयम्, पुरुषः, यः, यच्छ्रद्धः, सः, एव, सः ॥ ३ ॥

भारत	= हे भारत!	**श्रद्धामयः**	= श्रद्धामय है,
सर्वस्य	= सभी मनुष्योंकी	**(अतः)**	= इसलिये
श्रद्धा	= श्रद्धा	**यः**	= जो पुरुष
सत्त्वानुरूपा	= उनके अन्तःकरणके अनुरूप	**यच्छ्रद्धः**	= जैसी श्रद्धावाला है,
भवति	= होती है।	**सः**	= वह स्वयं
अयम्	= यह	**एव**	= भी
पुरुषः	= पुरुष	**सः**	= वही है।

* अनन्त जन्मोंमें किये हुए कर्मोंके संचित संस्कारोंसे उत्पन्न हुई श्रद्धा "स्वभावजा श्रद्धा" कही जाती है।

[देव, यक्ष और प्रेतादिके पूजनसे त्रिविध श्रद्धायुक्त पुरुषोंकी पहचान।]

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥ ४॥

यजन्ते, सात्त्विकाः, देवान्, यक्षरक्षांसि, राजसाः,
प्रेतान्, भूतगणान्, च, अन्ये, यजन्ते, तामसाः, जनाः ॥ ४ ॥

उनमें—

सात्त्विकाः	=	सात्त्विक पुरुष
देवान्	=	देवोंको
यजन्ते	=	पूजते हैं,
राजसाः	=	राजस पुरुष
यक्षरक्षांसि	=	यक्ष और राक्षसोंको (तथा)
अन्ये	=	अन्य (जो)
तामसाः	=	तामस
जनाः	=	मनुष्य हैं, (वे)
प्रेतान्	=	प्रेत
च	=	और
भूतगणान्	=	भूतगणोंको
यजन्ते	=	पूजते हैं।

[शास्त्र-विरुद्ध घोर तप करनेवालोंकी निन्दा।]

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥ ५॥

अशास्त्रविहितम्, घोरम्, तप्यन्ते, ये, तपः, जनाः,
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः, कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

और हे अर्जुन!—

ये	=	जो
जनाः	=	मनुष्य
अशास्त्रविहितम्	=	शास्त्रविधिसे रहित (केवल मनः-कल्पित)
घोरम्	=	घोर
तपः	=	तपको
तप्यन्ते	=	तपते हैं (तथा)
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः	=	दम्भ और अहंकारसे युक्त (एवं)
कामरागबलान्विताः	=	कामना, आसक्ति और बलके अभिमानसे भी युक्त हैं—

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥ ६॥

कर्शयन्तः, शरीरस्थम्, भूतग्रामम्, अचेतसः, माम्,
च, एव, अन्तःशरीरस्थम्, तान्, विद्धि, आसुरनिश्चयान्॥ ६॥

तथा जो—

शरीरस्थम् = शरीररूपसे स्थित	**कर्शयन्तः** = कृश करनेवाले हैं[2],
भूतग्रामम् = भूत-समुदायको[1]	**तान्** = उन
च = और	**अचेतसः** = अज्ञानियोंको (तू)
अन्तःशरीरस्थम् = अन्तःकरणमें स्थित	**आसुरनिश्चयान्** = आसुर-स्वभाववाले
माम् = मुझ परमात्माको	**विद्धि** = जान।
एव = भी	

[आहार, यज्ञ, तप और दानके भेदको सुननेके लिये भगवान्‌की आज्ञा।]

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु॥ ७॥

आहारः, तु, अपि, सर्वस्य, त्रिविधः, भवति, प्रियः,
यज्ञः, तपः, तथा, दानम्, तेषाम्, भेदम्, इमम्, शृणु॥ ७॥

और हे अर्जुन! जैसे श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है, वैसे ही—

आहारः = भोजन	**प्रियः** = प्रिय
अपि = भी	**भवति** = होता है।
सर्वस्य = सबको (अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार)	**तु** = और
	तथा = वैसे ही
	यज्ञः = यज्ञ,
त्रिविधः = तीन प्रकारका	**तपः** = तप (और)

१-अर्थात् शरीर, मन और इन्द्रियादिकोंके रूपमें परिणत हुए आकाशादि पाँच भूतोंको।

२-शास्त्रके विरुद्ध उपवासादि घोर आचरणोंद्वारा शरीरको सुखाना एवं भगवान्‌के अंशस्वरूप जीवात्माको क्लेश देना भूतसमुदायको और अन्तर्यामी परमात्माको ''कृश करना'' है।

दानम्	=	दान (भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं)	**इमम्**	=	इस (पृथक्-पृथक्)
			भेदम्	=	भेदको (तू मुझसे)
तेषाम्	=	उनके	**शृणु**	=	सुन।

[सात्त्विक आहारके लक्षण।]

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः,
रस्याः, स्निग्धाः, स्थिराः, हृद्याः, आहाराः, सात्त्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

आयुःसत्त्व-बलारोग्य-सुखप्रीति-विवर्धनाः	=	आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले,			(तथा)
			हृद्याः	=	स्वभावसे ही मनको प्रिय—(ऐसे)
रस्याः	=	रसयुक्त,	**आहाराः**	=	आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ
स्निग्धाः	=	चिकने (और)			
स्थिराः	=	स्थिर रहनेवाले *	**सात्त्विकप्रियाः**	=	सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं।

[राजस आहारके लक्षण।]

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः,
आहाराः, राजसस्य, इष्टाः, दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

और—

कट्वम्ल-लवणात्युष्ण-तीक्ष्ण-रूक्षविदाहिनः	=	कड़ुवे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक			(और)
			दुःखशोक-आमयप्रदाः	=	दुःख, चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले

* जिस भोजनका सार शरीरमें बहुत कालतक रहता है, उसको "स्थिर रहनेवाला" कहते हैं।

आहाराः	=	आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ	**राजसस्य**	=	राजस पुरुषको
			इष्टाः	=	प्रिय होते हैं।

[तामस आहारके लक्षण।]

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ १० ॥

यातयामम्, गतरसम्, पूति, पर्युषितम्, च, यत्,
उच्छिष्टम्, अपि, च, अमेध्यम्, भोजनम्, तामसप्रियम्, ॥ १० ॥

तथा—

यत्	=	जो	**उच्छिष्टम्**	=	उच्छिष्ट है
भोजनम्	=	भोजन	**च**	=	तथा (जो)
यातयामम्	=	अधपका,	**अमेध्यम्**	=	अपवित्र
गतरसम्	=	रसरहित,	**अपि**	=	भी है,
पूति	=	दुर्गन्धयुक्त,	**(तत्)**	=	वह भोजन
पर्युषितम्	=	बासी	**तामसप्रियम्**	=	तामस पुरुषको प्रिय होता है।
च	=	और			

[सात्त्विक यज्ञके लक्षण।]

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः॥ ११ ॥

अफलाकाङ्क्षिभिः, यज्ञः, विधिदृष्टः, यः, इज्यते,
यष्टव्यम्, एव, इति, मनः, समाधाय, सः, सात्त्विकः ॥ ११ ॥

और हे अर्जुन!—

यः	=	जो	**इति**	=	इस प्रकार
विधिदृष्टः	=	शास्त्रविधिसे नियत,	**मनः**	=	मनको
यज्ञः	=	यज्ञ	**समाधाय**	=	समाधान करके,
यष्टव्यम्, एव	=	करना ही कर्तव्य है—	**अफलाकाङ्क्षिभिः**	=	फल न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा

इज्यते	=	किया जाता है,			
सः	=	वह	**सात्त्विकः**	=	सात्त्विक है।

[राजस यज्ञके लक्षण।]

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥ १२॥

अभिसन्धाय, तु, फलम्, दम्भार्थम्, अपि, च, एव, यत्,
इज्यते, भरतश्रेष्ठ, तम्, यज्ञम्, विद्धि, राजसम्॥ १२॥

तु	=	परंतु	**अभिसन्धाय**	=	दृष्टिमें रखकर
भरतश्रेष्ठ	=	हे अर्जुन!	**यत्**	=	जो यज्ञ
दम्भार्थम्, एव	=	केवल दम्भाचरण-के ही लिये	**इज्यते**	=	किया जाता है,
			तम्	=	उस
च	=	अथवा	**यज्ञम्**	=	यज्ञको (तू)
फलम्	=	फलको	**राजसम्**	=	राजस
अपि	=	भी	**विद्धि**	=	जान।

[तामस यज्ञके लक्षण।]

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते॥ १३॥

विधिहीनम्, असृष्टान्नम्, मन्त्रहीनम्, अदक्षिणम्,
श्रद्धाविरहितम्, यज्ञम्, तामसम्, परिचक्षते॥ १३॥

तथा—

विधिहीनम्	=	शास्त्रविधिसे हीन,	**श्रद्धाविरहितम्**	=	बिना श्रद्धाके किये जानेवाले
असृष्टान्नम्	=	अन्नदानसे रहित,			
मन्त्रहीनम्	=	बिना मन्त्रोंके,	**यज्ञम्**	=	यज्ञको
अदक्षिणम्	=	बिना दक्षिणाके (और)	**तामसम्**	=	तामस यज्ञ
			परिचक्षते	=	कहते हैं।

[शारीरिक तपके लक्षण।]

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥ १४॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्, शौचम्, आर्जवम्,
ब्रह्मचर्यम्, अहिंसा, च, शारीरम्, तपः, उच्यते॥ १४॥

तथा हे अर्जुन!—

देवद्विज-गुरुप्राज्ञपूजनम्	=	देवता, ब्राह्मण, गुरु[1] और ज्ञानीजनोंका पूजन,	**ब्रह्मचर्यम्**	=	ब्रह्मचर्य
			च	=	और
			अहिंसा	=	अहिंसा—(यह)
			शारीरम्	=	शरीरसम्बन्धी
शौचम्	=	पवित्रता,	**तपः**	=	तप
आर्जवम्	=	सरलता,	**उच्यते**	=	कहा जाता है।

[वाणीसम्बन्धी तपके लक्षण।]

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥ १५॥

अनुद्वेगकरम्, वाक्यम्, सत्यम्, प्रियहितम्, च, यत्,
स्वाध्यायाभ्यसनम्, च, एव, वाङ्मयम्, तपः, उच्यते॥ १५॥

यत्	=	जो	**वाक्यम्**	=	भाषण है[2]
अनुद्वेगकरम्	=	उद्वेग न करनेवाला,	**च**	=	तथा (जो)
प्रियहितम्	=	प्रिय और हितकारक	**स्वाध्याय-अभ्यसनम्**	=	वेद-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है—
च	=	एवं			
सत्यम्	=	यथार्थ			

१-यहाँ ''गुरु'' शब्दसे माता, पिता, आचार्य और वृद्ध एवं अपनेसे जो किसी प्रकार भी बड़े हों, उन सबको समझना चाहिये।

२-मन और इन्द्रियोंद्वारा जैसा अनुभव किया हो, ठीक वैसा ही कहनेका नाम ''यथार्थ भाषण'' है।

(तत्) एव	=	वही	**तपः**	=	तप
वाङ्मयम्	=	वाणीसम्बन्धी	**उच्यते**	=	कहा जाता है।

[मानसिक तपके लक्षण।]

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥ १६॥

मनःप्रसादः, सौम्यत्वम्, मौनम्, आत्मविनिग्रहः,
भावसंशुद्धिः, इति, एतत्, तपः, मानसम्, उच्यते॥ १६॥

तथा—

मनःप्रसादः	=	मनकी प्रसन्नता,	**भावसंशुद्धिः**	=	अन्तःकरणके भावोंकी भलीभाँति पवित्रता—
सौम्यत्वम्	=	शान्तभाव,	**इति**	=	इस प्रकार
मौनम्	=	भगवच्चिन्तन करनेका स्वभाव,	**एतत्**	=	यह
			मानसम्	=	मनसम्बन्धी
आत्मविनिग्रहः	=	मनका निग्रह (और)	**तपः**	=	तप
			उच्यते	=	कहा जाता है।

[सात्त्विक तपके लक्षण।]

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥ १७॥

श्रद्धया, परया, तप्तम्, तपः, तत्, त्रिविधम्, नरैः,
अफलाकाङ्क्षिभिः, युक्तैः, सात्त्विकम्, परिचक्षते॥ १७॥

परंतु हे अर्जुन!—

अफलाकाङ्क्षिभिः	=	फलको न चाहनेवाले	**नरैः**	=	पुरुषोंद्वारा
			परया	=	परम
युक्तैः	=	योगी	**श्रद्धया**	=	श्रद्धासे

तप्तम् = किये हुए
तत् = उस (पूर्वोक्त)
त्रिविधम् = तीन प्रकारके
तपः = तपको
सात्त्विकम् = सात्त्विक
परिचक्षते = कहते हैं।

[राजस तपके लक्षण।]

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्॥ १८॥

सत्कारमानपूजार्थम्, तपः, दम्भेन, च, एव, यत्,
क्रियते, तत्, इह, प्रोक्तम्, राजसम्, चलम्, अध्रुवम्॥ १८॥

यत् = जो
तपः = तप
सत्कारमानपूजार्थम् = सत्कार, मान और पूजाके लिये (तथा)
च, एव = अन्य किसी स्वार्थके लिये भी स्वभावसे
(वा) = या
दम्भेन = पाखण्डसे
क्रियते = किया जाता है,
तत् = वह
अध्रुवम् = अनिश्चित* (एवं)
चलम् = क्षणिक फलवाला तप
इह = यहाँ
राजसम् = राजस
प्रोक्तम् = कहा गया है।

[तामस तपके लक्षण।]

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्॥ १९॥

मूढग्राहेण, आत्मनः, यत्, पीडया, क्रियते, तपः,
परस्य, उत्सादनार्थम्, वा, तत्, तामसम्, उदाहृतम्॥ १९॥

और—

यत् = जो
तपः = तप
मूढग्राहेण = मूढतापूर्वक हठसे,
आत्मनः = मन, वाणी और शरीरकी
पीडया = पीड़ाके सहित

* ''अनिश्चित फलवाला'' उसको कहते हैं कि जिसका फल होने और न होनेमें शंका हो।

वा = अथवा
परस्य = दूसरेका
उत्सादनार्थम् = अनिष्ट करनेके लिये
क्रियते = किया जाता है—
तत् = वह तप
तामसम् = तामस
उदाहृतम् = कहा गया है।

[सात्त्विक दानके लक्षण।]

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ २०॥

दातव्यम्, इति, यत्, दानम्, दीयते, अनुपकारिणे, देशे, काले, च, पात्रे, च, तत्, दानम्, सात्त्विकम्, स्मृतम्॥ २०॥

दातव्यम् = दान देना ही कर्तव्य है—
इति = ऐसे भावसे
यत् = जो
दानम् = दान
देशे = देश[1]
च = तथा
काले = काल[2]
च = और
पात्रे = पात्रके[3] प्राप्त होनेपर
अनुपकारिणे = उपकार न करनेवालेके प्रति
दीयते = दिया जाता है,
तत् = वह
दानम् = दान
सात्त्विकम् = सात्त्विक
स्मृतम् = कहा गया है।

[राजस दानके लक्षण।]

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥ २१॥

१,२–जिस देश–कालमें जिस वस्तुका अभाव हो वही ''देश–काल'' उस वस्तुद्वारा प्राणियोंकी सेवा करनेके लिये योग्य समझा जाता है।

३–भूखे, अनाथ, दुःखी, रोगी और असमर्थ तथा भिक्षुक आदि तो अन्न, वस्त्र और ओषधि एवं जिस वस्तुका जिसके पास अभाव हो, उस वस्तुद्वारा सेवा करनेके लिये योग्य पात्र समझे जाते हैं और श्रेष्ठ आचरणोंवाले विद्वान् ब्राह्मणजन धनादि सब प्रकारके पदार्थोंद्वारा सेवा करनेके लिये ''योग्य पात्र'' समझे जाते हैं।

यत्, तु, प्रत्युपकारार्थम्, फलम्, उद्दिश्य, वा, पुनः,
दीयते, च, परिक्लिष्टम्, तत्, दानम्, राजसम्, स्मृतम्॥ २१ ॥

तु = किंतु		**उद्दिश्य** = दृष्टिमें रखकर[3]	
यत् = जो (दान)		**पुनः** = फिर	
परिक्लिष्टम् = क्लेशपूर्वक[1]			
च = तथा		**दीयते** = दिया जाता है,	
प्रत्युपकारार्थम् = प्रत्युपकारके प्रयोजनसे[2]		**तत्** = वह	
		दानम् = दान	
वा = अथवा		**राजसम्** = राजस	
फलम् = फलको		**स्मृतम्** = कहा गया है।	

[तामस दानके लक्षण।]

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥ २२ ॥

अदेशकाले, यत्, दानम्, अपात्रेभ्यः, च, दीयते,
असत्कृतम्, अवज्ञातम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम्॥ २२ ॥

यत् = जो	**च** = और
दानम् = दान	**अपात्रेभ्यः** = कुपात्रके प्रति[4]
असत्कृतम् = बिना सत्कारके	**दीयते** = दिया जाता है,
(वा) = अथवा	**तत्** = वह दान
अवज्ञातम् = तिरस्कारपूर्वक	**तामसम्** = तामस
अदेशकाले = अयोग्य देश-कालमें	**उदाहृतम्** = कहा गया है।

१-जैसे प्रायः वर्तमान समयके चंदे-चिट्ठे आदिमें धन दिया जाता है।

२-अर्थात् दानके बदलेमें अपना सांसारिक कार्य सिद्ध करनेकी आशासे।

३-अर्थात् मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्गादिकी प्राप्तिके लिये अथवा रोगादिकी निवृत्तिके लिये।

४-अर्थात् मद्य-मांसादि अभक्ष्य वस्तुओंके खानेवालों एवं चोरी-जारी आदि नीच कर्म करनेवालोंके लिये।

[ॐ तत्सत्‌की महिमा।]

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥ २३॥

ॐ, तत्, सत्, इति, निर्देशः, ब्रह्मणः, त्रिविधः, स्मृतः,
ब्राह्मणाः, तेन, वेदाः, च, यज्ञाः, च, विहिताः, पुरा॥ २३॥

और हे अर्जुन!—

ॐ	= ॐ,	**तेन**	= उसीसे
तत्	= तत्,	**पुरा**	= सृष्टिके आदिकालमें
सत्	= सत्—	**ब्राह्मणाः**	= ब्राह्मण
इति	= ऐसे (यह)	**च**	= और
त्रिविधः	= तीन प्रकारका	**वेदाः**	= वेद
ब्रह्मणः	= सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका	**च**	= तथा
निर्देशः	= नाम	**यज्ञाः**	= यज्ञादि
स्मृतः	= कहा है;	**विहिताः**	= रचे गये।

[ॐकारके प्रयोगकी व्याख्या।]

तस्मादोमित्युदाहृत्य　यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥ २४॥

तस्मात्, ओम्, इति, उदाहृत्य, यज्ञदानतपःक्रियाः,
प्रवर्तन्ते, विधानोक्ताः, सततम्, ब्रह्मवादिनाम्॥ २४॥

तस्मात्	= इसलिये	**सततम्**	= सदा
ब्रह्मवादिनाम्	= वेदमन्त्रोंका उच्चारण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंकी	**ओम्**	= 'ॐ'
		इति	= इस (परमात्माके नामको)
विधानोक्ताः	= शास्त्रविधिसे नियत	**उदाहृत्य**	= उच्चारण करके (ही)
यज्ञदानतपःक्रियाः	= यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ	**प्रवर्तन्ते**	= आरम्भ होती हैं।

[तत् शब्दके प्रयोगकी व्याख्या।]

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ २५ ॥

तत्, इति, अनभिसन्धाय, फलम्, यज्ञतपःक्रियाः, दानक्रियाः, च, विविधाः, क्रियन्ते, मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ २५ ॥

और—

तत् = तत् अर्थात् 'तत्' नामसे कहे जानेवाले परमात्माका ही यह सब है,
इति = इस (भावसे)
फलम् = फलको
अनभिसन्धाय = न चाहकर
विविधाः = नाना प्रकारकी
यज्ञतपःक्रियाः = यज्ञ, तपरूप क्रियाएँ
च = तथा
दानक्रियाः = दानरूप क्रियाएँ
मोक्षकाङ्क्षिभिः = कल्याणकी इच्छावाले पुरुषोंद्वारा
क्रियन्ते = की जाती हैं।

[सत् शब्दके प्रयोगकी व्याख्या।]

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६ ॥

सद्भावे, साधुभावे, च, सत्, इति, एतत्, प्रयुज्यते, प्रशस्ते, कर्मणि, तथा, सत्, शब्दः, पार्थ, युज्यते ॥ २६ ॥

और—

सत् = 'सत्'—
इति = इस प्रकार
एतत् = यह (परमात्माका नाम)
सद्भावे = सत्यभावमें
च = और
साधुभावे = श्रेष्ठभावमें
प्रयुज्यते = प्रयोग किया जाता है
तथा = तथा
पार्थ = हे पार्थ!
प्रशस्ते = उत्तम

कर्मणि	=	कर्ममें (भी)	**शब्दः**	=	शब्दका
सत्	=	'सत्'	**युज्यते**	=	प्रयोग किया जाता है।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥ २७॥

यज्ञे, तपसि, दाने, च, स्थितिः, सत्, इति, च, उच्यते,
कर्म, च, एव, तदर्थीयम्, सत्, इति, एव, अभिधीयते॥ २७॥

च	=	तथा	**इति**	=	इस प्रकार
यज्ञे	=	यज्ञ,	**उच्यते**	=	कही जाती है
तपसि	=	तप	**च**	=	और
च	=	और	**तदर्थीयम्**	=	उस परमात्माके लिये किया हुआ
दाने	=	दानमें			
(या)	=	जो	**कर्म**	=	कर्म
स्थितिः	=	स्थिति है,	**एव**	=	निश्चयपूर्वक
(सा)	=	वह	**सत्**	=	सत्—
एव	=	भी	**इति**	=	ऐसे
सत्	=	'सत्'	**अभिधीयते**	=	कहा जाता है।

[अश्रद्धासे किये हुए यज्ञादि कर्मोंको इस लोक और परलोकमें निष्फल और असत् बतलाना।]

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥ २८॥

अश्रद्धया, हुतम्, दत्तम्, तपः, तप्तम्, कृतम्, च, यत्,
असत्, इति, उच्यते, पार्थ, न, च, तत्, प्रेत्य, नो, इह॥ २८॥

और—

पार्थ	=	हे अर्जुन!	**हुतम्**	=	हवन,
अश्रद्धया	=	बिना श्रद्धाके किया हुआ	**दत्तम्**	=	दिया हुआ दान (एवं)

तप्तम्	= तपा हुआ	**उच्यते**	= कहा जाता है; (इसलिये)
तपः	= तप		
च	= और	**तत्**	= वह
यत्	= जो (कुछ भी)	**नो**	= न (तो)
कृतम्	= किया हुआ शुभ कर्म है—	**इह**	= इस लोकमें (लाभदायक है),
(तत्)	= वह समस्त	**च**	= और
असत्	= 'असत्'—	**न**	= न
इति	= इस प्रकार	**प्रेत्य**	= मरनेके बाद ही।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥

हरिः ॐ तत्सत् **हरिः ॐ तत्सत्** **हरिः ॐ तत्सत्**

❖❖❖

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथाष्टादशोऽध्यायः

__प्रधान-विषय__—१ से १२ तक त्यागका विषय, (१३—१८) कर्मोंके होनेमें सांख्यसिद्धान्तका कथन, (१९—४०) तीनों गुणोंके अनुसार ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति और सुखके पृथक्-पृथक् भेद, (४१—४८) फलसहित वर्ण-धर्मका विषय, (४९—५५) ज्ञाननिष्ठाका विषय, (५६—६६) भक्तिसहित निष्काम कर्मयोगका विषय, (६७—७८) श्रीगीताजीका माहात्म्य।

[संन्यास और त्यागका तत्त्व जाननेके लिये अर्जुनकी इच्छा।]

अर्जुन उवाच

सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन॥ १॥

सन्न्यासस्य, महाबाहो, तत्त्वम्, इच्छामि, वेदितुम्,
त्यागस्य, च, हृषीकेश, पृथक्, केशिनिषूदन॥ १॥

इसके पश्चात् अर्जुन बोले—

महाबाहो = हे महाबाहो!		**त्यागस्य** = त्यागके	
हृषीकेश = हे अन्तर्यामिन्!		**तत्त्वम्** = तत्त्वको	
केशिनिषूदन = हे वासुदेव! (मैं)		**पृथक्** = पृथक्-पृथक्	
सन्न्यासस्य = संन्यास		**वेदितुम्** = जानना	
च = और		**इच्छामि** = चाहता हूँ।	

[त्यागके विषयमें दूसरे चार सिद्धान्तोंका कथन।]

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः॥ २॥

काम्यानाम्, कर्मणाम्, न्यासम्, सन्न्यासम्, कवयः, विदुः,
सर्वकर्मफलत्यागम्, प्राहुः, त्यागम्, विचक्षणाः ॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! कितने ही—

कवयः	=	पण्डितजन (तो)			(तथा दूसरे)
काम्यानाम्	=	काम्य[1]	**विचक्षणाः**	=	विचारकुशल पुरुष
कर्मणाम्	=	कर्मोंके	**सर्वकर्मफलत्यागम्**	=	सब कर्मोंके फलके त्यागको[2]
न्यासम्	=	त्यागको			
सन्न्यासम्	=	संन्यास	**त्यागम्**	=	त्याग
विदुः	=	समझते हैं	**प्राहुः**	=	कहते हैं।

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

त्याज्यम्, दोषवत्, इति, एके, कर्म, प्राहुः, मनीषिणः,
यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, इति, च, अपरे ॥ ३ ॥

तथा—

एके	=	कई एक	**च**	=	और
मनीषिणः	=	विद्वान्	**अपरे**	=	दूसरे विद्वान्
इति	=	ऐसा	**इति**	=	यह
प्राहुः	=	कहते हैं (कि)	**(आहुः)**	=	कहते हैं (कि)
कर्म	=	कर्ममात्र			
दोषवत्	=	दोषयुक्त हैं, (इसलिये)	**यज्ञदानतपःकर्म**	=	यज्ञ, दान और तपरूप कर्म
त्याज्यम्	=	त्यागनेके योग्य हैं	**न, त्याज्यम्**	=	त्यागनेयोग्य नहीं हैं।

१–स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये तथा संकटादि रोगकी निवृत्तिके लिये जो यज्ञ, दान, तप और उपासना आदि कर्म किये जाते हैं, उनका नाम ''काम्यकर्म'' है।

२–ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, माता-पिता आदि गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ, दान और तप तथा वर्णाश्रमानुसार आजीविकाद्वारा गृहस्थका निर्वाह एवं शरीरसम्बन्धी खान-पान इत्यादिक जितने कर्तव्य कर्म हैं, उन सबमें इस लोक और परलोककी सम्पूर्ण कामनाओंके त्यागका नाम ''सब कर्मोंके फलका त्याग'' है।

[त्यागके विषयमें अपना निश्चय कहनेके लिये भगवान्‌का कथन।]

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः॥ ४॥

निश्चयम्, शृणु, मे, तत्र, त्यागे, भरतसत्तम,
त्यागः, हि, पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः, सम्प्रकीर्तितः॥ ४॥

परंतु—

पुरुषव्याघ्र	= हे पुरुषश्रेष्ठ	**निश्चयम्**	= निश्चय
भरतसत्तम	= अर्जुन!	**शृणु**	= सुन।
तत्र	= संन्यास और त्याग—इन दोनोंमेंसे पहले	**हि**	= क्योंकि
त्यागे	= त्यागके विषयमें (तू)	**त्यागः**	= त्याग (सात्त्विक, राजस और तामस–भेदसे)
मे	= मेरा	**त्रिविधः**	= तीन प्रकारका
		सम्प्रकीर्तितः	= कहा गया है।

[यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंके त्यागका निषेध।]

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥ ५॥

यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, कार्यम्, एव, तत्,
यज्ञः, दानम्, तपः, च, एव, पावनानि, मनीषिणाम्॥ ५॥

तथा—

यज्ञदानतपःकर्म	= यज्ञ, दान और तपरूप कर्म	**यज्ञः**	= यज्ञ,
		दानम्	= दान
न, त्याज्यम्	= त्याग करनेके योग्य नहीं है, (बल्कि)	**च**	= और
		तपः	= तप—(ये तीनों)
तत्	= वह (तो)	**एव**	= ही (कर्म)
एव	= अवश्य	**मनीषिणाम्**	= बुद्धिमान्* पुरुषोंको
कार्यम्	= कर्तव्य है; क्योंकि	**पावनानि**	= पवित्र करनेवाले हैं।

* वह मनुष्य "बुद्धिमान्" है जो फल और आसक्तिको त्यागकर केवल भगवदर्थ कर्म करता है।

[त्यागके विषयमें अपना निश्चित मत बतलाना।]

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥ ६ ॥

एतानि, अपि, तु, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, फलानि, च,
कर्तव्यानि, इति, मे, पार्थ, निश्चितम्, मतम्, उत्तमम्॥ ६ ॥

इसलिये—

पार्थ = हे पार्थ!		**फलानि** = फलोंका	
एतानि = इन यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंको		**त्यक्त्वा** = त्याग करके (अवश्य)	
तु = तथा			
(अन्यानि) = और		**कर्तव्यानि** = करना चाहिये;	
अपि = भी		**इति** = यह	
कर्माणि = सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको		**मे** = मेरा	
		निश्चितम् = निश्चय किया हुआ	
सङ्गम् = आसक्ति		**उत्तमम्** = उत्तम	
च = और		**मतम्** = मत है।	

[तामस त्यागके लक्षण।]

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः॥ ७ ॥

नियतस्य, तु, सन्न्यासः, कर्मणः, न, उपपद्यते,
मोहात्, तस्य, परित्यागः, तामसः, परिकीर्तितः॥ ७ ॥

निषिद्ध और काम्य-कर्मोंका तो स्वरूपसे त्याग करना उचित ही है—

तु = परंतु	**न, उपपद्यते** = उचित नहीं है। (इसलिये)
नियतस्य = नियत*	
कर्मणः = कर्मका	**मोहात्** = मोहके कारण
सन्न्यासः = स्वरूपसे त्याग	**तस्य** = उसका

* इसी अध्यायके श्लोक ४८ की टिप्पणीमें इसका अर्थ देखना चाहिये।

परित्यागः	=	त्याग कर देना	**परिकीर्तितः**	=	त्याग कहा गया है।
तामसः	=	तामस			

[राजस त्यागके लक्षण।]

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्॥ ८॥

दुःखम्, इति, एव, यत्, कर्म, कायक्लेशभयात्, त्यजेत्,
सः, कृत्वा, राजसम्, त्यागम्, न, एव, त्यागफलम्, लभेत्॥ ८॥

और यदि कोई मनुष्य—

यत्	=	जो (कुछ)			(कर्तव्य कर्मोंका)
कर्म	=	कर्म है,	**त्यजेत्**	=	त्याग कर दे, (तो)
(तत्)	=	वह सब	**सः**	=	वह (ऐसा)
दुःखम्, एव	=	दुःखरूप ही है—	**राजसम्**	=	राजस
इति	=	ऐसा (समझकर यदि कोई)	**त्यागम्**	=	त्याग
			कृत्वा	=	करके
			त्यागफलम्	=	त्यागके फलको
कायक्लेशभयात्	=	शारीरिक क्लेशके भयसे	**एव**	=	किसी प्रकार भी
			न, लभेत्	=	नहीं पाता।

[सात्त्विक त्यागके लक्षण।]

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥ ९॥

कार्यम्, इति, एव, यत्, कर्म, नियतम्, क्रियते, अर्जुन,
सङ्गम्, त्यक्त्वा, फलम्, च, एव, सः, त्यागः, सात्त्विकः, मतः॥ ९॥

और—

अर्जुन	=	हे अर्जुन!	**कार्यम्**	=	करना कर्तव्य है—
यत्	=	जो	**इति, एव**	=	इसी भावसे
नियतम्	=	शास्त्रविहित	**सङ्गम्**	=	आसक्ति
कर्म	=	कर्म	**च**	=	और

फलम्	=	फलका	**सात्त्विकः**	=	सात्त्विक
त्यक्त्वा	=	त्याग करके			
क्रियते	=	किया जाता है—	**त्यागः**	=	त्याग
सः, एव	=	वही	**मतः**	=	माना गया है।

[सात्त्विक त्यागीके लक्षणोंका वर्णन।]

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः॥ १० ॥

न, द्वेष्टि, अकुशलम्, कर्म, कुशले, न, अनुषज्जते,
त्यागी, सत्त्वसमाविष्टः, मेधावी, छिन्नसंशयः॥ १० ॥

और हे अर्जुन! जो मनुष्य—

अकुशलम्	=	अकुशल	**सत्त्वसमाविष्टः**	=	शुद्ध सत्त्वगुणसे युक्त पुरुष
कर्म	=	कर्मसे (तो)			
न, द्वेष्टि	=	द्वेष नहीं करता (और)	**छिन्नसंशयः**	=	संशयरहित,
कुशले	=	कुशल कर्ममें			
न, अनुषज्जते	=	आसक्त नहीं होता—(वह)	**मेधावी**	=	बुद्धिमान् (और)
			त्यागी	=	सच्चा त्यागी है।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥ ११ ॥

न, हि, देहभृता, शक्यम्, त्यक्तुम्, कर्माणि, अशेषतः,
यः, तु, कर्मफलत्यागी, सः, त्यागी, इति, अभिधीयते॥ ११ ॥

हि	=	क्योंकि	**न, शक्यम्**	=	शक्य नहीं है;
देहभृता	=	शरीरधारी किसी भी मनुष्यके द्वारा	**(तस्मात्)**	=	इसलिये
			यः	=	जो
अशेषतः	=	सम्पूर्णतासे	**कर्मफलत्यागी**	=	कर्मफलका त्यागी है,
कर्माणि	=	सब कर्मोंका			
त्यक्तुम्	=	त्याग किया जाना	**सः, तु**	=	वही

त्यागी = त्यागी है—
इति = यह
अभिधीयते = कहा जाता है।

[त्यागी पुरुषोंके महत्त्वका प्रतिपादन।]

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित्॥ १२॥

अनिष्टम्, इष्टम्, मिश्रम्, च, त्रिविधम्, कर्मणः, फलम्,
भवति, अत्यागिनाम्, प्रेत्य, न, तु, सन्न्यासिनाम्, क्वचित्॥ १२॥

तथा—

अत्यागिनाम् = कर्मफलका त्याग न करनेवाले मनुष्योंके
कर्मणः = कर्मोंका (तो)
इष्टम् = अच्छा,
अनिष्टम् = बुरा
च = और
मिश्रम् = मिला हुआ—
(इति) = ऐसे
त्रिविधम् = तीन प्रकारका
फलम् = फल
प्रेत्य = मरनेके पश्चात् (अवश्य)
भवति = होता है,
तु = किंतु
सन्न्यासिनाम् = कर्मफलका त्याग कर देनेवाले मनुष्योंके (कर्मोंका फल)
क्वचित् = किसी कालमें भी
न = नहीं होता।

[सम्पूर्ण कर्मोंके होनेमें अधिष्ठानादि पंच हेतुओंका निरूपण।]

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्॥ १३॥

पञ्च, एतानि, महाबाहो, कारणानि, निबोध, मे,
साङ्ख्ये, कृतान्ते, प्रोक्तानि, सिद्धये, सर्वकर्मणाम्॥ १३॥

और—

महाबाहो = हे महाबाहो!
सर्वकर्मणाम् = सम्पूर्ण कर्मोंकी
सिद्धये = सिद्धिके*
एतानि = ये

* अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके सिद्ध होनेमें।

पञ्च	=	पाँच	**साङ्ख्ये**	=	सांख्यशास्त्रमें
कारणानि	=	हेतु	**प्रोक्तानि**	=	कहे गये हैं,
कृतान्ते	=	कर्मोंका अन्त करनेके लिये उपाय बतलानेवाले	**(तानि)**	=	उनको (तू)
			मे	=	मुझसे
			निबोध	=	भलीभाँति जान।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥ १४॥

अधिष्ठानम्, तथा, कर्ता, करणम्, च, पृथग्विधम्,
विविधाः, च, पृथक्, चेष्टाः, दैवम्, च, एव, अत्र, पञ्चमम्॥ १४॥

और हे अर्जुन!—

अत्र	=	इस विषयमें अर्थात् कर्मोंकी सिद्धिमें	**च**	=	एवं
			विविधाः	=	नाना प्रकारकी
अधिष्ठानम्	=	अधिष्ठान[1]	**पृथक्**	=	अलग-अलग
च	=	और	**चेष्टाः**	=	चेष्टाएँ (और)
कर्ता	=	कर्ता	**तथा**	=	वैसे
च	=	तथा	**एव**	=	ही
पृथग्विधम्	=	भिन्न-भिन्न प्रकारके	**पञ्चमम्**	=	पाँचवाँ हेतु
करणम्	=	करण[2]	**दैवम्**	=	दैव है।[3]

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः॥ १५॥

शरीरवाङ्मनोभिः, यत्, कर्म, प्रारभते, नरः,
न्याय्यम्, वा, विपरीतम्, वा, पञ्च, एते, तस्य, हेतवः॥ १५॥

१-जिसके आश्रय कर्म किये जायँ उसका नाम ''अधिष्ठान'' है।

२-जिन-जिन इन्द्रियादिकों और साधनोंके द्वारा कर्म किये जाते हैं, उनका नाम ''करण'' है; इस प्रकार इसी अध्यायके श्लोक १८वेंमें आये हुए ''करण'' शब्दका भी यही अर्थ समझना चाहिये।

३-पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके संस्कारोंका नाम ''दैव'' है।

क्योंकि—

नरः	=	मनुष्य	**यत्, कर्म**	=	जो कुछ भी कर्म
शरीरवाङ्मनोभिः	=	मन, वाणी और शरीरसे	**प्रारभते**	=	करता है—
न्याय्यम्	=	शास्त्रानुकूल	**तस्य**	=	उसके
वा	=	अथवा	**एते**	=	ये
विपरीतम्, वा	=	विपरीत	**पञ्च**	=	पाँचों
			हेतवः	=	कारण हैं।

[आत्माको कर्ता समझनेवालेकी निन्दा।]

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥ १६॥

तत्र, एवम्, सति, कर्तारम्, आत्मानम्, केवलम्, तु, यः,
पश्यति, अकृतबुद्धित्वात्, न, सः, पश्यति, दुर्मतिः॥ १६॥

तु	=	परंतु	**केवलम्**	=	केवल शुद्धस्वरूप
एवम्	=	ऐसा	**आत्मानम्**	=	आत्माको
सति	=	होनेपर भी	**कर्तारम्**	=	कर्ता
यः	=	जो मनुष्य	**पश्यति**	=	समझता है,
अकृतबुद्धित्वात्	=	अशुद्धबुद्धि* होनेके कारण	**सः**	=	वह
तत्र	=	उस विषयमें यानी कर्मोंके होनेमें	**दुर्मतिः**	=	मलिन बुद्धिवाला अज्ञानी
			न, पश्यति	=	यथार्थ नहीं समझता।

[कर्तृत्वाभिमानसे रहित होकर कर्म करनेवालेकी प्रशंसा।]

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥ १७॥

---

* सत्संग और शास्त्रके अभ्यासस तथा भगवदर्थ कर्म और उपासनाके करनेसे मनुष्यकी बुद्धि शुद्ध होती है, इसलिये जो उपर्युक्त साधनोंसे रहित है, उसकी ''बुद्धि अशुद्ध'' है, ऐसा समझना चाहिये।

यस्य, न, अहङ्कृतः, भावः, बुद्धिः, यस्य, न, लिप्यते,
हत्वा, अपि, सः, इमान्, लोकान्, न, हन्ति, न, निबध्यते॥ १७॥

और हे अर्जुन!—

यस्य	=	जिस पुरुषके (अन्तःकरणमें)
अहङ्कृतः	=	'मैं कर्ता हूँ' (ऐसा)
भावः	=	भाव
न	=	नहीं है (तथा)
यस्य	=	जिसकी
बुद्धिः	=	बुद्धि (सांसारिक पदार्थोंमें और कर्मोंमें)
न, लिप्यते	=	लिपायमान नहीं होती;
सः	=	वह पुरुष
इमान्	=	इन
लोकान्	=	सब लोकोंको
हत्वा	=	मारकर
अपि	=	भी (वास्तवमें)
न	=	न (तो)
हन्ति	=	मारता है (और)
न	=	न
निबध्यते	=	पापसे बँधता* है।

[कर्म-प्रेरणा और कर्म-संग्रहका स्वरूप।]

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः॥ १८॥

ज्ञानम्, ज्ञेयम्, परिज्ञाता, त्रिविधा, कर्मचोदना,
करणम्, कर्म, कर्ता, इति, त्रिविधः, कर्मसङ्ग्रहः॥ १८॥

---

* जैसे अग्नि, वायु और जलके द्वारा प्रारब्धवश किसी प्राणीकी हिंसा होती देखनेमें आये तो भी वह वास्तवमें हिंसा नहीं है, वैसे ही जिस पुरुषका देहमें अभिमान नहीं है और स्वार्थरहित केवल संसारके हितके लिये ही जिसकी सम्पूर्ण क्रियाएँ होती हैं, उस पुरुषके शरीर और इन्द्रियोंद्वारा यदि किसी प्राणीकी हिंसा होती हुई लोकदृष्टिमें देखी जाय तो भी वह वास्तवमें हिंसा नहीं है; क्योंकि आसक्ति, स्वार्थ और अहंकारके न होनेसे किसी प्राणीकी हिंसा हो ही नहीं सकती तथा बिना कर्तृत्व-अभिमानके किया हुआ कर्म वास्तवमें अकर्म ही है, इसलिये वह पुरुष पापसे नहीं बँधता।

तथा हे अर्जुन!—

परिज्ञाता = ज्ञाता[१]		**कर्ता** = कर्ता,[४]	
ज्ञानम् = ज्ञान[२] (और)		**करणम्** = करण (तथा)	
ज्ञेयम् = ज्ञेय[३]		**कर्म** = क्रिया[५] —	
त्रिविधा = यह तीन प्रकारकी		**इति** = यह	
कर्मचोदना = कर्म-प्रेरणा (है) (और)		**त्रिविधः** = तीन प्रकारका	
		कर्मसङ्ग्रहः = कर्म-संग्रह है।	

[ज्ञान, कर्म और कर्ताके त्रिविध भेद बतलानेकी प्रस्तावना।]

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि॥ १९॥

ज्ञानम्, कर्म, च, कर्ता, च, त्रिधा, एव, गुणभेदतः,
प्रोच्यते, गुणसङ्ख्याने, यथावत्, शृणु, तानि, अपि॥ १९॥

उन—

गुणसङ्ख्याने	= गुणोंकी संख्या करनेवाले शास्त्रमें	**त्रिधा**	= तीन-तीन प्रकारके
		एव	= ही
ज्ञानम्	= ज्ञान		
च	= और	**प्रोच्यते**	= कहे गये हैं;
कर्म	= कर्म	**तानि**	= उनको
च	= तथा	**अपि**	= भी (तू मुझसे)
कर्ता	= कर्ता	**यथावत्**	= भलीभाँति
गुणभेदतः	= गुणोंके भेदसे	**शृणु**	= सुन

१-जाननेवालेका नाम "ज्ञाता" है।

२-जिसके द्वारा जाना जाय उसका नाम "ज्ञान" है।

३-जाननेमें आनेवाली वस्तुका नाम "ज्ञेय" है।

४-कर्म करनेवालेका नाम "कर्ता" है।

५-करनेका नाम "क्रिया" है।

[सात्त्विक ज्ञानके लक्षण।]

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥ २०॥

सर्वभूतेषु, येन, एकम्, भावम्, अव्ययम्, ईक्षते,
अविभक्तम्, विभक्तेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, सात्त्विकम्॥ २०॥

हे अर्जुन!—

येन	= जिस ज्ञानसे (मनुष्य)	**अविभक्तम्**	= विभागरहित (समभावसे स्थित)
विभक्तेषु	= पृथक्-पृथक्	**ईक्षते**	= देखता है,
सर्वभूतेषु	= सब भूतोंमें	**तत्**	= उस
एकम्	= एक	**ज्ञानम्**	= ज्ञानको (तो तू)
अव्ययम्	= अविनाशी	**सात्त्विकम्**	= सात्त्विक
भावम्	= परमात्मभावको	**विद्धि**	= जान।

[राजस ज्ञानके लक्षण।]

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्॥ २१॥

पृथक्त्वेन, तु, यत्, ज्ञानम्, नानाभावान्, पृथग्विधान्,
वेत्ति, सर्वेषु, भूतेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, राजसम्॥ २१॥

तु	= किंतु	**नानाभावान्**	= नाना भावोंको
यत्	= जो	**पृथक्त्वेन**	= अलग-अलग
ज्ञानम्	= ज्ञान अर्थात् जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य	**वेत्ति**	= जानता है,
सर्वेषु	= सम्पूर्ण	**तत्**	= उस
भूतेषु	= भूतोंमें	**ज्ञानम्**	= ज्ञानको (तू)
पृथग्विधान्	= भिन्न-भिन्न प्रकारके	**राजसम्**	= राजस
		विद्धि	= जान।

[तामस ज्ञानके लक्षण।]

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्॥ २२॥

यत्, तु, कृत्स्नवत्, एकस्मिन्, कार्ये, सक्तम्, अहैतुकम्, अतत्त्वार्थवत्, अल्पम्, च, तत्, तामसम्, उदाहृतम्॥ २२॥

तु = परंतु		**अहैतुकम्** = बिना युक्तिवाला,	
यत् = जो ज्ञान		**अतत्त्वार्थवत्** = तात्त्विक अर्थसे रहित (और)	
एकस्मिन् = एक			
कार्ये = कार्यरूप शरीरमें (ही)		**अल्पम्** = तुच्छ है—	
कृत्स्नवत् = सम्पूर्णके सदृश		**तत्** = वह	
सक्तम् = आसक्त है*		**तामसम्** = तामस	
च = तथा (जो)		**उदाहृतम्** = कहा गया है।	

[सात्त्विक कर्मके लक्षण।]

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते॥ २३॥

नियतम्, सङ्गरहितम्, अरागद्वेषतः, कृतम्, अफलप्रेप्सुना, कर्म, यत्, तत्, सात्त्विकम्, उच्यते॥ २३॥

तथा हे अर्जुन!—

यत् = जो	**सङ्गरहितम्** = कर्तापनके अभिमानसे रहित हो (तथा)
कर्म = कर्म	
नियतम् = शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ (और)	**अफलप्रेप्सुना** = फल न चाहनेवाले पुरुषद्वारा

* अर्थात् जिस विपरीत ज्ञानके द्वारा मनुष्य एक क्षणभंगुर नाशवान् शरीरको ही आत्मा मानकर उसमें सर्वस्वकी भाँति ''आसक्त रहता'' है।

अरागद्वेषतः	=	बिना राग-द्वेषके	**सात्त्विकम्**	=	सात्त्विक
कृतम्	=	किया गया हो—			
तत्	=	वह	**उच्यते**	=	कहा जाता है।

[राजस कर्मके लक्षण।]

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्॥ २४॥

यत्, तु, कामेप्सुना, कर्म, साहङ्कारेण, वा, पुनः,
क्रियते, बहुलायासम्, तत्, राजसम्, उदाहृतम्॥ २४॥

तु	=	परंतु	**वा**	=	या
यत्	=	जो			
कर्म	=	कर्म	**साहङ्कारेण**	=	अहंकारयुक्त पुरुषद्वारा
बहुलायासम्	=	बहुत परिश्रमसे युक्त होता है	**क्रियते**	=	किया जाता है,
पुनः	=	तथा	**तत्**	=	वह कर्म
कामेप्सुना	=	भोगोंको चाहनेवाले पुरुषद्वारा	**राजसम्**	=	राजस
			उदाहृतम्	=	कहा गया है।

[तामस कर्मके लक्षण।]

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते॥ २५॥

अनुबन्धम्, क्षयम्, हिंसाम्, अनवेक्ष्य, च, पौरुषम्,
मोहात्, आरभ्यते, कर्म, यत्, तत्, तामसम्, उच्यते॥ २५॥

तथा—

यत्	=	जो	**च**	=	और
कर्म	=	कर्म	**पौरुषम्**	=	सामर्थ्यको
अनुबन्धम्	=	परिणाम,	**अनवेक्ष्य**	=	न विचारकर
क्षयम्	=	हानि,	**मोहात्**	=	केवल अज्ञानसे
हिंसाम्	=	हिंसा	**आरभ्यते**	=	आरम्भ किया जाता है,

तत्	=	वह कर्म			
तामसम्	=	तामस	**उच्यते**	=	कहा जाता है।

[सात्त्विक कर्ताके लक्षण।]

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते॥ २६॥

मुक्तसङ्गः, अनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वितः, सिद्ध्यसिद्ध्योः, निर्विकारः, कर्ता, सात्त्विकः, उच्यते॥ २६॥

तथा हे अर्जुन! जो—

कर्ता	=	कर्ता	**सिद्ध्यसिद्ध्योः**	=	कार्यके सिद्ध होने और न होनेमें
मुक्तसङ्गः	=	संगरहित,	**निर्विकारः**	=	हर्ष-शोकादि विकारोंसे रहित है—(वह)
अनहंवादी	=	अहंकारके वचन न बोलनेवाला,	**सात्त्विकः**	=	सात्त्विक
धृत्युत्साह-समन्वितः	=	धैर्य और उत्साहसे युक्त (तथा)	**उच्यते**	=	कहा जाता है।

[राजस कर्ताके लक्षण।]

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः॥ २७॥

रागी, कर्मफलप्रेप्सुः, लुब्धः, हिंसात्मकः, अशुचिः, हर्षशोकान्वितः, कर्ता, राजसः, परिकीर्तितः॥ २७॥

और जो—

कर्ता	=	कर्ता	**अशुचिः**	=	अशुद्धाचारी (और)
रागी	=	आसक्तिसे युक्त,	**हर्षशोकान्वितः**	=	हर्ष-शोकसे लिप्त है—(वह)
कर्मफलप्रेप्सुः	=	कर्मोंके फलको चाहनेवाला (और)	**राजसः**	=	राजस
लुब्धः	=	लोभी है (तथा)	**परिकीर्तितः**	=	कहा गया है।
हिंसात्मकः	=	दूसरोंको कष्ट देनेके स्वभाववाला,			

[तामस कर्ताके लक्षण।]

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते॥ २८॥

अयुक्तः, प्राकृतः, स्तब्धः, शठः, नैष्कृतिकः, अलसः,
विषादी, दीर्घसूत्री, च, कर्ता, तामसः, उच्यते॥ २८॥

तथा जो—

कर्ता	= कर्ता	**विषादी**	= शोक करनेवाला,
अयुक्तः	= अयुक्त,	**अलसः**	= आलसी
प्राकृतः	= शिक्षासे रहित,	**च**	= और
स्तब्धः	= घमण्डी,	**दीर्घसूत्री**	= दीर्घसूत्री* है—(वह)
शठः	= धूर्त	**तामसः**	= तामस
नैष्कृतिकः	= और दूसरोंकी जीविकाका नाश करनेवाला (तथा)	**उच्यते**	= कहा जाता है।

[बुद्धि और धृतिके त्रिविध भेदोंको बतलानेकी प्रस्तावना।]

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय॥ २९॥

बुद्धेः, भेदम्, धृतेः, च, एव, गुणतः, त्रिविधम्, शृणु,
प्रोच्यमानम्, अशेषेण, पृथक्त्वेन, धनञ्जय॥ २९॥

तथा—

धनञ्जय	= हे धनंजय! (अब तू)	**एव**	= भी
		गुणतः	= गुणोंके अनुसार
बुद्धेः	= बुद्धिका	**त्रिविधम्**	= तीन प्रकारका
च	= और	**भेदम्**	= भेद
धृतेः	= धृतिका	**(मया)**	= मेरे द्वारा

*"दीर्घसूत्री" उसको कहा जाता है, जो थोड़े कालमें होनेलायक साधारण कार्यको भी फिर कर लेंगे, ऐसी आशासे बहुत कालतक नहीं पूरा करता।

अशेषेण	=	सम्पूर्णतासे	**प्रोच्यमानम्**	=	कहा जानेवाला
पृथक्त्वेन	=	विभागपूर्वक	**शृणु**	=	सुन।

[सात्त्विकी बुद्धिके लक्षण।]

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥ ३०॥

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, कार्याकार्ये, भयाभये,
बन्धम्, मोक्षम्, च, या, वेत्ति, बुद्धिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी॥ ३०॥

पार्थ	=	हे पार्थ!	**च**	=	तथा
या	=	जो बुद्धि	**बन्धम्**	=	बन्धन
प्रवृत्तिम्	=	प्रवृत्तिमार्ग[1]	**च**	=	और
च	=	और	**मोक्षम्**	=	मोक्षको
निवृत्तिम्	=	निवृत्तिमार्गको[2]	**वेत्ति**	=	यथार्थ जानती है—
कार्याकार्ये	=	कर्तव्य और अकर्तव्यको,	**सा**	=	वह
			बुद्धिः	=	बुद्धि
भयाभये	=	भय और अभयको	**सात्त्विकी**	=	सात्त्विकी है।

[राजसी बुद्धिके लक्षण।]

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥ ३१॥

यया, धर्मम्, अधर्मम्, च, कार्यम्, च, अकार्यम्, एव, च,
अयथावत्, प्रजानाति, बुद्धिः, सा, पार्थ, राजसी॥ ३१॥

१–गृहस्थमें रहते हुए फल और आसक्तिको त्यागकर भगवदर्पण–बुद्धिसे केवल लोकशिक्षाके लिये राजा जनककी भाँति बरतनेका नाम ''प्रवृत्तिमार्ग'' है।

२–देहाभिमानको त्यागकर केवल सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित हुए श्रीशुकदेवजी और सनकादिकोंकी भाँति संसारसे उपराम होकर विचरनेका नाम ''निवृत्तिमार्ग'' है।

और—

पार्थ	=	हे पार्थ! (मनुष्य)	**अकार्यम्**	=	अकर्तव्यको
यया	=	जिस बुद्धिके द्वारा	**एव**	=	भी
धर्मम्	=	धर्म	**अयथावत्**	=	यथार्थ नहीं
च	=	और			
अधर्मम्	=	अधर्मको	**प्रजानाति**	=	जानता,
च	=	तथा	**सा**	=	वह
कार्यम्	=	कर्तव्य	**बुद्धिः**	=	बुद्धि
च	=	और	**राजसी**	=	राजसी है।

[तामसी बुद्धिके लक्षण।]

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥ ३२॥

अधर्मम्, धर्मम्, इति, या, मन्यते, तमसा, आवृता,
सर्वार्थान्, विपरीतान्, च, बुद्धिः, सा, पार्थ, तामसी॥ ३२॥

और—

पार्थ	=	हे अर्जुन!	**च**	=	तथा (इसी प्रकार अन्य)
या	=	जो			
तमसा	=	तमोगुणसे	**सर्वार्थान्**	=	सम्पूर्ण पदार्थोंको भी
आवृता	=	घिरी हुई बुद्धि	**विपरीतान्**	=	विपरीत
अधर्मम्	=	अधर्मको (भी)	**(मन्यते)**	=	मान लेती है,
धर्मम्	=	'यह धर्म है'	**सा**	=	वह
इति	=	ऐसा	**बुद्धिः**	=	बुद्धि
मन्यते	=	मान लेती है	**तामसी**	=	तामसी है।

[सात्त्विकी धृतिके लक्षण।]

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी॥ ३३॥

धृत्या, यया, धारयते, मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः,
योगेन, अव्यभिचारिण्या, धृतिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी॥ ३३॥

और—

पार्थ = हे पार्थ!
यया = जिस
अव्यभिचारिण्या = अव्यभिचारिणी[1]
धृत्या = धारणशक्तिसे (मनुष्य)
योगेन = ध्यानयोगके द्वारा
मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः = मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको[2]
धारयते = धारण करता है,
सा = वह
धृतिः = धृति
सात्त्विकी = सात्त्विकी है।

[राजसी धृतिके लक्षण।]

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी॥ ३४॥

यया, तु, धर्मकामार्थान्, धृत्या, धारयते, अर्जुन,
प्रसङ्गेन, फलाकाङ्क्षी, धृतिः, सा, पार्थ, राजसी॥ ३४॥

तु = परंतु
पार्थ = हे पृथापुत्र
अर्जुन = अर्जुन!
फलाकाङ्क्षी = फलकी इच्छावाला मनुष्य
यया = जिस
धृत्या = धारणशक्तिके द्वारा
प्रसङ्गेन = अत्यन्त आसक्तिसे
धर्मकामार्थान् = धर्म, अर्थ और कामोंको
धारयते = धारण करता है,
सा = वह
धृतिः = धारणशक्ति
राजसी = राजसी है।

[तामसी धृतिके लक्षण।]

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी॥ ३५॥

१–भगवत्-विषयके सिवा अन्य सांसारिक विषयोंको धारण करना ही व्यभिचार-दोष है, उस दोषसे जो रहित है वह ''अव्यभिचारिणी धारणाशक्ति'' है।

२–मन, प्राण और इन्द्रियोंको भगवत्प्राप्तिके लिये भजन, ध्यान और निष्काम कर्मोंमें लगानेका नाम उनकी ''क्रियाओंको धारण करना'' है।

यया, स्वप्नम्, भयम्, शोकम्, विषादम्, मदम्, एव, च,
न, विमुञ्चति, दुर्मेधाः, धृतिः, सा, पार्थ, तामसी ॥ ३५ ॥

तथा—

पार्थ	=	हे पार्थ!	**विषादम्**	=	दुःखको (तथा)
दुर्मेधाः	=	दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य	**मदम्**	=	उन्मत्तताको
			एव	=	भी
यया	=	जिस	**न, विमुञ्चति**	=	नहीं छोड़ता अर्थात् धारण किये रहता है—
(धृत्या)	=	धारणशक्तिके द्वारा			
स्वप्नम्	=	निद्रा,			
भयम्	=	भय,	**सा**	=	वह
शोकम्	=	चिन्ता	**धृतिः**	=	धारणशक्ति
च	=	और	**तामसी**	=	तामसी है।

[तीनों गुणोंके अनुसार सुखके भेदोंको सुननेके लिये भगवान्‌की आज्ञा एवं सात्त्विक सुखके लक्षण।]

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति॥ ३६ ॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥ ३७ ॥

सुखम्, तु, इदानीम्, त्रिविधम्, शृणु, मे, भरतर्षभ,
अभ्यासात्, रमते, यत्र, दुःखान्तम्, च, निगच्छति ॥ ३६ ॥
यत्, तत्, अग्रे, विषम्, इव, परिणामे, अमृतोपमम्,
तत्, सुखम्, सात्त्विकम्, प्रोक्तम्, आत्मबुद्धिप्रसादजम्॥ ३७ ॥

भरतर्षभ	=	हे भरतश्रेष्ठ!	**मे**	=	मुझसे
इदानीम्	=	अब	**शृणु**	=	सुन।
त्रिविधम्	=	तीन प्रकारके	**यत्र**	=	जिस सुखमें (साधक मनुष्य)
सुखम्	=	सुखको			
तु	=	भी (तू)	**अभ्यासात्**	=	भजन, ध्यान और

सेवा आदिके अभ्याससे

रमते = रमण करता है

च = और (जिससे)

दुःखान्तम् = दुःखोंके अन्तको

निगच्छति = प्राप्त हो जाता है—

यत् = जो (ऐसा सुख है),

तत् = वह

अग्रे = आरम्भकालमें (यद्यपि)

विषम् = विषके

इव = तुल्य प्रतीत होता है[1], (परंतु)

परिणामे = परिणाममें

अमृतोपमम् = अमृतके तुल्य है;

(अतः) = इसलिये

तत् = वह

आत्मबुद्धि-प्रसादजम् = परमात्मविषयक बुद्धिके प्रसादजम् उत्पन्न होनेवाला

सुखम् = सुख

सात्त्विकम् = सात्त्विक

प्रोक्तम् = कहा गया है।

[राजस सुखके लक्षण।]

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥ ३८॥

विषयेन्द्रियसंयोगात्, यत्, तत्, अग्रे, अमृतोपमम्, परिणामे, विषम्, इव, तत्, सुखम्, राजसम्, स्मृतम्॥ ३८॥

और—

यत् = जो

सुखम् = सुख

विषयेन्द्रिय-संयोगात् = विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे

(भवति) = होता है,

तत् = वह

अग्रे = पहले—भोगकालमें

अमृतोपमम् = अमृतके तुल्य प्रतीत होनेपर भी

परिणामे = परिणाममें

विषम् = विषके[2]

१–जैसे खेलमें आसक्तिवाले बालकको विद्याका अभ्यास मूढ़ताके कारण प्रथम विषके तुल्य भासता है, वैसे ही विषयोंमें आसक्तिवाले पुरुषोंको भगवद्भजन, ध्यान, सेवा आदि साधनोंका अभ्यास मर्म न जाननेके कारण प्रथम ''विषके तुल्य प्रतीत होता'' है।

२–बल, वीर्य, बुद्धि, धन, उत्साह और परलोकका नाशक होनेसे विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होनेवाले सुखको परिणाममें ''विषके तुल्य'' कहा है।

इव	=	तुल्य है;	**राजसम्**	=	राजस
(अतः)	=	इसलिये			
तत्	=	वह सुख	**स्मृतम्**	=	कहा गया है।

[तामस सुखके लक्षण।]

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्॥ ३९॥

यत्, अग्रे, च, अनुबन्धे, च, सुखम्, मोहनम्, आत्मनः,
निद्रालस्यप्रमादोत्थम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम्॥ ३९॥

तथा—

यत्	=	जो	**मोहनम्**	=	मोहित करनेवाला है—
सुखम्	=	सुख			
अग्रे	=	भोगकालमें	**तत्**	=	वह
च	=	तथा	**निद्रालस्य-प्रमादोत्थम्**	=	निद्रा, आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न (सुख)
अनुबन्धे	=	परिणाममें			
च	=	भी	**तामसम्**	=	तामस
आत्मनः	=	आत्माको	**उदाहृतम्**	=	कहा गया है।

[तीनों गुणोंके प्रसंगका उपसंहार।]

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः॥ ४०॥

न, तत्, अस्ति, पृथिव्याम्, वा, दिवि, देवेषु, वा, पुनः,
सत्त्वम्, प्रकृतिजैः, मुक्तम्, यत्, एभिः, स्यात्, त्रिभिः, गुणैः॥ ४०॥

पृथिव्याम्	=	पृथिवीमें	**देवेषु**	=	देवताओंमें
वा	=	या	**पुनः**	=	तथा इनके सिवा और कहीं भी
दिवि	=	आकाशमें			
वा	=	अथवा	**तत्**	=	वह (ऐसा कोई भी)

सत्त्वम्	= सत्त्व		**एभिः**	= इन
न	= नहीं		**त्रिभिः**	= तीनों
अस्ति	= है,		**गुणैः**	= गुणोंसे
यत्	= जो		**मुक्तम्**	= रहित
प्रकृतिजैः	= प्रकृतिसे उत्पन्न		**स्यात्**	= हो।

[वर्ण-धर्मके विषयका आरम्भ।]

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥ ४१॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्, शूद्राणाम्, च, परन्तप,
कर्माणि, प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैः, गुणैः॥ ४१॥

इसलिये—

परन्तप	= हे परन्तप!		**कर्माणि**	= कर्म
ब्राह्मणक्षत्रिय-विशाम्	= ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके		**स्वभावप्रभवैः**	= स्वभावसे उत्पन्न
च	= तथा		**गुणैः**	= गुणोंके द्वारा
शूद्राणाम्	= शूद्रोंके		**प्रविभक्तानि**	= विभक्त किये गये हैं।

[ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्मोंका वर्णन]

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥ ४२॥

शमः, दमः, तपः, शौचम्, क्षान्तिः, आर्जवम्, एव, च,
ज्ञानम्, विज्ञानम्, आस्तिक्यम्, ब्रह्मकर्म, स्वभावजम्॥ ४२॥

शमः	= अन्तःकरणका निग्रह करना;		**तपः**	= धर्म पालनके लिये कष्ट सहना;
दमः	= इन्द्रियोंका दमन करना;		**शौचम्**	= बाहर-भीतरसे शुद्ध* रहना;

* गीता अ० १३ श्लोक ७ की टिप्पणीमें देखना चाहिये।

क्षान्तिः	= दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना;		करना
		च	= और
आर्जवम्	= मन, इन्द्रिय और शरीरको सरल रखना;	**विज्ञानम्**	= परमात्माके तत्त्वका अनुभव करना—(ये सब-के-सब)
आस्तिक्यम्	= वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदिमें श्रद्धा रखना;	**एव**	= ही
ज्ञानम्	= वेद-शास्त्रोंका अध्ययन-अध्यापन	**ब्रह्मकर्म, स्वभावजम्**	= ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं।

[क्षत्रियके स्वाभाविक कर्मोंका वर्णन।]

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ ४३ ॥

शौर्यम्, तेजः, धृतिः, दाक्ष्यम्, युद्धे, च, अपि, अपलायनम्,
दानम्, ईश्वरभावः, च, क्षात्रम्, कर्म, स्वभावजम्॥ ४३ ॥

और—

शौर्यम्	= शूर-वीरता,	**दानम्**	= दान देना
तेजः	= तेज,	**च**	= और
धृतिः	= धैर्य,	**ईश्वरभावः**	= स्वामिभाव*—(ये सब-के-सब ही)
दाक्ष्यम्	= चतुरता		
च	= और		
युद्धे	= युद्धमें	**क्षात्रम्**	= क्षत्रियके
अपि	= भी	**स्वभावजम्**	= स्वाभाविक
अपलायनम्	= न भागना,	**कर्म**	= कर्म हैं।

[वैश्य और शूद्रके स्वाभाविक कर्मोंका वर्णन।]

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥ ४४ ॥

---

* अर्थात् निःस्वार्थभावसे सबका हित सोचकर शास्त्राज्ञानुसार शासनद्वारा प्रेमके सहित पुत्रतुल्य प्रजाको पालन करनेका भाव।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्, वैश्यकर्म, स्वभावजम्,
परिचर्यात्मकम्, कर्म, शूद्रस्य, अपि, स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

तथा—

कृषिगौरक्ष्य-वाणिज्यम्	= खेती, गोपालन और क्रय-विक्रयरूप सत्य-व्यवहार*(ये)		**परिचर्यात्मकम्**	= सब वर्णोंकी सेवा करना
			शूद्रस्य	= शूद्रका
			अपि	= भी
वैश्यकर्म, स्वभावजम्	= वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं। (तथा)		**स्वभावजम्**	= स्वाभाविक
			कर्म	= कर्म है।

[अपने-अपने वर्ण-धर्मके पालनसे परम सिद्धिकी प्राप्ति एवं उसकी विधि।]

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥ ४५ ॥

स्वे, स्वे, कर्मणि, अभिरतः, संसिद्धिम्, लभते, नरः,
स्वकर्मनिरतः, सिद्धिम्, यथा, विन्दति, तत्, शृणु ॥ ४५ ॥

एवं इन—

स्वे, स्वे	= अपने-अपने (स्वाभाविक)	**स्वकर्मनिरतः**	= अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य
कर्मणि	= कर्मोंमें		
अभिरतः	= तत्परतासे लगा हुआ	**यथा**	= जिस प्रकारसे कर्म करके
नरः	= मनुष्य	**सिद्धिम्**	= परम सिद्धिको
संसिद्धिम्	= भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धिको	**विन्दति**	= प्राप्त होता है,
		तत्	= उस विधिको (तू)
लभते	= प्राप्त हो जाता है।	**शृणु**	= सुन।

* वस्तुओंके खरीदने और बेचनेमें तौल-नाप और गिनती आदिसे कम देना अथवा अधिक लेना एवं वस्तुको बदलकर या एक वस्तुमें दूसरी (खराब) वस्तु मिलाकर दे देना अथवा (अच्छी) ले लेना तथा नफा, आढ़त और दलाली ठहराकर उससे अधिक दाम लेना या कम देना तथा झूठ, कपट, चोरी और जबरदस्तीसे अथवा अन्य किसी प्रकारसे दूसरेके हकको ग्रहण कर लेना इत्यादि दोषोंसे रहित जो सत्यतापूर्वक पवित्र वस्तुओंका व्यापार है, उसका नाम ''सत्य-व्यवहार'' है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ ४६॥

यतः, प्रवृत्तिः, भूतानाम्, येन्, सर्वम्, इदम्, ततम्,
स्वकर्मणा, तम्, अभ्यर्च्य, सिद्धिं, विन्दति, मानवः॥ ४६॥

हे अर्जुन!—

यतः	=	जिस परमेश्वरसे
भूतानाम्	=	सम्पूर्ण प्राणियोंकी
प्रवृत्तिः	=	उत्पत्ति हुई है (और)
येन	=	जिससे
इदम्	=	यह
सर्वम्	=	समस्त (जगत्)
ततम्	=	व्याप्त है*,
तम्	=	उस परमेश्वरकी
स्वकर्मणा	=	अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा
अभ्यर्च्य	=	पूजा करके[2]
मानवः	=	मनुष्य
सिद्धिम्	=	परम सिद्धिको
विन्दति	=	प्राप्त हो जाता है।

[स्वधर्म-पालनकी प्रशंसा।]

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥ ४७॥

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्,
स्वभावनियतम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम्॥ ४७॥

इसलिये—

स्वनुष्ठितात्	=	अच्छी प्रकार आचरण किये हुए
परधर्मात्	=	दूसरेके धर्मसे
विगुणः	=	गुणरहित
(अपि)	=	भी
स्वधर्मः	=	अपना धर्म

१-जैसे बर्फ जलसे व्याप्त है, वैसे ही सम्पूर्ण संसार सच्चिदानन्दघन परमात्मासे व्याप्त है।

२-जैसे पतिव्रता स्त्री पतिको ही सर्वस्व समझकर पतिका चिन्तन करती हुई पतिके आज्ञानुसार पतिके ही लिये मन-वाणी-शरीरसे कर्म करती है, वैसे ही परमेश्वरको ही सर्वस्व समझकर परमेश्वरका चिन्तन करते हुए परमेश्वरके आज्ञानुसार मन, वाणी और शरीरसे परमेश्वरके ही लिये स्वाभाविक कर्तव्य कर्मका आचरण करना कर्मद्वारा ''परमेश्वरको पूजना'' है।

श्रेयान्	=	श्रेष्ठ है;	**कुर्वन्**	=	करता हुआ (मनुष्य)
(यस्मात्)	=	क्योंकि	**किल्बिषम्**	=	पापको
स्वभावनियतम्	=	स्वभावसे नियत किये हुए	**न**	=	नहीं
कर्म	=	स्वधर्मरूप कर्मको	**आप्नोति**	=	प्राप्त होता।

[स्वधर्म त्यागका निषेध।]

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥ ४८॥

सहजम्, कर्म, कौन्तेय, सदोषम्, अपि, न, त्यजेत्,
सर्वारम्भाः, हि, दोषेण, धूमेन, अग्निः, इव, आवृताः॥ ४८॥

अतएव—

कौन्तेय	=	हे कुन्तीपुत्र!	**धूमेन**	=	धूएँसे
सदोषम्	=	दोषयुक्त होनेपर	**अग्निः**	=	अग्निकी
अपि	=	भी	**इव**	=	भाँति
सहजम्	=	सहज*	**सर्वारम्भाः**	=	सभी कर्म (किसी-न-किसी)
कर्म	=	कर्मको			
न	=	नहीं			
त्यजेत्	=	त्यागना चाहिये;	**दोषेण**	=	दोषसे
हि	=	क्योंकि	**आवृताः**	=	युक्त हैं।

[संन्यासयोगसे परम सिद्धिकी प्राप्ति।]

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेनाधिगच्छति॥ ४९॥

---

* प्रकृतिके अनुसार शास्त्रविधिसे नियत किये हुए जो वर्णाश्रमके धर्म और सामान्य धर्मरूप स्वाभाविक कर्म हैं, उनको ही यहाँ ''स्वधर्म'', ''सहजकर्म,'' ''स्वकर्म'', ''नियतकर्म'', ''स्वभावजकर्म'' और ''स्वभावनियतकर्म'' इत्यादि नामोंसे कहा है।

असक्तबुद्धिः, सर्वत्र, जितात्मा, विगतस्पृहः,
नैष्कर्म्यसिद्धिम्, परमाम्, सन्न्यासेन, अधिगच्छति॥ ४९॥

तथा हे अर्जुन!—

सर्वत्र	= सर्वत्र	**सन्न्यासेन**	= सांख्ययोगके द्वारा
असक्तबुद्धिः	= आसक्तिरहित बुद्धिवाला,	**परमाम्**	= उस परम
विगतस्पृहः	= स्पृहारहित (और)	**नैष्कर्म्यसिद्धिम्**	= नैष्कर्म्य सिद्धिको
जितात्मा	= जीते हुए अन्तः-करणवाला पुरुष	**अधिगच्छति**	= प्राप्त होता है।

[ज्ञानकी परानिष्ठाका वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा।]

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा॥ ५०॥

सिद्धिम्, प्राप्तः, यथा, ब्रह्म, तथा, आप्नोति, निबोध, मे,
समासेन, एव, कौन्तेय, निष्ठा, ज्ञानस्य, या, परा॥ ५०॥

इसलिये—

या	= जो (कि)	**ब्रह्म**	= ब्रह्मको
ज्ञानस्य	= ज्ञानयोगकी	**आप्नोति**	= प्राप्त होता है,
परा	= परा	**तथा**	= उस प्रकारको
निष्ठा	= निष्ठा है,	**कौन्तेय**	= हे कुन्तीपुत्र! (तू)
सिद्धिम्	= उस नैष्कर्म्यसिद्धिको	**समासेन**	= संक्षेपमें
		एव	= ही
यथा	= जिस प्रकारसे	**मे**	= मुझसे
प्राप्तः	= प्राप्त होकर मनुष्य	**निबोध**	= समझ।

[ज्ञानयोगके अनुसार भगवत्प्राप्तिका पात्र बननेकी विधि।]

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥ ५१॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥ ५२॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ ५३॥

बुद्ध्या, विशुद्धया, युक्तः, धृत्या, आत्मानम्, नियम्य, च,
शब्दादीन्, विषयान्, त्यक्त्वा, रागद्वेषौ, व्युदस्य, च॥ ५१॥
विविक्तसेवी, लघ्वाशी, यतवाक्कायमानसः,
ध्यानयोगपरः, नित्यम्, वैराग्यम्, समुपाश्रितः॥ ५२॥
अहङ्कारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, परिग्रहम्,
विमुच्य, निर्ममः, शान्तः, ब्रह्मभूयाय, कल्पते॥ ५३॥

हे अर्जुन!—

विशुद्धया	=	विशुद्ध	**नियम्य**	=	संयम करके
बुद्ध्या	=	बुद्धिसे	**यतवाक्कायमानसः**	=	मन, वाणी और शरीरको वशमें कर लेनेवाला,
युक्तः	=	युक्त (तथा)	**रागद्वेषौ**	=	राग-द्वेषको
लघ्वाशी	=	हलका, सात्त्विक और नियमित भोजन करनेवाला,	**व्युदस्य**	=	सर्वथा नष्ट करके
शब्दादीन्	=	शब्दादि	**वैराग्यम्**	=	भलीभाँति दृढ़ वैराग्यका
विषयान्	=	विषयोंका	**समुपाश्रितः**	=	आश्रय लेनेवाला
त्यक्त्वा	=	त्याग करके	**च**	=	तथा
विविक्तसेवी	=	एकान्त और शुद्ध देशका सेवन करनेवाला,	**अहङ्कारम्**	=	अहंकार
			बलम्	=	बल,
धृत्या	=	सात्त्विक धारणशक्तिके द्वारा*	**दर्पम्**	=	घमण्ड,
			कामम्	=	काम,
आत्मानम्	=	अन्तःकरण और इन्द्रियोंका	**क्रोधम्**	=	क्रोध
			च	=	और

* गीता अध्याय १८ श्लोक ३३ में जिसका विस्तार है।

परिग्रहम्	=	परिग्रहका	**शान्तः**	=	शान्तियुक्त पुरुष
विमुच्य	=	त्याग करके			
नित्यम्	=	निरन्तर	**ब्रह्मभूयाय**	=	सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें अभिन्नभावसे स्थित होनेका
ध्यानयोगपरः	=	ध्यानयोगके परायण रहनेवाला,			
निर्ममः	=	ममतारहित (और)	**कल्पते**	=	पात्र होता है।

[ज्ञानयोगसे परा भक्तिकी प्राप्ति।]

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ ५४॥

ब्रह्मभूतः, प्रसन्नात्मा, न, शोचति, न, काङ्क्षति,
समः, सर्वेषु, भूतेषु, मद्भक्तिम्, लभते, पराम्, ॥ ५४॥

फिर वह—

ब्रह्मभूतः	=	सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित,	**न**	=	न (किसीकी)
			काङ्क्षति	=	आकांक्षा ही करता है। (ऐसा)
प्रसन्नात्मा	=	प्रसन्न मनवाला योगी	**सर्वेषु**	=	समस्त
			भूतेषु	=	प्राणियोंमें
न	=	न (तो किसीके लिये)	**समः**	=	समभाववाला[1] योगी
			पराम्, मद्भक्तिम्	=	मेरी पराभक्तिको[2]
शोचति	=	शोक करता है (और)	**लभते**	=	प्राप्त हो जाता है।

[पराभक्तिसे भगवत्प्राप्ति।]

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥ ५५॥

१–गीता अध्याय ६ श्लोक २९ में देखना चाहिये।

२–जो तत्त्वज्ञानकी पराकाष्ठा है तथा जिसको प्राप्त होकर और कुछ जानना बाकी नहीं रहता, वही यहाँ "पराभक्ति", " ज्ञानकी परानिष्ठा", "परम नैष्कर्म्यसिद्धि" और "परमसिद्धि" इत्यादि नामोंसे कही गयी है।

भक्त्या, माम्, अभिजानाति, यावान्, यः, च, अस्मि, तत्त्वतः,
ततः, माम्, तत्त्वतः, ज्ञात्वा, विशते, तदनन्तरम् ॥ ५५ ॥

और उस—

भक्त्या	=	पराभक्तिके द्वारा (वह)	**तत्त्वतः, अभिजानाति**	=	ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता है, (तथा)
माम्	=	मुझ परमात्माको	**ततः**	=	उस भक्तिसे
(अहम्)	=	मैं	**माम्**	=	मुझको
			तत्त्वतः	=	तत्त्वसे
यः	=	जो हूँ	**ज्ञात्वा**	=	जानकर
च	=	और	**तदनन्तरम्**	=	तत्काल ही
यावान्	=	जितना	**विशते**	=	मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।
अस्मि	=	हूँ,			

[भक्तिसहित निष्काम कर्मयोगसे भगवत्प्राप्ति।]

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५६ ॥

सर्वकर्माणि, अपि, सदा, कुर्वाणः, मद्व्यपाश्रयः,
मत्प्रसादात्, अवाप्नोति, शाश्वतम्, पदम्, अव्ययम्, ॥ ५६ ॥

और—

मद्व्यपाश्रयः	=	मेरे परायण हुआ कर्मयोगी (तो)	**मत्प्रसादात्**	=	मेरी कृपासे
			शाश्वतम्	=	सनातन
सर्वकर्माणि	=	सम्पूर्ण कर्मोंको			
सदा	=	सदा	**अव्ययम्**	=	अविनाशी
कुर्वाणः	=	करता हुआ	**पदम्**	=	परम पदको
अपि	=	भी	**अवाप्नोति**	=	प्राप्त हो जाता है।

[भक्तिसहित निष्काम कर्मयोगके अनुष्ठानहेतु भगवान्‌की आज्ञा।]

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥

चेतसा, सर्वकर्माणि, मयि, सन्न्यस्य, मत्परः,
बुद्धियोगम्, उपाश्रित्य, मच्चित्तः, सततम्, भव॥ ५७॥

इसलिये हे अर्जुन तू!—

सर्वकर्माणि = सब कर्मोंको		**उपाश्रित्य** = अवलम्बन करके	
चेतसा = मनसे		**मत्परः** = मेरे परायण (और)	
मयि = मुझमें		**सततम्** = निरन्तर	
सन्न्यस्य = अर्पण करके * (तथा)		**मच्चित्तः** = मुझमें चित्तवाला	
बुद्धियोगम् = समबुद्धिरूप योगको		**भव** = हो।	

[भगवच्चिन्तनसे उद्धार और भगवदाज्ञाके त्यागसे अधोगति।]

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥ ५८॥

मच्चित्तः, सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात्, तरिष्यसि,
अथ, चेत्, त्वम्, अहङ्कारात्, न, श्रोष्यसि, विनङ्क्ष्यसि॥ ५८॥

उपर्युक्त प्रकारसे—

मच्चित्तः = मुझमें चित्तवाला होकर	**चेत्** = यदि
त्वम् = तू	**अहङ्कारात्** = अहंकारके कारण (मेरे वचनोंको)
मत्प्रसादात् = मेरी कृपासे	**न** = न
सर्वदुर्गाणि = समस्त संकटोंको (अनायास ही)	**श्रोष्यसि** = सुनेगा (तो)
तरिष्यसि = पार कर जायगा	**विनङ्क्ष्यसि** = नष्ट हो जायगा अर्थात् परमार्थसे भ्रष्ट हो जायगा।
अथ = और	

[प्रकृतिकी प्रबलताके कारण स्वाभाविक कर्मोंके त्यागमें सामर्थ्यका अभाव बतलाना।]

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥ ५९॥

* गीता अध्याय ९ श्लोक २७में जिसकी विधि कही है।

यत्, अहङ्कारम्, आश्रित्य, न, योत्स्ये, इति, मन्यसे,
मिथ्या, एषः, व्यवसायः, ते, प्रकृतिः, त्वाम्, नियोक्ष्यति॥ ५९॥

और—

यत्	= जो (तू)	**एषः**	= यह
अहङ्कारम्	= अहंकारका	**व्यवसायः**	= निश्चय
आश्रित्य	= आश्रय लेकर	**मिथ्या**	= मिथ्या है;
इति	= यह	**(यतः)**	= क्योंकि (तेरा)
मन्यसे	= मान रहा है (कि)	**प्रकृतिः**	= स्वभाव
न, योत्स्ये	= ‘मैं युद्ध नहीं करूँगा’,	**त्वाम्**	= तुझे
ते	= तेरा	**नियोक्ष्यति**	= जबरदस्ती युद्धमें लगा देगा।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥ ६०॥

स्वभावजेन, कौन्तेय, निबद्धः, स्वेन, कर्मणा,
कर्तुम्, न, इच्छसि, यत्, मोहात्, करिष्यसि, अवशः, अपि, तत्॥ ६०॥

और—

कौन्तेय	= हे कुन्तीपुत्र!	**अपि**	= भी
यत्	= जिस कर्मको (तू)	**स्वेन**	= अपने (पूर्वकृत)
मोहात्	= मोहके कारण	**स्वभावजेन**	= स्वाभाविक
कर्तुम्	= करना	**कर्मणा**	= कर्मसे
न	= नहीं	**निबद्धः**	= बँधा हुआ
इच्छसि	= चाहता,	**अवशः**	= परवश होकर
तत्	= उसको	**करिष्यसि**	= करेगा।

[सबके हृदयमें अन्तर्यामी परमात्माकी व्यापकताका कथन।]

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ ६१॥

ईश्वरः, सर्वभूतानाम्, हृद्देशे, अर्जुन, तिष्ठति,
भ्रामयन्, सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि, मायया॥ ६१ ॥

क्योंकि—

अर्जुन	=	हे अर्जुन!			(उनके कर्मोंके अनुसार)
यन्त्रारूढानि	=	शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए	**भ्रामयन्**	=	भ्रमण कराता हुआ
सर्वभूतानि	=	सम्पूर्ण प्राणियोंको	**सर्वभूतानाम्**	=	सब प्राणियोंके
ईश्वरः	=	अन्तर्यामी परमेश्वर	**हृद्देशे**	=	हृदयमें
मायया	=	अपनी मायासे	**तिष्ठति**	=	स्थित है।

[ईश्वरकी शरण जाने-हेतु आज्ञा और उसका फल।]

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ ६२ ॥

तम्, एव, शरणम्, गच्छ, सर्वभावेन, भारत,
तत्प्रसादात्, पराम्, शान्तिम्, स्थानम्, प्राप्स्यसि, शाश्वतम्॥ ६२ ॥

इसलिये—

भारत	=	हे भारत! (तू)	**तत्प्रसादात्**	=	उस परमात्माकी कृपासे (ही तू)
सर्वभावेन	=	सब प्रकारसे			
तम्	=	उस परमेश्वरकी	**पराम्**	=	परम
एव	=	ही	**शान्तिम्**	=	शान्तिको (तथा)
			शाश्वतम्	=	सनातन
शरणम्	=	शरणमें*	**स्थानम्**	=	परम धामको
गच्छ	=	जा।	**प्राप्स्यसि**	=	प्राप्त होगा।

* लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्तिको त्यागकर एवं शरीर और संसारमें अहंता-ममतासे रहित होकर केवल एक परमात्माको ही परम आश्रय, परम गति और सर्वस्व समझना तथा अनन्यभावसे अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान्‌के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूपका चिन्तन करते रहना एवं भगवान्‌का भजन-स्मरण रखते हुए ही उनके आज्ञानुसार कर्तव्यकर्मोंका निःस्वार्थभावसे केवल परमेश्वरके लिये आचरण करना यह ''सब प्रकारसे परमात्माके शरणमें'' होना है।

[उपदेशका उपसंहार।]

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥ ६३॥

इति, ते, ज्ञानम्, आख्यातम्, गुह्यात्, गुह्यतरम्, मया,
विमृश्य, एतत्, अशेषेण, यथा, इच्छसि, तथा, कुरु॥ ६३॥

इति = इस प्रकार (यह)
गुह्यात् = गोपनीयसे (भी)
गुह्यतरम् = अति गोपनीय
ज्ञानम् = ज्ञान
मया = मैंने
ते = तुझसे
आख्यातम् = कह दिया। (अब तू)
एतत् = इस रहस्ययुक्त ज्ञानको
अशेषेण = पूर्णतया
विमृश्य = भलीभाँति विचारकर,
यथा = जैसे
इच्छसि = चाहता है
तथा = वैसे ही
कुरु = कर।

[पुनः समस्त गीताके साररूप सर्वगुह्यतम रहस्यको सुननेके लिये आज्ञा।]

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥ ६४॥

सर्वगुह्यतमम्, भूयः, शृणु, मे, परमम्, वचः,
इष्टः, असि, मे, दृढम्, इति, ततः, वक्ष्यामि, ते, हितम्॥ ६४॥

इतना कहनेपर भी अर्जुनका कोई उत्तर न मिलनेके कारण श्रीकृष्णभगवान् फिर बोले कि हे अर्जुन!—

सर्वगुह्यतमम् = सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय
मे = मेरे
परमम् = परम रहस्ययुक्त
वचः = वचनको (तू)
भूयः = फिर (भी)
शृणु = सुन। (तू)
मे = मेरा
दृढम् = अतिशय
इष्टः = प्रिय
असि = है,
ततः = इससे
इति = यह

हितम्	= परम हितकारक वचन (मैं)	**ते**	= तुझसे
		वक्ष्यामि	= कहूँगा।

[भगवान्‌की भक्ति करनेके लिये आज्ञा और उसका फल।]

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ ६५ ॥

मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु,
माम्, एव, एष्यसि, सत्यम्, ते, प्रतिजाने, प्रियः, असि, मे ॥ ६५ ॥

हे अर्जुन! तू—

मन्मनाः	= मुझमें मनवाला	**माम्**	= मुझे
भव	= हो,	**एव**	= ही
मद्भक्तः	= मेरा भक्त	**एष्यसि**	= प्राप्त होगा, (यह मैं)
(भव)	= बन,	**ते**	= तुझसे
मद्याजी	= मेरा पूजन करनेवाला	**सत्यम्**	= सत्य
		प्रतिजाने	= प्रतिज्ञा करता हूँ,
(भव)	= हो (और)	**(यतः)**	= क्योंकि (तू)
माम्	= मुझको	**मे**	= मेरा
नमस्कुरु	= प्रणाम कर।	**प्रियः**	= अत्यन्त प्रिय
(एवम्)	= ऐसा करनेसे (तू)	**असि**	= है।

[सर्व धर्मोंका आश्रय त्यागकर केवल भगवत्-शरण होनेकी आज्ञा।]

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६६ ॥

सर्वधर्मान्, परित्यज्य, माम्, एकम्, शरणम्, व्रज,
अहम्, त्वा, सर्वपापेभ्यः, मोक्षयिष्यामि, मा, शुचः ॥ ६६ ॥

इसलिये—

सर्वधर्मान्	= सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको		(मुझमें)
		परित्यज्य	= त्यागकर (तू केवल)
		एकम्	= एक

माम्	=	मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वरकी ही	**अहम्**	=	मैं
			त्वा	=	तुझे
			सर्वपापेभ्यः	=	सम्पूर्ण पापोंसे
शरणम्	=	शरणमें[1]	**मोक्षयिष्यामि**	=	मुक्त कर दूँगा, (तू)
व्रज	=	आ जा।	**मा, शुचः**	=	शोक मत कर।

[चतुर्विध अनधिकारियोंके प्रति गीताका उपदेश न करनेका कथन।]

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥ ६७॥

इदम्, ते, न, अतपस्काय, न, अभक्ताय, कदाचन,
न, च, अशुश्रूषवे, वाच्यम्, न, च, माम्, यः, अभ्यसूयति॥ ६७॥

हे अर्जुन! इस प्रकार—

ते	=	तुझे	**न**	=	न
इदम्	=	यह गीतारूप रहस्यमय उपदेश	**अशुश्रूषवे**	=	बिना सुननेकी इच्छावालेसे ही
कदाचन	=	किसी भी कालमें	**(वाच्यम्)**	=	कहना चाहिये;
न	=	न (तो)	**च**	=	तथा
अतपस्काय	=	तपरहित मनुष्यसे	**यः**	=	जो
वाच्यम्	=	कहना चाहिये,	**माम्**	=	मुझमें
न	=	न	**अभ्यसूयति**	=	दोषदृष्टि रखता है,
अभक्ताय	=	भक्तिरहितसे[2]	**(तस्मै)**	=	उससे (तो कभी भी)
च	=	और	**न**	=	नहीं कहना चाहिये।

[श्रीगीताजीके प्रचारका माहात्म्य।]

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥ ६८॥

१-इसी अध्यायके श्लोक ६२ की टिप्पणीमें शरणका भाव देखना चाहिये।

२-वेद, शास्त्र और परमेश्वर तथा महात्मा और गुरुजनोंमें श्रद्धा, प्रेम और पूज्यभावका नाम ''भक्ति'' है।

यः, इमम्, परमम्, गुह्यम्, मद्भक्तेषु, अभिधास्यति,
भक्तिम्, मयि, पराम्, कृत्वा, माम्, एव, एष्यति,असंशयः ॥ ६८ ॥

क्योंकि—

यः = जो पुरुष		**मद्भक्तेषु** = मेरे भक्तोंमें	
मयि = मुझमें		**अभिधास्यति** = कहेगा*,	
पराम् = परम		**(सः)** = वह	
भक्तिम् = प्रेम		**माम्** = मुझको	
कृत्वा = करके		**एव** = ही	
इमम् = इस		**एष्यति** = प्राप्त होगा—	
परमम् = परम			
गुह्यम् = { रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको		**असंशयः** = { इसमें कोई संदेह नहीं है।	

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥ ६९ ॥

न, च, तस्मात्, मनुष्येषु, कश्चित्, मे, प्रियकृत्तमः,
भविता, न, च, मे, तस्मात्, अन्यः, प्रियतरः, भुवि ॥ ६९ ॥

तस्मात् = उससे बढ़कर	**च** = तथा
मे = मेरा	**भुवि** = पृथ्वीभरमें
प्रियकृत्तमः = { प्रिय कार्य करनेवाला	**तस्मात्** = उससे बढ़कर
	मे = मेरा
मनुष्येषु = मनुष्योंमें	**प्रियतरः** = प्रिय
कश्चित् = कोई	**अन्यः** = दूसरा कोई
च = भी	**भविता** = भविष्यमें होगा भी
न = नहीं है;	**न** = नहीं।

* अर्थात् निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक मेरे भक्तोंको पढ़ावेगा या अर्थकी व्याख्याद्वारा इसका प्रचार करेगा।

[श्रीगीताजीके पठनका माहात्म्य।]

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥ ७० ॥

अध्येष्यते, च, यः, इमम्, धर्म्यम्, संवादम्, आवयोः,
ज्ञानयज्ञेन, तेन, अहम्, इष्टः, स्याम्, इति, मे, मतिः॥ ७० ॥

यः	= जो पुरुष	**च**	= भी
इमम्	= इस	**अहम्**	= मैं
धर्म्यम्	= धर्ममय	**ज्ञानयज्ञेन**	= ज्ञानयज्ञसे*
आवयोः	= हम दोनोंके	**इष्टः**	= पूजित
संवादम्	= संवादरूप गीताशास्त्रको	**स्याम्**	= होऊँगा—
		इति	= ऐसा
अध्येष्यते	= पढ़ेगा,	**मे**	= मेरा
तेन	= उसके द्वारा	**मतिः**	= मत है।

[श्रीगीताजीके श्रवणका माहात्म्य।]

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥ ७१ ॥

श्रद्धावान्, अनसूयः, च, शृणुयात्, अपि, यः, नरः,
सः, अपि, मुक्तः, शुभान्, लोकान्, प्राप्नुयात्, पुण्यकर्मणाम्॥ ७१ ॥

यः	= जो	**सः**	= वह
नरः	= मनुष्य	**अपि**	= भी (पापोंसे)
श्रद्धावान्	= श्रद्धायुक्त	**मुक्तः**	= मुक्त होकर
च	= और		
अनसूयः	= दोष-दृष्टिसे रहित होकर (इस गीताशास्त्रका)	**पुण्यकर्मणाम्**	= उत्तम कर्म करनेवालोंके
		शुभान्	= श्रेष्ठ
शृणुयात्, अपि	= श्रवण भी करेगा,	**लोकान्**	= लोकोंको
		प्राप्नुयात्	= प्राप्त होगा।

* गीता अध्याय ४ श्लोक ३३ का अर्थ देखना चाहिये।

[गीताश्रवणसे अर्जुनका मोह नष्ट हुआ या नहीं—
यह जाननेके लिये भगवान्‌का प्रश्न।]

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय॥ ७२॥

कच्चित्, एतत्, श्रुतम्, पार्थ, त्वया, एकाग्रेण, चेतसा,
कच्चित्, अज्ञानसम्मोहः, प्रनष्टः, ते, धनञ्जय॥ ७२॥

इस प्रकार गीताका माहात्म्य कहकर आनन्दकन्द भगवान्
श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनसे पूछा—

पार्थ	=	हे पार्थ!	**धनञ्जय**	=	हे धनंजय!
कच्चित्	=	क्या	**कच्चित्**	=	क्या
एतत्	=	इस गीताशास्त्रको	**ते**	=	तेरा
त्वया	=	तूने			
एकाग्रेण, चेतसा	=	एकाग्रचित्तसे	**अज्ञानसम्मोहः**	=	अज्ञानजनित मोह
श्रुतम्	=	श्रवण किया? (और)	**प्रनष्टः**	=	नष्ट हो गया?

[अपने मोहका नाश तथा स्मृतिकी प्राप्ति कर अर्जुनका संशयरहित हो
जाना एवं आज्ञापालनकी प्रतिज्ञा करना।]

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥ ७३॥

नष्टः, मोहः, स्मृतिः, लब्धा, त्वत्प्रसादात्, मया, अच्युत,
स्थितः, अस्मि, गतसन्देहः, करिष्ये, वचनम्, तव॥ ७३॥

इस प्रकार भगवान्‌के पूछनेपर अर्जुन बोले—

अच्युत	=	हे अच्युत!	**स्मृतिः**	=	स्मृति
त्वत्प्रसादात्	=	आपकी कृपासे	**लब्धा**	=	प्राप्त कर ली है, (अब मैं)
(मम)	=	मेरा			
मोहः	=	मोह	**गतसन्देहः**	=	संशयरहित होकर
नष्टः	=	नष्ट हो गया (और)	**स्थितः**	=	स्थित
मया	=	मैंने	**अस्मि**	=	हूँ, (अतः)

तव	= आपकी		
वचनम्	= आज्ञाका	**करिष्ये**	= पालन करूँगा।

[श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादकी महिमा।]

संजय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम्॥ ७४॥

इति, अहम्, वासुदेवस्य, पार्थस्य, च, महात्मनः,
संवादम्, इमम्, अश्रौषम्, अद्भुतम्, रोमहर्षणम्॥ ७४॥

इसके पश्चात् संजय बोले—हे राजन्!—

इति	= इस प्रकार	**इमम्**	= इस
अहम्	= मैंने	**अद्भुतम्**	= अद्भुत रहस्ययुक्त
वासुदेवस्य	= श्रीवासुदेवके		
च	= और	**रोमहर्षणम्**	= रोमांचकारक
महात्मनः	= महात्मा	**संवादम्**	= संवादको
पार्थस्य	= अर्जुनके	**अश्रौषम्**	= सुना।

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्॥ ७५॥

व्यासप्रसादात्, श्रुतवान्, एतत्, गुह्यम्, अहम्, परम्,
योगम्, योगेश्वरात्, कृष्णात् साक्षात्, कथयतः, स्वयम्,॥ ७५॥

कैसे कि—

व्यासप्रसादात्	= श्रीव्यासजीकी कृपासे (दिव्य दृष्टि पाकर)	**गुह्यम्**	= गोपनीय
		योगम्	= योगको (अर्जुनके प्रति)
अहम्	= मैंने		
एतत्	= इस	**कथयतः**	= कहते हुए
परम्	= परम	**स्वयम्**	= स्वयं

योगेश्वरात्	=	योगेश्वर	**साक्षात्**	=	प्रत्यक्ष
कृष्णात्	=	भगवान् श्रीकृष्णसे	**श्रुतवान्**	=	सुना है।

[श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादसे संजयका हर्षित होना।]

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

राजन्, संस्मृत्य, संस्मृत्य, संवादम्, इमम्, अद्भुतम्,
केशवार्जुनयोः, पुण्यम्, हृष्यामि, च, मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

इसलिये—

राजन्	=	हे राजन्!	**अद्भुतम्**	=	अद्भुत
केशवार्जुनयोः	=	भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके	**संवादम्**	=	संवादको
इमम्	=	इस (रहस्ययुक्त)	**संस्मृत्य, संस्मृत्य**	=	पुनः-पुनः स्मरण करके (मैं)
पुण्यम्	=	कल्याणकारक	**मुहुर्मुहुः**	=	बार-बार
च	=	और	**हृष्यामि**	=	हर्षित हो रहा हूँ।

[भगवान्‌के विश्वरूपका स्मरण कर संजयका हर्षित होना।]

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ ७७ ॥

तत्, च, संस्मृत्य, संस्मृत्य, रूपम्, अति, अद्भुतम्, हरेः,
विस्मयः, मे, महान्, राजन्, हृष्यामि, च, पुनः, पुनः ॥ ७७ ॥

तथा—

राजन्	=	हे राजन्!	**रूपम्**	=	रूपको
हरेः	=	श्रीहरिके*	**च**	=	भी
तत्	=	उस	**संस्मृत्य, संस्मृत्य**	=	पुनः-पुनः स्मरण करके
अति	=	अत्यन्त			
अद्भुतम्	=	विलक्षण	**मे**	=	मेरे (चित्तमें)

* जिसका स्मरण करनेसे पापोंका नाश होता है उसका नाम "हरि" है।

महान्	=	महान्	**(अहम्)**	=	मैं
विस्मयः	=	आश्चर्य (होता है)	**पुनः, पुनः**	=	बार-बार
च	=	और	**हृष्यामि**	=	हर्षित हो रहा हूँ।

[श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रभावका कथन।]

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ ७८॥

यत्र, योगेश्वरः, कृष्णः, यत्र, पार्थः, धनुर्धरः,
तत्र, श्रीः, विजयः, भूतिः, ध्रुवा, नीतिः, मतिः, मम॥ ७८॥

हे राजन्! विशेष क्या कहूँ!—

यत्र	=	जहाँ	**श्रीः**	=	श्री,
योगेश्वरः	=	योगेश्वर	**विजयः**	=	विजय,
कृष्णः	=	भगवान् श्रीकृष्ण हैं (और)	**भूतिः**	=	विभूति (और)
			ध्रुवा	=	अचल
यत्र	=	जहाँ	**नीतिः**	=	नीति है—
धनुर्धरः	=	गाण्डीव-धनुषधारी	**(इति)**	=	ऐसा
पार्थः	=	अर्जुन हैं,	**मम**	=	मेरा
तत्र	=	वहींपर	**मतिः**	=	मत है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसन्न्यासयोगो
नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

हरिः ॐ तत्सत्   हरिः ॐ तत्सत्   हरिः ॐ तत्सत्

❖❖❖

आरती

जय भगवद्गीते, जय भगवद्गीते।
हरि-हिय-कमल-विहारिणि, सुन्दर सुपुनीते॥ जय० ॥

कर्म-सुमर्म-प्रकाशिनि, कामासक्तिहरा।
तत्त्वज्ञान-विकाशिनि, विद्या ब्रह्म परा॥ जय० ॥

निश्चल-भक्ति-विधायिनि, निर्मल, मलहारी।
शरण-रहस्य-प्रदायिनि, सब विधि सुखकारी॥ जय० ॥

राग-द्वेष-विदारिणि, कारिणि मोद सदा।
भव-भय-हारिणि, तारिणि, परमानन्दप्रदा॥ जय० ॥

आसुर-भाव-विनाशिनि, नाशिनि तम-रजनी।
दैवी सद्गुणदायिनि, हरि-रसिका सजनी॥ जय० ॥

समता, त्याग सिखावनि, हरि-मुखकी बानी।
सकल शास्त्रकी स्वामिनि, श्रुतियोंकी रानी॥ जय० ॥

दया-सुधा बरसावनि मातु! कृपा कीजै।
हरि-पद-प्रेम दान कर अपनो कर लीजै॥ जय० ॥

❖❖❖

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवद्गीता-माहात्म्य

गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान्।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः॥ १॥
गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च॥ २॥
मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने।
सकृद्गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम्॥ ३॥
गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥ ४॥
भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम्।
गीतागङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥ ५॥
सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥ ६॥
एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीत-
मेको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥ ७॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

त्यागसे भगवत्प्राप्ति

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः॥
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥

गृहस्थाश्रममें रहता हुआ भी मनुष्य त्यागके द्वारा परमात्माको प्राप्त कर सकता है। परमात्माको प्राप्त करनेके लिये ''त्याग'' ही मुख्य साधन है। अतएव सात श्रेणियोंमें विभक्त करके त्यागके लक्षण संक्षेपमें लिखे जाते हैं।

(१) निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग।

चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती, हिंसा, अभक्ष्यभोजन और प्रमाद आदि शास्त्रविरुद्ध नीच कर्मोंको मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी न करना, यह पहली श्रेणीका त्याग है।

(२) काम्य कर्मोंका त्याग।

स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिके उद्देश्यसे एवं रोग-संकटादिकी निवृत्तिके उद्देश्यसे किये जानेवाले यज्ञ, दान, तप और उपासनादि सकाम कर्मोंको अपने स्वार्थके लिये न करना*, यह दूसरी श्रेणीका त्याग है।

(३) तृष्णाका सर्वथा त्याग।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा एवं स्त्री, पुत्र और धनादि जो कुछ भी अनित्य पदार्थ प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए हों, उनके बढ़नेकी इच्छाको भगवत्प्राप्तिमें बाधक समझकर उसका त्याग करना, यह तीसरी श्रेणीका त्याग है।

---

* यदि कोई लौकिक अथवा शास्त्रीय ऐसा कर्म संयोगवश प्राप्त हो जाय जो कि स्वरूपसे तो सकाम हो, परंतु उसके न करनेसे किसीको कष्ट पहुँचता हो या कर्म-उपासनाकी परम्परामें किसी प्रकारकी बाधा आती हो तो स्वार्थका त्याग करके केवल लोक-संग्रहके लिये उसका कर लेना सकाम कर्म नहीं है।

(४) स्वार्थके लिये दूसरोंसे सेवा करानेका त्याग।

अपने सुखके लिये किसीसे भी धनादि पदार्थोंकी अथवा सेवा करानेकी याचना करना एवं बिना याचनाके दिये हुए पदार्थोंको या की हुई सेवाको स्वीकार करना तथा किसी प्रकार भी किसीसे अपना स्वार्थ सिद्ध करनेकी मनमें इच्छा रखना इत्यादि जो स्वार्थके लिये दूसरोंसे सेवा करानेके भाव हैं, उन सबका त्याग करना*, यह चौथी श्रेणीका त्याग है।

(५) सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंमें आलस्य और फलकी इच्छाका सर्वथा त्याग।

ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, माता-पितादि गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ, दान, तप तथा वर्णाश्रमके अनुसार आजीविकाद्वारा गृहस्थका निर्वाह एवं शरीर-सम्बन्धी खान-पान इत्यादि जितने कर्तव्यकर्म हैं, उन सबमें आलस्यका और सब प्रकारकी कामनाका त्याग करना।

(क) ईश्वर-भक्तिमें आलस्यका त्याग।

अपने जीवनका परम कर्तव्य मानकर परम दयालु, सबके सुहृद्, परम प्रेमी, अन्तर्यामी परमेश्वरके गुण, प्रभाव और प्रेमकी रहस्यमयी कथाका श्रवण, मनन और पठन-पाठन करना तथा आलस्यरहित होकर उनके परम पुनीत नामका उत्साहपूर्वक ध्यानसहित निरन्तर जप करना।

(ख) ईश्वर-भक्तिमें कामनाका त्याग।

इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंको क्षणभंगुर, नाशवान् और भगवान्‌की भक्तिमें बाधक समझकर किसी भी वस्तुकी प्राप्तिके लिये न तो भगवान्‌से प्रार्थना करना और न मनमें इच्छा ही रखना तथा किसी

---

* यदि कोई ऐसा अवसर योग्यतासे प्राप्त हो जाय कि शरीर-सम्बन्धी सेवा अथवा भोजनादि पदार्थोंके स्वीकार न करनेसे किसीको कष्ट पहुँचता हो या लोकशिक्षामें किसी प्रकारकी बाधा आती हो तो उस अवसरपर स्वार्थका त्याग करके केवल उनकी प्रीतिके लिये सेवादिका स्वीकार करना दोषयुक्त नहीं है; क्योंकि स्त्री, पुत्र और नौकर आदिसे की हुई सेवा एवं बन्धु-बान्धव और मित्र आदिद्वारा दिये हुए भोजनादि पदार्थ स्वीकार न करनेसे उनको कष्ट होना एवं लोक-मर्यादामें बाधा पड़ना सम्भव है।

प्रकारका संकट आ जानेपर भी उसके निवारणके लिये भगवान्‌से प्रार्थना न करना अर्थात् हृदयमें ऐसा भाव रखना कि प्राण भले ही चले जायँ, परंतु इस मिथ्या जीवनके लिये विशुद्ध भक्तिमें कलंक लगाना उचित नहीं है। जैसे भक्त प्रह्लादने पिताद्वारा बहुत सताये जानेपर भी अपने कष्टनिवारणके लिये भगवान्‌से प्रार्थना नहीं की।

अपना अनिष्ट करनेवालोंको भी "भगवान् तुम्हारा बुरा करें" इत्यादि किसी प्रकारके कठोर शब्दोंसे शाप न देना और उनका अनिष्ट होनेकी मनमें इच्छा भी न रखना।

भगवान्‌की भक्तिके अभिमानमें आकर किसीको वरदानादि भी न देना, जैसे कि "भगवान् तुम्हें आरोग्य करें", "भगवान् तुम्हारा दुःख दूर करें", "भगवान् तुम्हारी आयु बढ़ावें" इत्यादि।

पत्र-व्यवहारमें भी सकाम शब्दोंका न लिखना अर्थात् जैसे "अठे उठे श्रीठाकुरजी सहाय छै", "ठाकुरजी बिक्री चलासी", "ठाकुरजी वर्षा करसी", "ठाकुरजी आराम करसी" इत्यादि सांसारिक वस्तुओंके लिये ठाकुरजीसे प्रार्थना करनेके रूपमें सकाम शब्द मारवाड़ीसमाजमें प्रायः लिखे जाते हैं, वैसे न लिखकर "श्रीपरमात्मादेव आनन्दरूपसे सर्वत्र विराजमान हैं", "श्रीपरमेश्वरका भजन सार है" इत्यादि निष्काम मांगलिक शब्द लिखना तथा इसके सिवा अन्य किसी प्रकारसे भी लिखने, बोलने आदिमें सकाम शब्दोंका प्रयोग न करना।

(ग) देवताओंके पूजनमें आलस्य और कामनाका त्याग।

शास्त्र-मर्यादासे अथवा लोक-मर्यादासे पूजनेके योग्य देवताओंको पूजनेका नियत समय आनेपर उनका पूजन करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञा है एवं भगवान्‌की आज्ञाका पालन करना परम कर्तव्य है, ऐसा समझकर उत्साहपूर्वक विधिके सहित उनका पूजन करना एवं उनसे किसी प्रकारकी भी कामना न करना।

उनके पूजनके उद्देश्यसे रोकड़-बहीखाते आदिमें भी सकाम शब्द

न लिखना अर्थात् जैसे मारवाड़ीसमाजमें नये बसनेके दिन अथवा दीपमालिकाके दिन श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करके "श्रीलक्ष्मीजी लाभ मोकलो देसी", "भण्डार भरपूर राखसी", "ऋद्धि-सिद्धि करसी", "श्रीकालीजीके आसरे", "श्रीगंगाजीके आसरे" इत्यादि बहुत-से सकाम शब्द लिखे जाते हैं, वैसे न लिखकर "श्रीलक्ष्मीनारायणजी सब जगह आनन्दरूपसे विराजमान हैं" तथा "बहुत आनन्द और उत्साहके सहित श्रीलक्ष्मीजीका पूजन किया" इत्यादि निष्काम मांगलिक शब्द लिखना और नित्य रोकड़, नकल आदिके आरम्भ करनेमें भी उपरोक्त रीतिसे ही लिखना।

(घ) माता-पितादि गुरुजनोंकी सेवामें आलस्य और कामनाका त्याग।

माता, पिता, आचार्य एवं और भी जो पूजनीय पुरुष वर्ण, आश्रम, अवस्था और गुणोंमें किसी प्रकार भी अपनेसे बड़े हों, उन सबकी सब प्रकारसे नित्य सेवा करना और उनको नित्य प्रणाम करना मनुष्यका परम कर्तव्य है। इस भावको हृदयमें रखते हुए आलस्यका सर्वथा त्याग करके, निष्कामभावसे उत्साहपूर्वक भगवदाज्ञानुसार उनकी सेवा करनेमें तत्पर रहना।

(ङ) यज्ञ, दान और तप आदि शुभ कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग।

पंच महायज्ञादि* नित्य कर्म एवं अन्यान्य नैमित्तिक कर्मरूप यज्ञादिका करना तथा अन्न, वस्त्र, विद्या, औषध और धनादि पदार्थोंके दानद्वारा सम्पूर्ण जीवोंको यथायोग्य सुख पहुँचानेके लिये मन, वाणी और शरीरसे अपनी शक्तिके अनुसार चेष्टा करना तथा अपने धर्मका पालन करनेके लिये हर प्रकारसे कष्ट सहन करना इत्यादि शास्त्रविहित

* पंच महायज्ञ ये हैं—देवयज्ञ (अग्निहोत्रादि), ऋषियज्ञ (वेदपाठ, संध्या, गायत्री-जपादि), पितृयज्ञ (तर्पण-श्राद्धादि), मनुष्ययज्ञ (अतिथिसेवा) और भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव)।

कर्मोंमें इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंकी कामनाका सर्वथा त्याग करके एवं अपना परम कर्तव्य मानकर श्रद्धासहित उत्साहपूर्वक भगवदाज्ञानुसार केवल भगवदर्थ ही उनका आचरण करना।

(च) आजीविकाद्वारा गृहस्थ-निर्वाहके उपयुक्त कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग।

आजीविकाके कर्म जैसे वैश्यके लिये कृषि, गौरक्ष्य और वाणिज्यादि कहे हैं, वैसे ही जो अपने-अपने वर्ण, आश्रमके अनुसार शास्त्रमें विधान किये गये हों, उन सबके पालनद्वारा संसारका हित करते हुए ही गृहस्थका निर्वाह करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञा है। इसलिये अपना कर्तव्य मानकर लाभ-हानिको समान समझते हुए सब प्रकारकी कामनाओंका त्याग करके उत्साहपूर्वक उपर्युक्त कर्मोंका करना*।

(छ) शरीरसम्बन्धी कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग।

शरीर-निर्वाहके लिये शास्त्रोक्त रीतिसे भोजन, वस्त्र और औषधादिके सेवनरूप जो शरीरसम्बन्धी कर्म हैं, उनमें सब प्रकारके भोगविलासोंकी कामनाका त्याग करके एवं सुख, दुःख, लाभ, हानि और जीवन-मरण आदिको समान समझकर केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही योग्यताके अनुसार उनका आचरण करना।

पूर्वोक्त चार श्रेणियोंके त्यागसहित इस पाँचवीं श्रेणीके त्यागानुसार सम्पूर्ण दोषोंका और सब प्रकारकी कामनाओंका नाश होकर केवल एक भगवत्प्राप्तिकी ही तीव्र इच्छाका होना ज्ञानकी पहली भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण समझने चाहिये।

* उपर्युक्त भावसे करनेवाले पुरुषके कर्म लोभसे रहित होनेके कारण उनमें किसी प्रकारका भी दोष नहीं आ सकता; क्योंकि आजीविकाके कर्मोंमें लोभ ही विशेषरूपसे पाप करानेका हेतु है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि गीता अध्याय १८ श्लोक ४४ की टिप्पणीमें जैसे वैश्यके प्रति वाणिज्यके दोषोंका त्याग करनेके लिये विस्तारपूर्वक लिखा है, उसी प्रकार अपने-अपने वर्ण-आश्रमके अनुसार सम्पूर्ण कर्मोंमें सब प्रकारके दोषोंका त्याग करके केवल भगवान्‌की आज्ञा समझकर, भगवान्‌के लिये निष्कामभावसे ही सम्पूर्ण कर्मोंका आचरण करे।

(६) संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिका सर्वथा त्याग।

धन, भवन और वस्त्रादि सम्पूर्ण वस्तुएँ तथा स्त्री, पुत्र और मित्रादि सम्पूर्ण बान्धवजन एवं मान, बड़ाई और प्रतिष्ठा इत्यादि इस लोकके और परलोकके जितने विषय-भोगरूप पदार्थ हैं, उन सबको क्षणभंगुर और नाशवान् होनेके कारण अनित्य समझकर उनमें ममता और आसक्तिका न रहना तथा केवल एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही अनन्यभावसे विशुद्ध प्रेम होनेके कारण मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओंमें और शरीरमें भी ममता और आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जाना, यह छठी श्रेणीका त्याग है*।

उक्त छठी श्रेणीके त्यागको प्राप्त हुए पुरुषोंका संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें वैराग्य होकर केवल एक परम प्रेममय भगवान्‌में ही अनन्य प्रेम हो जाता है। इसलिये उनको भगवान्‌के गुण, प्रभाव और रहस्यसे भरी हुई विशुद्ध प्रेमके विषयकी कथाओंका सुनना-सुनाना और मनन करना तथा एकान्त देशमें रहकर निरन्तर भगवान्‌का भजन, ध्यान और शास्त्रोंके मर्मका विचार करना ही प्रिय लगता है। विषयासक्त मनुष्योंमें रहकर हास्य-विलास, प्रमाद, निन्दा, विषय-भोग और व्यर्थ वार्तादिमें अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी बिताना अच्छा नहीं लगता एवं उनके द्वारा सम्पूर्ण कर्तव्य कर्म भगवान्‌के स्वरूप और नामका मनन रहते हुए ही बिना आसक्तिके केवल भगवदर्थ होते हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिका

---

* सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका त्याग तो तीसरी और पाँचवीं श्रेणीके त्यागमें कहा गया, परंतु उपर्युक्त त्यागके होनेपर भी उनमें ममता और आसक्ति शेष रह जाती है; जैसे भजन, ध्यान और सत्संगके अभ्याससे भरतमुनिका सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका त्याग होनेपर भी हरिणमें और हरिणके पालनरूप कर्ममें ममता और आसक्ति बनी रही। इसलिये संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिके त्यागको ''छठी श्रेणीका त्याग'' कहा है।

त्याग होकर एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही विशुद्ध प्रेमका होना ज्ञानकी दूसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण समझने चाहिये।

(७) संसार, शरीर और सम्पूर्ण कर्मोंमें सूक्ष्म वासना और अहंभावका सर्वथा त्याग।

संसारके सम्पूर्ण पदार्थ मायाके कार्य होनेसे सर्वथा अनित्य हैं और एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सर्वत्र समभावसे परिपूर्ण हैं; ऐसा दृढ़ निश्चय होकर शरीरसहित संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें और सम्पूर्ण कर्मोंमें सूक्ष्म वासनाका सर्वथा अभाव हो जाना अर्थात् अन्तःकरणमें उनके चित्रोंका संस्काररूपसे भी न रहना एवं शरीरमें अहंभावका सर्वथा अभाव होकर मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका लेशमात्र भी न रहना, यह सातवीं श्रेणीका त्याग है[१]।

इस सातवीं श्रेणीके त्यागरूप परवैराग्यको[२] प्राप्त हुए पुरुषोंके अन्तःकरणकी वृत्तियाँ सम्पूर्ण संसारसे अत्यन्त उपराम हो जाती हैं। यदि किसी कालमें कोई सांसारिक फुरना हो भी जाती है तो भी उसके संस्कार नहीं जमते; क्योंकि उनकी एक सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्यभावसे गाढ़ स्थिति निरन्तर बनी रहती है।

इसलिये उनके अन्तःकरणमें सम्पूर्ण अवगुणोंका अभाव होकर

१–सम्पूर्ण संसारके पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका एवं ममता और आसक्तिका सर्वथा अभाव होनेपर भी उनमें सूक्ष्म वासना और कर्तृत्व–अभिमान शेष रह जाता है, इसलिये सूक्ष्म वासना और अहंभावके त्यागको "सातवीं श्रेणीका त्याग" कहा है।

२–पूर्वोक्त छठी श्रेणीके त्यागको प्राप्त हुए पुरुषकी तो विषयोंका विशेष संसर्ग होनेसे कदाचित् उनमें कुछ आसक्ति हो भी सकती है, परंतु इस सातवीं श्रेणीके त्यागी पुरुषका विषयोंके साथ संसर्ग होनेपर भी उनमें आसक्ति नहीं हो सकती; क्योंकि उसके निश्चयमें एक परमात्माके सिवा अन्य कोई वस्तु रहती ही नहीं, इसलिये इस त्यागको "परवैराग्य" कहा है।

अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपैशुनता ५, लज्जा, अमानित्व ६, निष्कपटता, शौच ७, सन्तोष ८, तितिक्षा ९, सत्संग, सेवा, यज्ञ, दान, तप १०, स्वाध्याय ११, शम १२, दम १३, विनय, आर्जव १४, दया १५, श्रद्धा १६, विवेक १७, वैराग्य १८, एकान्तवास, अपरिग्रह १९, समाधान २०, उपरामता, तेज २१, क्षमा २२, धैर्य २३, अद्रोह २४, अभय २५, निरहंकारता, शान्ति २६ और ईश्वरमें अनन्य भक्ति इत्यादि सद्गुणोंका आविर्भाव स्वभावसे ही हो जाता है।

इस प्रकार शरीरसहित सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें वासना और अहंभावका अत्यन्त अभाव होकर एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें ही एकीभावसे नित्य-निरन्तर दृढ़ स्थिति रहना ज्ञानकी तीसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण हैं।

---

१. मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार किसीको कष्ट न देना। २. अन्तःकरण और इन्द्रियोंके द्वारा जैसा निश्चय किया हो, वैसा-का-वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहना। ३. चोरीका सर्वथा अभाव। ४. आठ प्रकारके मैथुनोंका अभाव। ५. किसीकी भी निन्दा न करना। ६. सत्कार, मान और पूजादिका न चाहना। ७. बाहर और भीतरकी पवित्रता (सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी एवं यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जल-मृत्तिकादिसे शरीरकी शुद्धिको तो बाहरकी शुद्धि कहते हैं और राग-द्वेष तथा कपटादि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ और शुद्ध हो जाना भीतरकी शुद्धि कहलाती है)। ८. तृष्णाका सर्वथा अभाव। ९. शीत, उष्ण, सुख, दुःखादि द्वन्द्वोंका सहन करना। १०. स्वधर्म-पालनके लिये कष्ट सहना। ११. वेद और सत्-शास्त्रोंका अध्ययन एवं भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन। १२. मनका वशमें होना। १३. इन्द्रियोंका वशमें होना। १४. शरीर और इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता। १५. दुःखियोंमें करुणा। १६. वेद, शास्त्र, महात्मा, गुरु और परमेश्वरके वचनोंमें प्रत्यक्षके सदृश विश्वास। १७. सत् और असत् पदार्थका यथार्थ ज्ञान। १८. ब्रह्मलोकतकके सम्पूर्ण पदार्थोंमें आसक्तिका अत्यन्त अभाव। १९. ममत्वबुद्धिसे संग्रहका अभाव। २०. अन्तःकरणमें संशय और विक्षेपका अभाव। २१. श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिका नाम तेज है कि जिसके प्रभावसे विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः पापाचरणसे रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। २२. अपना अपराध करनेवालेको किसी प्रकार भी दण्ड देनेका भाव न रखना। २३. भारी विपत्ति आनेपर भी अपनी स्थितिसे चलायमान न होना। २४. अपने साथ द्वेष रखनेवालोंमें भी द्वेषका न होना। २५. सर्वथा भयका अभाव। २६. इच्छा और वासनाओंका अत्यन्त अभाव होना और अन्तःकरणमें नित्य-निरन्तर प्रसन्नताका रहना।

उपर्युक्त गुणोंमेंसे कितने ही तो पहली और दूसरी भूमिकामें ही प्राप्त हो जाते हैं, परंतु सम्पूर्ण गुणोंका आविर्भाव तो प्रायः तीसरी भूमिकामें ही होता है; क्योंकि यह सब भगवत्प्राप्तिके अति समीप पहुँचे हुए पुरुषोंके लक्षण एवं भगवत्स्वरूपके साक्षात् ज्ञानमें हेतु हैं; इसीलिये श्रीकृष्णभगवान्ने प्रायः इन्हीं गुणोंको श्रीगीताजीके १३ वें अध्यायमें (श्लोक ७ से ११ तक) ज्ञानके नामसे तथा १६वें अध्यायमें (श्लोक १ से ३ तक) दैवी सम्पदाके नामसे कहा है।

तथा उक्त गुणोंको शास्त्रकारोंने सामान्य धर्म माना है। इसलिये मनुष्यमात्रका ही इनमें अधिकार है, अतएव उपर्युक्त सद्गुणोंका अपने अन्तःकरणमें आविर्भाव करनेके लिये सभीको भगवान्के शरण होकर विशेषरूपसे प्रयत्न करना चाहिये।

उपसंहार

इस लेखमें सात श्रेणियोंके त्यागद्वारा भगवत्-प्राप्तिका होना कहा गया है। उनमें पहली पाँच श्रेणियोंके त्यागतक तो ज्ञानकी प्रथम भूमिकाके लक्षण और छठी श्रेणीके त्यागतक दूसरी भूमिकाके लक्षण तथा सातवीं श्रेणीके त्यागतक तीसरी भूमिकाके लक्षण बताये गये हैं। उक्त तीसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुआ पुरुष तत्काल ही सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। फिर उसका इस क्षणभंगुर, नाशवान्, अनित्य संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता, अर्थात् जैसे स्वप्नसे जगे हुए पुरुषका स्वप्नके संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता, वैसे ही अज्ञाननिद्रासे जगे हुए पुरुषका भी मायाके कार्यरूप अनित्य संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। यद्यपि लोकदृष्टिमें उस ज्ञानी पुरुषके शरीरद्वारा प्रारब्धसे सम्पूर्ण कर्म होते हुए दिखायी देते हैं एवं उन कर्मोंद्वारा संसारमें बहुत ही लाभ पहुँचता है; क्योंकि कामना, आसक्ति और कर्तृत्व-अभिमानसे रहित होनेके कारण उस महात्माके मन, वाणी और शरीरद्वारा किये हुए आचरण लोकमें प्रमाणस्वरूप समझे जाते हैं और ऐसे पुरुषोंके भावसे ही शास्त्र बनते

हैं; परंतु यह सब होते हुए भी वह सच्चिदानन्दघन वासुदेवको प्राप्त हुआ पुरुष तो इस त्रिगुणमयी मायासे सर्वथा अतीत ही है। इसलिये वह न तो गुणोंके कार्यरूप प्रकाश, प्रवृत्ति और निद्रा आदिके प्राप्त होनेपर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकांक्षा ही करता है; क्योंकि सुख-दु:ख, लाभ-हानि, मान-अपमान और निन्दा-स्तुति आदिमें एवं मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण आदिमें सर्वत्र उसका समभाव हो जाता है, इसलिये उस महात्माको न तो किसी प्रिय वस्तुकी प्राप्ति और अप्रियकी निवृत्तिमें हर्ष होता है, न किसी अप्रियकी प्राप्ति और प्रियके वियोगमें शोक ही होता है। यदि उस धीर पुरुषका शरीर किसी कारणसे शस्त्रोंद्वारा काटा भी जाय या उसको कोई अन्य प्रकारका भारी दु:ख आकर प्राप्त हो जाय तो भी वह सच्चिदानन्दघन वासुदेवमें अनन्यभावसे स्थित हुआ पुरुष उस स्थितिसे चलायमान नहीं होता; क्योंकि उसके अन्त:करणमें सम्पूर्ण संसार मृगतृष्णाके जलकी भाँति प्रतीत होता है और एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीका भी होनापना नहीं भासता। विशेष क्या कहा जाय, वास्तवमें उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषका भाव वह स्वयं ही जानता है। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंद्वारा प्रकट करनेके लिये किसीका भी सामर्थ्य नहीं है। अतएव जितना शीघ्र हो सके, अज्ञाननिद्रासे चेतकर उक्त सात श्रेणियोंमें कहे हुए त्यागद्वारा परमात्माको प्राप्त करनेके लिये सत्पुरुषोंकी शरण ग्रहण करके उनके कथनानुसार साधन करनेमें तत्पर होना चाहिये; क्योंकि यह अति दुर्लभ मनुष्यका शरीर बहुत जन्मोंके अन्तमें परम दयालु भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है। इसलिये नाशवान्, क्षणभंगुर संसारके अनित्य भोगोंको भोगनेमें अपने जीवनका अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिये।

शान्ति: शान्ति: शान्ति:

॥ श्रीहरिः ॥

गीतामें ध्यान-सम्बन्धी श्लोक

अ०	निराकार	निराकार साकार	साकार
२	१७,२०,२१,२३,२४,२५,२८, २९,४५,५५,६९	६१	०
३	१७,२८,४३	३०	०
४	२४,२५,२६,२७,३५	०	६,७,८,९,१०, ११,१३,१४
५	७,८,९,१३,१७,१९,२०,२१,२४,२७,२८	२९	०
६	७,८,१८,२०,२१,२२,२४,२५,२६,२७, २८,२९,३१,३२	१०,१३,१४,३०,४७	०
७	७,१२,१९	१४,३०	०
८	८,९,१०,२०,२१,२२	५,७,१२,१३,१४	०
९	४,५,६,२९	१३,१४,१५,१८, २२,३४	०
१०	२०	३,८,९,१०,१२,३९,४१,४२	०
११	०	१८,३७,३८,५५	७,१७,४६
१२	३	६,७,८,१४	२
१३	११,१२,१४,१५,१७,२२,२४,२७,२८,२९, ३०,३१,३२	१०,१३,१६	०
१४	१९,२३,२७	२६	०
१५	५,१५,१७,१९	४	०
१६	१	०	०
१७	०	०	०
१८	२०,४६,५४,५५,६१,६२	५७,६५,६६	७७

गीतामें भगवत्प्राप्तिके साधनविषयक श्लोकोंकी संख्या

अ०	श्लोक	
२—	१७,२०,२३,२४,२५,३८,४५,४७,४८,४९,५०,५१,५५,५६,५७, ५८,६१,६४,६८,७१	(२०)
३—	७,९,१७,१९,२५,२८,३०,३४	(८)
४—	६,८,९,१०,११,१४,१८,१९,२०,२१,२२,२३,२४,२५,२६,२७, २८,३४,३८,३९,४१,४२	(२२)
५—	२,३,४,५,६,७,८,१०,११,१२,१३,१७,१८,१९,२०,२१,२४,२५, २६,२८,२९	(२१)
६—	१,३,४,७,८,९,१०,१४,१८,२०,२५,२६,२९,३०,३१,३२,३५,४७	(१८)
७—	१,७,१२,१४,१६,१९,२३,२८,२९,३०	(१०)
८—	५,७,८,९,१३,१४,२२,२४,२७	(९)
९—	४,५,६,९,१३,१४,१५,१७,१८,१९,२२,२५,२६,२७,२९,३०,३१, ३२,३३,३४	(२०)
१०—	३,८,९,१०,१२,१५,२०,३९,४१,४२	(१०)
११—	७,११,१३,१५,१६,१७,१८,१९,२०,३७,३८,३९,४०,४३,४६,५४,५५	(१७)
१२—	२,३,६,७,८,९,१०,११,१२,१३,१४,१५,१६,१७,१८,१९	(१६)
१३—	२,७,८,९,१०,११,१२,१३,१४,१५,१६,१७,२२,२४,२५,२७,२८, २९,३०,३१,३२,३३	(२२)
१४—	१९,२०,२२,२३,२४,२५,२६,२७	(८)
१५—	१,४,५,१५,१९	(५)
१६—	१,२,३	(३)
१७—	११,१६,२०,२३,२५,२७	(६)
१८—	२,९,१०,११,१७,२०,२३,२६,३३,४२,४६,४९,५५,५६,५७,६२, ६५,६६,६८,७०	(२०)

॥ श्रीहरिः ॥

नित्यपाठ साधन-भजन एव कर्मकाण्ड-हेतु

कोड	पुस्तक
592	**नित्यकर्म-पूजाप्रकाश** [गुजराती, तेलुगु भी]
1593	**अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश**
1895	**जीवच्छ्राद्ध-पद्धति**
1809	**गया श्राद्ध-पद्धति**
1928	**त्रिपिण्डी श्राद्ध-पद्धति**
1416	**गरुडपुराण-सारोद्धार** (सानुवाद)
1627	**रुद्राष्टाध्यायी**-सानुवाद
1417	**शिवस्तोत्ररत्नाकर**
1774	**देवीस्तोत्ररत्नाकर**
1623	**ललितासहस्रनामस्तोत्रम्** - [तेलुगु भी]
610	**व्रत-परिचय**
1162	**एकादशी-व्रतका माहात्म्य**— मोटा टाइप [गुजराती भी]
1136	**वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य**
1588	**माघमासका माहात्म्य**
1899	**श्रावणमासका माहात्म्य**
1367	**श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा**
052	**स्तोत्ररत्नावली**—सानुवाद [तेलुगु, बँगला भी]
1629	,, ,, सजिल्द
1567	**दुर्गासप्तशती**— मूल, मोटा (बेड़िया)
876	,, मूल गुटका
1727	,, मूल, लघु आकार
1346	,, सानुवाद मोटा टाइप
118	,, सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी]
489	,, सानुवाद, सजिल्द [गुजराती भी]

कोड	पुस्तक
1281	**दुर्गासप्तशती** (विशिष्ट सं०)
866	,, केवल हिन्दी
1161	,, केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द
819	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**-शांकरभाष्य
206	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**—सटीक
226	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**—मूल, [मलयालम, तेलुगु, कन्नड, तमिल, गुजराती भी]
1872	**श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्** -लघु
509	**सूक्ति-सुधाकर**
1801	**श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्** (हिन्दी-अनुवादसहित)
207	**रामस्तवराज**—(सटीक)
211	**आदित्यहृदयस्तोत्रम्**— हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित [ओड़िआ भी]
224	**श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र** [तेलुगु, ओड़िआ भी]
231	**रामरक्षास्तोत्रम्**— [तेलुगु, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]
1594	**सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह**
1850	**शतनामस्तोत्रसंग्रह**
715	**महामन्त्रराजस्तोत्रम्**

नामावलिसहितम्

कोड	पुस्तक
1599	**श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्** (गुजराती भी)
1600	**श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्**
1601	**श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्**
1663	**श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्**
1664	**श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्**
1665	**श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्**

कोड	पुस्तक
1706	**श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम्**
1704	**श्रीसीतासहस्त्रनामस्तोत्रम्**
1705	**श्रीरामसहस्त्रनामस्तोत्रम्**
1707	**श्रीलक्ष्मीसहस्त्रनामस्तोत्रम्**
1708	**श्रीराधिकासहस्त्रनामस्तोत्रम्**
1709	**श्रीगंगासहस्त्रनामस्तोत्रम्**
1862	**श्रीगोपाल स०**–सटीक
1748	**संतान–गोपालस्तोत्र**
563	**शिवमहिम्नःस्तोत्र** [तेलुगु भी]
230	**अमोघ शिवकवच**
495	**दत्तात्रेय–वज्रकवच** सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी]
229	**श्रीनारायणकवच** [ओड़िआ, तेलुगु भी]
1885	**वैदिक–सूक्त–संग्रह**
054	**भजन–संग्रह**
1849	**भजन–सुधा**
140	**श्रीरामकृष्णलीला–भजनावली**
144	**भजनामृत**
142	**चेतावनी–पद–संग्रह**
1355	**सचित्र–स्तुति–संग्रह**
1800	**पंचदेव–अथर्वशीर्ष–संग्रह**
1214	**मानस–स्तुति–संग्रह**
1092	**भागवत–स्तुति–संग्रह**
1344	**सचित्र–आरती–संग्रह**
1591	**आरती–संग्रह**—मोटा टाइप
153	**आरती–संग्रह**
1845	**प्रमुख आरतियाँ**–पॉकेट
208	**सीतारामभजन**
221	**हरेरामभजन**— दो माला (गुटका)
222	**हरेरामभजन**—१४ माला
225	**गजेन्द्रमोक्ष**–सानुवाद, [तेलुगु, कन्नड़, ओड़िआ भी]

कोड	पुस्तक
385	**नारद–भक्ति–सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति–सूत्र,** सानुवाद [बँगला, तमिल भी]
1505	**भीष्मस्तवराज**
699	**गङ्गालहरी**
1094	**हनुमानचालीसा**— हिन्दी भावार्थसहित
1917	,, मूल (रंगीन) वि०सं०
227	,, (पॉकेट साइज) [गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]
695	**हनुमानचालीसा**—(लघु आकार) [गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी]
1525	**हनुमानचालीसा**—अति लघु आकार [गुजराती भी]
228	**शिवचालीसा**—असमिया भी
1185	**शिवचालीसा**–लघु आकार
851	**दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा**
1033	,, लघु आकार
232	**श्रीरामगीता**
383	**भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी....**
203	**अपरोक्षानुभूति**
139	**नित्यकर्म–प्रयोग**
524	**ब्रह्मचर्य और संध्या–गायत्री**
236	**साधक–दैनन्दिनी**
1471	**संध्या, संध्या–गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य**
210	**सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण–बलिवैश्वदेवविधि**— मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी]
614	**सन्ध्या**